CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुर्जर कवि श्री सोमेश्वरदेव

और उनकी

संस्कृत-काव्य-कृतियाँ-एक अध्ययन

7623

—डा० देवदत्त शुक्ल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थ-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने तेरहवीं शताब्दी के गुर्जरकवि श्रीसोमेश्वरदेव की काव्य-कृतियों का वैदुष्यपूर्ण समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वास्तव में महाकवि सोमेश्वरदेव ने महा-काव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित-संग्रह तथा प्रशस्तियों की रचना कर संस्कृत साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान किया है। इस ग्रन्थ का सारगर्भित अध्ययन वस्तुवर्णन, अलङ्कार, छन्द तथा रस की दृष्टि से करते हुये उनके गुणों का सम्यग् विवेचन किया गया है। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि लेखक ने इस कार्य को बड़े ही मनोयोग तथा परिश्रम से किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library
7623
Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुर्जर कवि श्रीसोमेश्वरदेव और उनकी संस्कृत-काव्य-कृतियाँ—एक अध्ययन

प्रोफेसर डॉ॰ बी॰एन॰ पुरी जी
को
आदर समर्पित
देवदत्त
18.5.87.

State Museum Library
7623
Lucknow

डा॰ देवदत्त शुक्ल

एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰, साहित्याचार्य

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग

श्री जय नारायण डिग्री कालेज, लखनऊ

लखनऊ विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच॰ डी॰ उपाधि हेतु स्वीकृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक—अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य संस्थान

बी-१/३ निराला नगर, लखनऊ

C सर्वाधिकार लेखकायत्त

जुलाई, १९८३

मूल्य—साठ रुपये मात्र

मुद्रक—काका प्रिंटिंग प्रेस, सुन्दरबाग, लखनऊ

मुख्य वितरक—अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य संस्थान
बी—१/३ निराला नगर, लखनऊ-226007

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर्पण

संस्कृत के प्रति अभिरुचि रखने वाले

अनुज इञ्जिनियर ब्रह्मदत्त शुक्ल

को

सस्नेह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमुख

Dr. S, S. Misra
M.A (Sans., Eng., Sans. cul.),
LL. B., Ph. D., D. Litt.
Professor & Head
Sanskrit Department
Lucknow university.

Tel (Res.) 81913
Kumar Sadan,
Babuganj
Lucknow-226007
1-10-1982

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने तेरहवीं शताब्दी के गुर्जरकवि श्रीसोमेश्वर देव की काव्य-कृतियों का वैदुष्यपूर्ण समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वास्तव में महाकवि सोमेश्वर देव ने महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित संग्रह तथा प्रशस्तियों की रचना कर संस्कृत साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान किया है। इस ग्रन्थ का सारगर्भित अध्ययन वस्तुवर्णन, अलंकार, छन्द तथा रस की दृष्टि से करते हुये उनके गुणों का सम्यग् विवेचन किया गया है। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि लेखक ने इस कार्य को बड़े ही मनोयोग तथा परिश्रम से किया है।

वैदर्भी तथा गौड़ी रीतियों में रचे कवि के महाकाव्यों के अध्ययन से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वह कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष की परम्परा में आते हैं। गुर्जरकवि श्री सोमेश्वरदेव की कृतियों का यह मौलिक, सारगर्भित एवं नितान्त उपादेय विवेचन मध्यकालीन संस्कृत साहित्य के लिये एक महत्वपूर्ण देन है।

उत्तर प्रदेश निवासी डा० देवदत्त शुक्ल का यह साहित्यिक कार्य गुर्जर प्रान्त के संस्कृत महाकवि श्रीसोमेश्वर देव की कृतियों से सम्बन्धित है। अन्तः प्रान्तीय सम्बन्धों को सशक्त बनाने में इस प्रकार के साहित्यक कार्य संस्कृत के बिकास के लिये प्रेरणाप्रद होंगे, ऐसा मेरा बिश्वास है।

डा० शिवशेखर मिश्र
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरोवाक्

परम हर्ष का विषय है कि डा० देवदत्त शुक्ल का शोध प्रबन्ध "गुर्जरकवि श्रीसोमेश्वरदेव और उनकी संस्कृत-काव्य-कृतियाँ : एक अध्ययन" जो मेरे निर्देशन में लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत हुआ था, अब विद्वानों के समक्ष ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो रहा है। डा० शुक्ल ने बड़े ही मनोयोग से महाकवि सोमेश्वरदेव की विविध काव्य कृतियों का सम्यक् अध्ययन कर इस शोध प्रबन्ध को लिखा था और इस दिशा में यह उनका मौलिक प्रयास था। यह ग्रन्थ अन्तःप्रान्तीय सौहार्द भाव का अभिव्यञ्जक है; क्योंकि इसमें एक उत्तर प्रदेशीय व्यक्ति द्वारा गुर्जरदेशीय कवि की कृतियों की समीक्षा की गई है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ की उपादेयता और महत्ता स्वयमेव बढ़ जाती है। यदि संस्कृत में इस प्रकार के शोध प्रबन्धों का लेखन हो तो निस्सन्देह उससे पारस्परिक मैत्री बढ़ेगी, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है।

लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में महाकवि सोमेश्वरदेव के जीवन वृत तथा समय पर प्रकाश डाला गया है और लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह चालुक्यवंशी राजा भीमदेव के आश्रित कवि और कुलपुरोहित थे तथा १२वीं और १३ वीं शताब्दी के मध्य उत्पन्न हुए थे। द्वितीय अध्याय में कवि की कृतियों का संक्षिप्त परिचय है, जिससे कवि की बहुमुखी प्रतिभा प्रकट होती है; क्योंकि उसने महाकाव्य, नाटक स्तोत्र, सुभाषित और प्रशस्तियाँ आदि सभी कुछ लिखा है। इन काव्य कृतियों में सुरथोत्सव महाकाव्य का विशेष महत्व है; क्योंकि इसमे मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत देवी माहात्म्य अत्यन्त काव्य कौशल के साथ वर्णित किया गया है। कवि का दूसरा महाकाव्य कीर्तिकौमुदी है, जिसमें उसके परममित्र अमात्य वस्तुपाल का काव्यात्मक वर्णन है। यह महाकाव्य तत्कालीन गुर्जरदेशीय समाज और इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। रामायण कथा पर आश्रित उल्लाघराघव कवि की नाट्य कृति है। इस प्रकार सोमेश्वरदेव ने दृश्य-श्रव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों प्रकार के काव्यों की रचना कर मध्ययुगीन संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय प्रकाशित ग्रन्थ के अष्टम अध्याय के रुप में उपन्यस्त है। इसमें कवि की कृतियों में प्रतिबिम्बित तत्कालीन गुर्जरदेश की सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण है। तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अध्याय क्रमशः वस्तु वर्णन, अलंकारयोजना, छन्दोविधान तथा रसनिरुपण से सम्बद्ध हैं। सप्तम अध्याय में कवि की एक मात्र नाट्य कृति उल्लाराघव की नाट्य शास्त्रीय समीक्षा है। परिशिष्ट में लेखक ने सोमेश्वर देव के वंश वृक्ष का वर्णन किया है। इस प्रकार अष्टाध्यायात्मक इस ग्रन्थ में लेखक ने सोमेश्वर देव सम्बन्धी विपुल सामग्री विद्वानों के समक्ष गुण-दोष-विवेचनार्थ प्रस्तुत की है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि डा० शुक्ल की इस महनीय मौलिक कृति का विद्वानों में पर्याप्त समादर होगा। इसके अध्ययन से परस्पर सद्भाव बढ़ेगा। किं बहुना, विद्वान लेखक का यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ राष्ट्रीय एकता की दिशा में प्रथम सोपान सिद्ध होगा।

डा० मातृदत्त त्रिवेदी
रीडर, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा
संवत् २०४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मनिवेदन

गुर्जरकवि श्री सोमेश्वर देव ने काव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित तथा प्रशस्तियों की रचना कर संस्कृत-साहित्य की विभिन्न सरणियों में उत्कृष्ट कार्य किया है। इस ग्रन्थ में कवि की कृतियों का एक समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में महाकवि सोमेश्वर देव के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया गया है। द्वितीय अध्याय में कवि की रचनाओं के सम्बध में विवेचन किया गया है। कवि रचित पौराणिक महाकाव्य सुरथोत्सव में शुम्भवध की घटना वर्णित है। ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी में महामात्य वस्तुपाल का काव्यात्मक जीवन-चरित वर्णित है। उल्लाघराघव नाटक तथा रामशतक स्तोत्र के विषय भगवान् राम हैं। ये दोनों ही कृतियां काव्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। विविध विषयों पर कवि ने कर्णामृतप्रपा नामक एक मनोहारी सुभाषितावली भी प्रस्तुत की है। कवि की प्रशस्तियां ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं।

इस समीक्षात्मक अध्ययन के तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ अध्यायों में क्रमशः वस्तुवर्णन, अलङ्कार, छन्द तथा रस का निरूपण किया गया है। कवि ने वस्तु वर्णन के अनुसार ही अलङ्कार एवं छन्द के सहयोग से काव्य-रस की पावनी गङ्गा प्रवाहित की है, जिसके समक्ष मैं अनायास ही नत हूँ :—

सोमेश्वरीयाः कविताः प्रशस्तास्तदात्मभूतश्च रसः प्रशस्तः।
तत्काव्यसन्मन्थनबोधमुग्धस्तस्मै मुदाहं नतिमर्पयामि ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में उल्लाघराघव नाटक का नाट्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि राम परक नाटकों में उल्लाघराघव नाटक का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में कवि की रचनाओं के आधार पर तत्कालीन सामाजिक, साहित्यिक, राजनैनिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी तथा प्रशस्तियों से तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं की प्रचुर सूचना मिलती है। तत्कालीन संस्कृत साहित्य की समृद्धि सूचित करती हैं कि सामाजिक व्यवस्था उत्तम थी। हिन्दू तथा जैन दोनों ही धर्मों का प्रचार था। कवि सोमेश्वर देव ने ही जहां एक ओर वैष्णव देवताओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है, वही दूसरी ओर जैन मन्दिरों का प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं। कवि की उत्कृष्ट रचनाओं के अध्ययन के आधार पर यह सुनिश्चित हो जाता है कि सोमेश्वर देव महाकवि कालिदास, भारवि तथा माघ की परम्परा में आते है। ग्रन्थ के परिशिष्ट में महाकवि सोमेश्वर देव का वंशवृक्ष दिया गया है। तदनन्तर अनुशीलित-ग्रन्थ सूची प्रस्तुत की गयी है।

इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप देने में मुझे सोमेश्वर देव के नगर अनहिलवाड़ के निवासी डा० बी० जे० सान्डेसरा, भूतपूर्व निदेशक : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बड़ौदा से विशेष सहायता मिली। उन्हीं से हमें ज्ञात हो पाया कि श्री सोमेश्वर देव के वंशज गुजरात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति श्री हरिसिद्ध भाई दिवेटिया की पुत्री सुनयना एच० दिवेटिया सम्प्रति बड़ौदा विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग में रीडर है। महाकवि के वंशज होने के कारण सितम्बर १९८० में मैंने डा० दिवेटिया तथा अनहिलवाड़ निवासी होने के कारण डा० सान्डेसरा से बड़ौदा जाकर भेंट की। उन दोनों के महत्वपूर्ण सुझावों से अमूल्य लाभ मिला। बड़ोदा प्रवास के बाद मैं गिरनार तथा आबू पर्वत पर सोमेश्वर देव रचित एवं प्रस्तर पर उत्कीर्ण प्रशस्तियां देखने गया। ये प्रशस्तियाँ साहित्यिक तथा राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। आबू–प्रशस्ति का जैन मन्दिर ७०० वर्ष बाद आज भी कला की दृष्टि से सजीव है।

कृतज्ञता ज्ञापन :—

यह शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करने में मुझे जिन ग्रन्थों तथा विद्वानों से सहायता मिली है, उनके प्रति मैं बहुत आभारी हूँ। सर्व प्रथम मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० शिवशेखर मिश्र को आमुख लिख कर प्रोत्साहित करने के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ। कवि के महाकाव्यों की क्लिष्टता को दूर करने में मुझे आदरणीय विद्वान् आचार्य आनन्द झा का आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहा अतः वह मेरे लिए वंदनीय है :—

सुरथोत्सव काठिन्यं क्षणेन प्रविलापयन्।
आनन्दझामहाभागो वन्द्यो माघकवीन्द्रवत्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लखनऊ विश्वविद्यालय के तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० सत्यव्रत सिंह द्वारा दिये गये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय का निर्देशन कार्य डा० मातृदत्त त्रिवेदी, रीडर संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के मौलिक तथा सारगर्भित सुझावों द्वारा एवं अब पुरोवाक् लिखकर सम्पन्न हुआ अतः मैं उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करता हूँ :—

प्राकाशयद् भृशं यो मे सुशुभ्रां शेमुषीं सदा ।
गुरुं मातृदत्तं तं वन्दे विद्याविशारदम् ।।

अमूल्य सुझाओं एवं सहयोग के लिए डा० रामचन्द्र द्विवेदी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग जयपुर विश्वविद्यालय; डा० यस० ए० डागे, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, बम्बई विश्वविद्यालय; डा० जे० पी० सिन्हा संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय—सम्प्रति प्रोफेसर प्राच्यविद्या विभाग, ट्यूरिन विश्वविद्यालय, नार्थ इटली; कालेज के प्राचार्य श्री रमेश चन्द्र दीक्षित तथा सहयोगी श्री जयशंकर मिश्र के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध की नवीनतम पाश्चात्य विधाओं के मर्मज्ञ एवं मेरे शुभेच्छु डा० ए० के० श्रीवास्तव, रीडर अंग्रेजी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त करूँ, जिन्होंने प्रकाशन सम्बन्धी सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाया। निःसन्देह उनकी साहित्यिक अभिरुचि से प्रेरित होकर ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। प्रूफ आदि संशोधन हेतु समुचित आवास व्यवस्था प्रदान करने के लिए श्रीमती रेवा श्रीवास्तव, अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, महिला कालेज, लखनऊ तथा विषम परिस्थितियों में भी मुद्रण कार्य में सहयोग प्रदान करने वाली श्रीमती वीणा मिश्रा तथा डा० पी० डी० मिश्र, प्रगति प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ बधाई के पात्र हैं। शिष्य श्री अलिन्द कुमार त्रिवेदी, व्यवस्थापक, काका प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ को मुखपृष्ठ तथा अवशेष मुद्रण कार्य सम्पन्न कराने के लिए धन्यवाद देता हूँ। शीघ्र प्रकाशन हेतु मेरे परिवार के सभी सदस्यों की उत्सुकता एवं सहयोग सराहनीय रहा है।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ पर अपनी सम्मतियां प्रदान की हैं। मैं अपने उन मित्रों और विद्वानों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने प्रकाशन कार्य में व्यवधान आने पर सहयोग, सुझाव तथा प्रोत्साहन प्रदान किया है।

देवदत्त शुक्ल

B—1/3 निराला नगर
लखनऊ

चैत्र राम नवमी
संवत् २०४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

पृष्ठ

१. समर्पण ३

२. आमुख ४

३. पुरोवाक् ५

४. आत्मनिवेदन ७

५. विषय-सूची १०

प्रथम परिच्छेद

गुर्जर कवि श्रीसोमेश्वर देव : संक्षिप्त परिचय ... १—२५

सोमेश्वरदेव के पूर्वज—५; सोमेश्वरदेव—९; समसामयिक काव्य-चर्चा—१२; सोमेश्वरदेव के कवि-जीवन का अन्तिम समय १६; काल-निर्णय १८; सन्दर्भ-सूची—२१।

द्वितीय परिच्छेद

महाकवि सोमेश्वर देव की काव्य-कृतियाँ ... २६—८८

सस्कृत साहित्य में महाकाव्य—२९; सुरथोत्सव महाकाव्य—३२; कीर्तिकौमुदी महाकाव्य ४०; उल्लाघराघव नाटक—५२; रामशतकम्स्तोत्र—५७; कर्णामृतप्रपा सुभाषित संग्रह—६१; प्रशस्तियाँ—६७; आबू प्रशस्ति—६९; वैद्यनाथ प्रशस्ति—७१; प्रकीर्णश्लोक ७३; कवि की कृतियों का पौर्वापर्य तथा काल-निणय—७८; सन्दर्भ-सूची—८१।

तृतीय परिच्छेद

वस्तु-वर्णन ... ... ८९—१२२

नगर वर्णन-९०; सिद्धसर वर्णन-९३; गिरिवर्णन-९४; सूर्यास्तवर्णन-९६, अन्धकार वर्णन-९९; चन्द्रोदय तथा प्रभात वर्णन १०४; षड्ऋतु वर्णन-१०८; सन्दर्भ सूची-१२०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ परिच्छेद

अलङ्कार-योजना १२३-१६२

साहित्य में अलङ्कार विधान-१२३; कवि सोमेश्वर देव के महाकाव्यों में अलङ्कार-योजना-१२७; अनुप्रास-१२८; यमक-१२९; श्लेष-१३०; चित्रालङ्कार-१३१; उपमा-१३५; मालोपमा, लुप्तोपमा, श्लेषोपमा, रूपक-१३९; उत्प्रेक्षा-१४१; संदेह-१४२ विरोध तथा सहोक्ति-१४४; विशेषोक्ति-१४५; विभावना-१४६; समासोक्ति तथा अतिशयोक्ति-१४७; अर्थान्तरन्यास-१४८; परिणाम-१४९; स्वभावोक्ति तथा यथासंख्या-१५१; हेतु तथा व्याजोक्ति-१५१ अपन्हुति तथा परिकर-१५२; तुल्ययोगिता-१५३; दीपक-१५४; संकर एवं संसृष्टि-१५५; सन्दर्भ-सूची १५८।

पञ्चम परिच्छेद

छन्दोविधान ... ... १६३—२१२

छन्द की उपयोगिता और महत्व-१६३; सोमेश्वरदेव द्वारा प्रयुक्त छन्द-१६५; अनुष्टुप्-१६७; इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति १७४; रथोद्धता एवं स्वागता-१८१; शालिनी-१८३; मालभारिणी-१८५; वंशस्थ-१८६; भुजंग प्रयात-१८७; पुष्पिताग्रा-१८८; द्रुतविलम्बित; प्रहर्षिणी, मञ्जुभाषिणी वसन्ततिलका-१९३; मालिनी तथा शिखरिणी-१९७; हरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता-२०२; शार्दूलविक्रीडित-२०३; स्रग्धरा-२०६; कवि के इतर छन्द-२०७; सन्दर्भ-सूची २०९।

षष्ठ परिच्छेद

रस-निरूपण .. .. २१३—२३८

श्रीसोमेश्वर देवं की दृष्टि में कवि, काव्य और रस-२१४; रस-साक्षात्कार-२१६; सुरथोत्सव और कीर्तिकौमुदी में रस-योजना-२१७; शृंगार-२१८; करुण-२२४; वीर-२२७; भयानक-२३२; वीभत्स-२३४; अद्भुत-२३५; सन्दर्भ सूची-२३७।

सप्तम परिच्छेद

कवि की नाट्यकृति : उल्लाघराघव ... २३९—२७३

उल्लाघ राघव का इतिवृत्त-२४२; उल्लाघराघव नाटक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का महत्व-२४७; नाटक के प्रमुख पात्र-२४९; उल्लाघराघव नाटक में रस-योजना-२५९; रामपरक नाटकों में उल्लाघराघव २६६; उल्लाघराघव की मौलिकता तथा उस पर प्रभाव २६८; सन्दर्भ-सूची-२७२ ।

अष्टम परिच्छेद

कवि की कृतियों में प्रतिबिम्बित तत्कालीन गुर्जर देश-२७४—३०१ सामाजिक प्रवृत्तियाँ–२७५; साहित्यिक प्रवृत्तियाँ-२८१ साहित्यिक वातावरण २८२; राजनैतिक प्रवृत्तियाँ-२८३; चालुक्य वंश-२८४; वीरधवल-वंश-२८७; सिन्धुराज के साथ गुर्जरेश्वर का संग्राम-२९०; धार्मिक प्रवृत्तियाँ-२९२; शिवोपासना-२९३; शक्तिपूजा-२९५; रामोपासना-२९६; कृष्णोपासना-२९७; गङ्गावर्णन २९८; जैनधर्म-२९९; सन्दर्भ-सूची-३०१ ।

परिशिष्ट

१—सोमेश्वरदेव का वंश वृक्ष १

२—अनुशीलित ग्रन्थ-सूची

(अ) श्री सोमेश्वरदेव की कृतियाँ २

(ब) सहायक ग्रन्थ-सूची ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम अध्याय

गुर्जरकवि श्री सोमेश्वर : संक्षिप्त परिचय

यस्याऽऽस्ते मुखपङ्कजे सुखमृचां वेदः, स्मृतीर्वेद यः,

नेता सद्मनि यस्य, यस्य रसना सूते च सूक्तामृतम् ।

राजानः श्रियमर्जयन्ति महतीं यत्पूजया गूर्जराः,

कर्तुं तस्य गुणस्तुतिं जगति कः सोमेश्वरस्येश्वरः ? ॥

महामात्य वस्तुपालस्य

गुर्जरकवि सोमेश्वर अथवा सोमेश्वरदेव अणहिल्लपत्तन के चालुक्य राजाओं के वंशपरम्परागत [1] पुरोहित थे। इस तथ्य की पुष्टि कवि के सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी नामक महाकाव्यों के प्रत्येक सर्ग के अन्त में दी हुई पुष्पिकाओं से हो जाती है। [2] गुर्जर प्रदेश के चालुक्य नृपति भीमदेव द्वितीय के सोमेश्वरदेव आश्रित कवि थे। इसके अतिरिक्त वह महामात्य वस्तुपाल के परम मित्र तथा चालुक्य वंश के शाखान्तर से उत्पन्न बघेल नृपति लवण प्रसाद एवम् उनके पुत्र वीरधवल के भी राजकवि थे। इन बघेल राजाओं की राजधानी धवलक्कक अथवा धोलका थी, जो कि आधुनिक अहमदाबाद जिले में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि ने अपना नामोल्लेख स्वरचित काव्यों में दो प्रकार से किया है। उन्होंने कतिपय स्थलों पर सोमेश्वरदेव तथा कहीं - कहीं सोमेश्वर का ही प्रयोग किया है। सोमेश्वरदेव नाम का प्रयोग महाकाव्यों के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिकाओं में प्राप्त होता है। पुष्पिकाओं के अतिरिक्त नामोल्लेख महाकाव्यों के मध्यभाग में भी प्रसंगतः आया है।[३] नाम के आधार पर कवि की स्वरचित रचनाओं का निर्णय हो चुका है। मम्मट रचित काव्यप्रकाश पर एक टीका उपलब्ध होती हैं, जिसका नाम काव्यादर्श अथवा संकेत[४] है। कतिपय विद्वानों ने इस टीका के लेखक सोमेश्वर को हमारे कवि से अभिन्न माना है। अभिन्न मानने वालों में पीटर्सन[५] (Peterson) तथा आफ्रेट[६] (Afrect) मुख्य हैं परन्तु यह दोनों सोमेश्वर एक नहीं, अपितु भिन्न-भिन्न हैं। काव्यादर्श के रचयिता सोमेश्वर भरद्वाज वंश में उत्पन्न भट्ट देवक के पुत्र थे :—

भरद्वाजकुलोत्तंसभट्टदेवकसूनुना।
सोमेश्वरेण रचितः काव्यदर्शसुमेधसा[७]॥

उपर्युक्त सूचना के विपरीत हमारे कवि सोमेश्वरदेव वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न और 'कुमार' के पुत्र थे। कवि ने स्वयं कहा है : —

कुमार पुत्रेण कुमारमातुः
काव्यं तदेतज्जगदेकदेव्याः।
श्रुतिस्मृतिव्याकृतियज्ञविद्या -
विशारदेन क्रियते स्म तेन[८]॥

इस प्रकार पीटर्सन (Peterson) और आफ्रेट (Afrect) के तर्क निरस्त हो जाते हैं और यह सिद्ध हो जाता है कि काव्यादर्श के रचयिता हमारे कवि सोमेश्वरदेव नहीं हैं।

संस्कृत काव्य का प्रथम अवतार सात्विक भावना से अनुप्राणित आश्रम के वातावरण में होता है, परन्तु उसका अभ्युदय सरस्वती के वरद पुत्रों को आश्रय देकर कवि कला को प्रोत्साहन देने वाले राजाओं के दरबार में होता है। संस्कृत के मान्य कवियों का सम्बन्ध वैभवशाली महीपालों के साथ सर्वदा स्थापित था। विक्रमादित्य के विना न कालिदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उदय संभव था, न हर्षवर्धन के बिना बाणभट्ट का। परम्परया सोमेश्वर देव भी चालुक्य नृपति भीमदेव द्वितीय के राजाश्रित थे। वह चालुक्य वंश के पुरोहित भी थे, परन्तु उनका सम्बन्ध चालुक्य वंश के मंत्री महामात्य वस्तुपाल से अधिक था। महामात्य वस्तुपाल संस्कृत विद्वानों के मध्य 'लघु-भोजराज' के रूप में प्रसिद्ध थे। नीति कुशल तथा विद्वान् वस्तुपाल राजाश्रय की अपेक्षा कहीं अधिक सामेश्वरदेव को सम्मान प्रदान करते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वह स्वयं संस्कृत के विद्वान थे, एवं सम्पूर्ण राज्य-भार को वाहन करते थे। यही कारण है कि कवि ने महा-मात्य वस्तुपाल पर एक स्वतंत्र महाकाव्य की रचना की है। कीर्ति कौमुदी नामक महाकाव्य, कवि का मंत्री के प्रति आदरभाव का ज्वलन्त उदाहरण है। ग्रन्थारम्भ में सोमेश्वरदेव वर्णन करते हैं:–

कुलमुज्ज्वलमाकारं, चारुमाचारमुत्तमम् ।
दानं सम्मानसम्पन्नमुन्नतिं नमिताहिताम् ।।

प्रज्ञामाङ्गिरसावज्ञां, दयां भग्नभयोदयाम् ।
श्लोकं भूषितभूर्लोकं, मन्त्रितां न्याययन्त्रिताम् ।।

विलोक्य वस्तुपालस्य भक्तिं चात्मनिनिर्भराम् ।
श्रीसोमेश्वरदेवेन तत्स्वरुपं निरुप्यते ।।

मंत्रीशगुणमाणिक्य श्रेणिलाभमहोत्सवे ।
श्री सोमेश्वरदेवस्य, गातुमुत्तम्यतीव गीः ।।

(कीर्तिकौमुदी १/४४ से ४७ तक)

कवि कहता है कि मैं वस्तुपाल के चरित्रचित्रण में इसलिए प्रवृत्त होता हूं, क्योंकि मंत्री की मुझमें अपार भक्ति है, महामात्य का परिवार सुशील एवं पवित्र है, उनका व्यक्तित्व उत्कृष्ट, व्यवहार उत्तम, चरित्र दया से युक्त, वृहस्पति को भी निन्दित करने वाली मेधा, उसका यश पृथ्वी का अलंकार तथा शासन उचित नियमों से आबद्ध है।

संस्कृत में महाकवियों के काव्यालोकन से उन-उन महाकवियों की प्रतिभा का परिचय तो अवश्य मिल जाता है तथा उनका काव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्कृष्ट हो, इसकी प्रवृत्ति तो पायी गयी है, परन्तु महाकवियों ने स्वतः अपने सम्बन्ध में परिचय देना अपना उद्देश्य नहीं बनाया है, ऐसी परिस्थिति में आलोचक के समक्ष जीवन-वृत्त तथा काल-निर्णय एक दुरुह विषय बन जाता है। कतिपय महाकवि अवश्य इसी श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने प्रसंगतः अथवा अन्तिम सर्ग में अपना परिचय प्रस्तुत किया है। हमारे कवि सोमेश्वरदेव इसी परम्परा के अनुयायी हैं। अपने सुरथोत्सव महाकाव्य के अन्तिम आत्म कथनात्मक सर्ग में कवि के कथनानुसार उनके पूर्वज वेद के प्रकाण्ड पण्डित और बड़े बड़े यज्ञ कर्त्ताओं के रूप में प्रसिद्ध थे :—

अस्ति प्रशस्ताचरणप्रधानं,
स्थानं द्विजानां नगराभिधानम्।
कर्तुं न शक्नोति कदापि यस्य,
त्रेतापवित्रस्य कलिः कलङ्कम् ॥
(सुरथोत्सव १५/१७)

प्रशस्त आचरणों की जहाँ प्रधानता है ऐसा नगर अर्थात् वडनगर नामक ब्राह्मणों का स्थान है, जहाँ यागादि नियमतः सम्पादित होते थे। 'यागादिरेव धर्मः' वहाँ के निवासियों का परम लक्ष्य था। वहाँ पर याग होते रहने के कारण गार्हपत्य, आहवनीय एवं दाक्षिणाग्नि सदैव प्रज्वलित रहती थी। अतएव कलि का वहाँ पर अपना प्रभाव दिखा पाना असंभव था। इस प्रकार के प्रशस्ति सर्ग के उल्लेख से मालूम होता है कि सोमेश्वरदेव के पूर्वजों की मातृभूमि वडनगर थी। सोमेश्वरदेव ने 'सुरथोत्सव' महाकाव्य के इसी अन्तिम सर्ग में अपने दश पूर्वजों का भी उल्लेख किया है। पूर्वजों का महत्व स्थापित करते हुये उनका संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रस्तुत किया है।

वडनगर वास्तव में गुर्जर प्रदेश का एक पवित्र तीर्थ-स्थान था, जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति वेद-पाठ में दक्ष था। यहां तक कि अल्पायु बालक भी वेद पाठ से अनभिज्ञ नहीं थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बडनगर[१०] की पवित्रता एवं सौन्दर्य से आकृष्ट हो कर देवता स्वर्ग लोक को छोड़कर ब्राह्मणों के गृहों में अवतरित हो रहे थे। उसी नगर में वशिष्ठ गोत्र का एक ब्राह्मण परिवार रहता था, जो अपना उपनाम गुलेचा धारण किये हुये था। इसी परिवार में सोमेश्वर के पूर्वज सोल शर्मा का जन्म हुआ।

सोमेश्वर देव के पूर्वज :

गुलेचा गोत्र में उत्पन्न सोल शर्मा ने सोमयाग सम्पादित कर अपने पूर्वजों को संतुष्ट किया, साथ ही साथ प्रयाग में पूर्वजों के लिये श्राद्ध भी किया। गुलेचा[११] वंशोत्पन्न सोल शर्मा को चालुक्य नृपति मूलराज[१२] ने अपना सम्मानित पुरोहित[१३] नियुक्त किया। चालुक्यों में उसने उसी प्रकार प्रभूत यश अर्जित किया जिस प्रकार से वशिष्ठ ने सूर्य वंश में यश और सम्मान अर्जित किया था :—

यथा प्रतिष्ठां महतीं वशिष्ठस्तिग्मांशुवंशे भगवानवाप ।
निजेन सौवस्तिकता गुणेन चौलुक्यभूपाल कुले तथासौ ॥
(सुरथोत्सव १५/९)

इस कलियुग में भी उसने नियमत: सोमयाग सम्पादित किये । उनके गुणों का वर्णन कहां तक किया जाय, उन्होंने असंख्यों याग कराये, निर्धनों को भोजन दिया, अभ्यास के द्वारा जितेन्द्रिय बने तथा स्वयं प्रतिदिन ऋचाओं का स्वाध्याय करते थे। सोल शर्मा के पुत्र का नाम लल्ल शर्मा था।

लल्ल शर्मा राजा मूल राज के पुत्र चामुण्डराज[१४] के सम्मानित पुरोहित थे। उनके पुत्र का नाम मुञ्ज था। मुञ्ज चामुण्ड राज के पुत्र दुर्लभराज[१५] के पुरोहित थे। पुरोहित के संरक्षण में संसार की कोई भी वस्तु दुर्लभराज के लिए दुर्लभ नहीं थी। कवि ने सत्य ही कहा है :—

सद्वंश जातेन गुणान्वितेन
शरासनेनेव पुरोहितेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एतेन मेने भुवने न कि-ञ्चि
न्न दुर्लभं दुर्लभराजदेवः ॥
(सुरथोत्सव १५/१४)

मुञ्ज के पुत्र का नाम सोम था। सोम[१६] राजा भीम प्रथम के सम्मानित पुरोहित थे। पुरोहित सोम [१७] के ही कृत्यों का फल था कि राजा भीम प्रथम ने सर्वत्र विजय प्राप्त की। सोम के पुत्र का नाम आम शर्मा था।

आम शर्मा भीम प्रथम के पुत्र कर्ण[१८] के पुरोहित थे। पिता सोम की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने पुरोहित का कार्य प्रारंभ किया। आम शर्मा ने छः प्रकार के ज्योतिष्ठोम याग करके सम्मानित याज्ञिक सम्राट[१९] की पदवी को प्राप्त किया। कवि ने सत्य ही कहा है :—

भित्वा भानुं तत्र ताते प्रयाते
पुत्रः श्रीमानामशर्मा बभूव।
कृत्वा सम्यक्सप्तसंस्थाः क्रतूनां
क्रीताकाम्रा येन सम्राडभिख्याम् ॥
(सुरथोत्सव १५/१७)

आम शर्मा ने चालुक्य राजाओं से धन अर्जित कर उसे सुकृत्यों में व्यय किया। उसने शिवालय निर्मित कराये, कमलयुक्त तालाबों का प्रबन्ध कराया तथा निर्धनों को दान दिया :—

दानानि तानि सदनानि च तानि शम्भो -
रम्भोजराजिरुचिराणि सरांसि तानि।
येनामुना मुनिजनानुकृताकृतानि
वित्तैश्चुलुक्यकुलसंभवभूपदत्तैः ॥
(सुरथोत्सव १५/१९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक बार मालवराज यशो वर्मा तथा कर्ण से युद्ध हुआ, जिसमें मालवराज के पुरोहित ने एक अभिचार कृत्य किया। आम शर्मा के शान्तिमंत्रो द्वारा वह कृत्य प्रतिषिद्ध किया गया और पुनः मालवाधीश के पुरोहित को ही मार कर तिरोहित हो गया।[२०]

आम शर्मा के पुत्र का नाम कुमार था, जो कि चालुक्य राजा सिद्धराज[२१] का पुरोहित था। पुरोहित के आशीर्वाद से सिद्धराज ने सिन्धु देश के नृपति को बन्दी बना लिया, मालवाधिपति यशोवर्मा को परिवार सहित कारागार में भेज दिया एवम् उग्र नृपति सपादलक्ष आनल देव को विनत होना पड़ा। इस चक्रवर्ती पुरोहित ने सैकड़ों याग कराये तथा असंख्य तडाग खुदवाये :-

कुशपशोभितैर्यागैस्तडागैश्च परः शतैः ।
दृष्टं पूर्तं च यश्चक्रे चक्रवर्तिपुरोहितः ॥
(वही, १५/२३)

कुमार के पुत्र का नाम सर्वदेव था जो मनुस्मृति के ज्ञाता थे और अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलते हुये, उन्होंने असंख्य याग कराये, असहायों की सहायता की तथा निर्धनों को दान दिया।

सर्वदेव के पुत्र का नाम आमिगा था, जो कि वेद-विद् थे। पुरोहित आमिगा का कहना था कि जो व्यक्ति इस संसार में सत्कर्म करना चाहते हैं, वे अपने से उत्तम जनों की प्रशंसा न सुनें तथा इस माया युक्त संसार से विरत रहे। ब्रह्म से उत्पन्न चार वेदों के समान उसके चार सुपुत्र थे, उनमें से अग्रज सर्वदेव था, जो कि एक वैदिक-विद्वान् था। इसके अतिरिक्त तीन पुत्रों के नाम कुमार, मुञ्ज एवम् आहड थे।

आमिगा पुत्र सर्वदेव ने चालुक्य नृपति कुमार पाल[२२] के अवशेषों को पवित्र गंगा नदी में प्रवाहित कर; गया तथा प्रयाग में ब्राह्मणों को प्रभूत दान दिया। उन्होंने स्थान-स्थान पर तडाग खुदवये। वह प्रतिदिन शिव पूजा करते थे, प्रत्येक ब्राह्मण का सत्कार करते थे अस्तु प्रत्येक घर में उनकी प्रशंसा होती थी :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थाने स्थाने तडागानि शिवपूजा दिनेदिने ।
विप्रे विप्रे च सत्कारः श्लाघा यस्य गृहे गृहे ।।
(वही, १५/३०)

सर्वदेव का लघुभ्राता कुमार धनलोलुप नहीं था। एक दिन सूर्य ग्रहण का समय था। चालुक्य नृपति कुमार पाल के पुत्र अजयपाल[२३]ने कुमार को दान स्वरूप बहुमूल्य आभूषण प्रदान किये, परन्तु उन आभूषणों को पुरोहित ने स्वीकार नहीं किया, यद्यपि राजा ने बड़ी विनय की। शिव कटुकेश्वर की अर्चना कर कुमार ने राजा के व्रणों को ठीक कर दिया। राजा अजयपाल[२४] के ये व्रण एक युद्ध में हो गये थे। एक बार गुर्जर देश में अकाल पड़ा पुरोहित कुमार ने मुलराज[२५] द्वितीय को विवश किया कि प्रजा कर रहित कर दी जावे :—

विलोक्य दुष्काल वशेन लोकं
कङ्काल शेषं सविशेषशूकः ।
श्रीमूलराजं दलितारिराज –
मचीकवृत्तकरमोचनं यः ।।
(वही, १५/३३)

राष्ट्रकूट नृपित प्रतापमल्ल ने भी उनको अपना सभासद नियुक्त किया। एक बार चालुक्य नृपति ने पुरोहित कुमार को अपना सेनापति बनाया। शत्रुओं को पराजित कर उन्होंने अपने को पद के योग्य सिद्ध कर दिया। एक बार कुमार ने धारा नृपति यशो वर्मा के पौत्र राजा विन्ध्य से युद्ध किया। युद्ध में विन्ध्य को परास्त ही नहीं किया, अपितु उसके नगर गोगस्थान को विनष्ट कर उसके राज भवन के स्थान पर एक कूप खुदवा दिया। उसने मालवा देश से अधिक धन प्राप्त किया और धन को गया जाने पर दान कर दिया। कुमार ने म्लेक्षों की अगणित सेना को राज्ञी-सर के समीप पराजित किया और गंगा के पूत-जल से पितरों का तर्पण किया। वह ब्राह्मणोचित षट्कर्मों का नियमतः पालन करते थे और प्रतिदिन पवित्र गायत्री मंत्र का जप करते थे। याग करते समय वह शास्त्र-योग्यता प्रदर्शित करते थे तथा युद्ध में शस्त्र-दक्षता दिखलाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने सर्वदा अपने शरीर पर ब्रह्म सूत्र तथा हृदय में राज्य सूत्र धारण किया। इस प्रकार राज्य और राजा दोनों के वह शुभेक्षु थे। कुमार की आज्ञाकारिणी पत्नी का नाम लक्ष्मी था। वह साक्षात् लक्ष्मी ही थी। लक्ष्मी से तीन पुत्र महादेव, सोमेश्वर देव तथा विजय उत्पन्न हुये। सोमेश्वरदेव के पुत्र का नाम लल्ल शर्मा था, जिसके प्रार्थना किये जाने पर कवि ने रामायण की कथा को चित्रित करने वाले उल्लाघराघव नामक नाटक की रचना की। इस प्रकार लल्ल शर्मा का भी साहित्य के प्रति प्रेम प्रदर्शित होता है। गुर्जर राजकवि सोमेश्वर देव के वंशज आज भी गुजरात प्रान्त में विद्यमान हैं। गुजरात विश्वविद्यालय के स्वर्गीय उपकुलपति श्री हरसिद्ध भाई दिवेटिया उस विद्वान् राजपुरुष के वंशज हैं। उनकी पुत्री सुनयना दिवेटिया वर्तमान समय में बड़ौदा विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में रीडर हैं[१६]।

सोमेश्वर देव :

सोमेश्वर देव के पिता का नाम कुमार तथा माता का नाम लक्ष्मी था। उनके अग्रज का नाम महादेव तथा अनुज का नाम विजय था। इस प्रकार सोमेश्वर तीन भाई थे।

आदिमः प्रशमसन्दिरं महादेव इत्यभिधया तदङ्गभूः।
येन पाणिनिहितेन पङ्कजेनेव तुष्यति परं सरस्वती ॥

सोमेश्वर देव इति क्षितिदेवस्यास्य बन्धुरनुजन्मा।
अजनिकनिष्ठस्तस्य भ्राता, सुभ्रातान्वयो विजयः ॥

(सुरथोत्सव १५/४१, ४२)

सोमेश्वर देव ने अपने पूर्वजों के लगभग २५० वर्षों का इतिहास प्रस्तुत किया है जिसे पहले प्रतिपादित किया गया है। कवि ने यह संक्षिप्त वर्णन पूर्वज मूलराज से लेकर पिता कुमार पर्यन्त प्रस्तुत किया है। कवि प्रशस्ति वर्णन के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कवि सोमेश्वर देव गुर्जर प्रदेश के एक सम्पन्न, विद्वान् एवं विशिष्ट ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुये थे। कवि का परिवार वडनगर से अनहिलवाड़ तथा धवलक्क में पुरोहित का कार्य करने आया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। किन्तु सम्मानित पुरोहित पद के अतिरिक्त सोमेश्वरदेव के पिता तुल्य कतिपय परिवार के सदस्य युद्ध विद्या तथा सैन्य- संचालन में भी दक्ष थे।

अवाप्तवेदाम्बुधिरोधसा च, पुरोधसा तेन कुमारनाम्ना ।
विनाऽद्य चैद्यक्षितिपाललक्ष्मीं, को मे करिष्यत्यपरः सपत्नीम् ॥

(कीर्तिकौमुदी २/१००)

प्राचीन भारत की तत्कालीन परम्परानुसार सोमेश्वरदेव की शिक्षा-दीक्षा वडनगर में ही हुई। वडनगर उस समय का महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र था। इस सम्बन्ध में सोमेश्वरदेव ने कवि प्रशस्ति वर्णन नामक पन्द्रहवें सर्ग में स्वतः कहा है कि प्रशस्त आचरणों की जहाँ प्रधानता है, ऐसा वडनगर नामक ब्राह्मणों का एक स्थान है, जहाँ बालक भी वेद ज्ञान से रहित नहीं हैं :–

सत्तीर्थस्य सुराश्रितेन जगता यस्योपमा स्यात्कथं
स्वाध्यायैकनिधेर्गत श्रुतिवृत्तेनोर्वीतलेनापि वा ।
यत्सौधेषु विशुद्धवर्जितवपुर्बालोऽपि नालोक्यते,
वन्दे श्रीनगरं तदेतदखिलस्थानातिरिक्तोदयम् ॥

(सुरथोत्सव, १५/२)

वडनगर एक विद्या-केन्द्र होने के कारण सोमेश्वरदेव ने वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन वहीं किया। अध्ययन के अनन्तर पुरोहित सोमेश्वर ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और अपना कार्य पूर्वजों के समान ही सम्पादित किया। कवि ने बघेल नृपति लवण प्रसाद तथा वीरधवल के वंश परम्परागत पुरोहित का कार्यभार सम्भाला। कवि सोमेश्वरदेव चालुक्य-सम्राट भीमदेव द्वितीय[11] के भी पुरोहित थे। कवि ने 'कीर्ति-कौमुदी' महाकाव्य में मूलराज से लेकर भीमदेव द्वितीय तक वर्णन कर शाखान्तर से उत्पन्न अर्णोराज से वीरधवल पर्यन्त बघेल नृपति का वंश वर्णन प्रस्तुत किया है :–

अथ तत्रैव चौलुक्यवंशे शाखान्तरोद्गतः ।
अर्णोराजः स राजर्षिस्तं ममर्ष न विप्लवम् ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तत्पुत्रः प्रसरत्कीर्तिपताकाचुम्बिताम्बरः ।
श्रीलावण्यप्रसादोऽस्ति, प्रासादः शौर्य सम्पदः ॥
श्रीवीरधवलस्तस्य, सूनुर्वीरशिरोमणिः ।
युद्धे जयश्रियं धन्व-ज्यारावैराजुहाव यः ॥
(कीर्तिकौमुदी,२/६२, ६७ तथा ७६)

लवणप्रसाद तथा वीरधवल के मंत्री का नाम वस्तुपाल था, जो सोमेश्वरदेव के परम मित्र थे। यही कारण है कि सोमेश्वरदेव ने वस्तुपाल से सम्बंधित कीर्तिकौमुदी, नामक एक स्वतंत्र महाकाव्य की रचना की है। महामात्य वस्तुपाल ने भी कवि सोमेश्वरदेव की भूरि भूरि प्रशंसा की है। :–

यस्याऽऽस्ते मुखपङ्कजे सुखमृचां वेदः, स्मृतीर्वेद यः
त्रेतासद्मनि यस्य ,यस्य रसना सूते च सूक्तामृतम् ।
राजानः श्रियमर्जयन्ति महतीं यत्पूजया गूर्जराः ,
कर्तुं तस्य गुणस्तुतिं जगति कः सोमेश्वरस्येश्वरः ? [१८]॥

जिन सोमेश्वरदेव के मुख में वेद-ऋचाओं का सुख है अर्थात् जो वेद-पाठ में निष्णात हैं। जो स्मृतियों को जानते हैं जिनके घर में तीनों प्रकार की हवनाग्नियां निवास करती हैं, जिनकी जिह्वा सूक्तामृतम् को उत्पन्न करती है और गुर्जर सम्राट् जिनकी पूजा करके श्री को अर्जित करते हैं, उस कवि सोमेश्वरदेव का गुणगान करने के लिए जगत् में कौन समर्थ है ?

वस्तुपाल ने केवल सोमेश्वरदेव की प्रशंसा ही नहीं की है, अपितु दोनों परम मित्र थे। राजाश्रय प्राप्त कवियों में सोमेश्वरदेव का स्थान प्रमुख था। इसके अतिरिक्त वह चालुक्य राजाओं के वंश परम्परागत पुरोहित थे तथा अनहिलवाड़ एवं धवलक्क राजधानियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था। शत्रुञ्जय तीर्थ यात्रा से जब दोनों भाई वस्तुपाल तथा तेजपाल वापस जाते हुये धवलक्क आये, तो अल्पकाल में ही सोमेश्वरदेव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से इतनी मित्रता हो गई कि सोमेश्वरदेव ने उन दोनों भाइयों की योग्यता बतलाते हुये नृपति वीरधवल से परिचय कराया। वीरधवल ने दानों भाईयों की योग्यता को जान कर भीमदेव द्वितीय से अपने राज्य-संचालन के लिए वस्तुपाल तथा तेजपाल को प्राप्त कर लिया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सोमेश्वरदेव तथा वस्तुपाल एक दूसरे को १२२० ई० से पूर्व अवश्य जानते थे अर्थात् वस्तुपाल के मंत्रित्वकाल के पूर्व वे अवश्य ही परिचित थे। इसकी पूर्ण संभावना है कि इन महापुरुषों का परिचय और अधिक पूर्व समय से रहा हो। चालुक्यों के वंश परम्परागत पुरोहित सोमेश्वरदेव अनहिलवाड मे महामात्य वस्तुपाल से पहले ही मिल चुके हों, यह भी संभव है। इस मित्रता के सम्बन्ध में डा० भोगीलाल जे० सांडेसर की उक्ति अक्षरस: सत्य प्रतीत होती है:—

The impression that these two remarkable men created upon each other may have developed at Dhavalakka into an admiring friendship, which might be regarded as the real fountain-head of this last political and cultural rivival of Hindu Gujarat.

अभिप्राय यह है कि महाकवि सोमेश्वरदेव तथा महामात्य वस्तुपाल की मित्रता से तत्कालीन गुजरात[२६] में राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जागृति उत्पन्न हो गई, जो कि तत्कालीन समाज के लिये अपेक्षित थी।

समसामयिक काव्य चर्चा :

महामात्य वस्तुपाल संस्कृत कवियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वह स्वयं काव्यकला के उपासक थे। वस्तुपाल राजा वीर धवल के द्वारा उन कवियों तथा विद्वानों को पुरस्कृत करवाते थे, जो साहित्य के किसी भी अंग पर कुछ कार्य कर रहे हों। तत्कालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि प्राय: काव्य-गोष्ठियां हुआ करती थी। राजकवि सोमेश्वरदेव के दरबार में आने वाले कवियों ने साहित्य के महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुभाषित संग्रह, प्रशस्ति, धर्मकथा, आदि अंगों पर महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट कार्य किया। साहित्यिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु शास्त्रीय क्षेत्रों में भी कार्य किया गया है, जिनमें काव्यशास्त्र, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, न्याय, ज्योतिष-शास्त्र तथा जैन-धार्मिक साहित्य पर टीकायें आदि प्रमुख हैं। इन विविध क्षेत्रों में कार्य करने वाले कवियों में राजकवि सोमेश्वरदेव, नैषधीय चरित के रचयिता श्रीहर्ष के वंशज हरिहर, नानाक, यशोवीर, सुभट, अरिसिंह, अमर चन्द्रसूरि, विजयसेनसूरि, उदयप्रभसूरि, जिनभद्र, नरेन्द्रप्रभ सूरि, बालचन्द्र, जयसिंहसूरि, माणिक्य चन्द्र तथा मदन आदि कवि हैं।

इन कवियों में आपस में ही कभी कभी ईर्ष्या-द्वेष भी पाया गया है। राजदरबार में रहने वाले हरिहर तथा मदन पण्डित की प्रतिस्पर्धा का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है — 'दोनों कवियों में इतनी प्रतिस्पर्धा थी कि वस्तुपाल दोनों को राज्यसभा में विवाद के डर से एक साथ उपस्थित होने का अवसर ही न देते थे परन्तु द्वारपाल की असावधानी से एक बार ऐसा दुर्योग जुट हो गया। हरिहर कवि दरबार में काव्य सुना रहे थे कि मदन पण्डित आ पहुँचे। वे आते ही हरिहर पर टूट पड़े और कहने लगे कि हरिहर! गर्व छोडो। कविराज रूपी मतवाले हाथियों का अंकुश मैं मदन कवि स्वयं आ गया हूँ :—

'हरिहर! परिहर गर्वं कविराजगजाङ्कुशो मदनः।'

इस पर हरिहर पण्डित ने तत्क्षण उत्तर दिया कि मदन मुंह बन्द करो, 'हरिहर के अतीत चरित का स्मरण तो करो। जानते नहीं हो कि हर ने मदन को भस्म कर डाला था' :—

मदन विमुद्रय वदनं हरिहरचरितं स्मरातीतम्॥

इतने पर बात रुकी नहीं, बल्कि बढ़ती गई। तब वस्तुपाल ने झगड़े को दूर करने के लिए उन दोनों कवियों से निवेदन किया कि नारिकेल को लक्ष्य करके आप लोग सौ सौ श्लोक बनाइये। इसमें जो पहले श्लोक रचेगा, उसकी ही विजय होगी। दोनों ही श्लोक रचना में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संलग्न हो गये । मदन ने तो सौ श्लोकों की रचना कर ली, परन्तु तब तक हरिहर पण्डित ६० श्लोक ही रच पाये । इस पर मंत्री ने कहा कि हरिहर पराजित हो गये । हरिहर ने तुरन्त ही कविता रच कर सुनाई, जिसका भावार्थ यह है :—

अरे ग्रामीण जुलाहा ! ग्रामीण स्त्रियों के पहनने के लिए सामान्य प्रकार के कपड़े को बुन कर अपने को व्यथित क्यों कर रहा है । भद्र पुरुष ! कोई सुन्दर तथा नयी एक ही ऐसी शाटिका क्यों नहीं बनाता, जिसे राजाओं की प्रिय रानियां भी अपने वक्षस्थल से एक क्षण के लिए न उतारें :—

'रे रे ग्राम-कुविन्द ! कन्दलयता वस्त्राण्यमूनि त्वया,
गोणीविभ्रमभाजनानिबहुशः स्वात्मा किमायास्यते ।
अप्येकं रुचिरं चिरादभिनवं वासस्त्वया सूत्र्यताम्
यन्नोज्झन्ति कुचस्थलात् क्षणमपि क्षोणीभृतां वल्लभाः ।।

इस सुन्दर श्लोक से प्रसन्न होकर मंत्री ने दोनों कवियों को सम्मानित किया । इन दोनों उदाहरणों से ज्ञात होता है कि राजा की सभा में रहने वाले पण्डित वाक्-चतुरी में कितने निपुण थे । कभी-कभी जहाँ एक ओर काव्य-गोष्ठियां ईर्ष्या-द्वेष का कारण बनती थी, वहीं दूसरी ओर काव्य-रचना के लिये प्रबल प्रेरणा भी प्रदान करती थी ।

नृपति वीरधवल के यहाँ महामात्य वस्तुपाल की संरक्षता में जो विद्वत् मण्डली थी, उसका गुर्जर प्रान्त में महत्वपूर्ण स्थान था । वहाँ पर नियमतः काव्य, चर्चा हुआ करती थी, राजशेखर के चतुर्विंशति प्रबन्ध से विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्राप्त होती हैं । एक प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि सोमेश्वरदेव तथा जैन पण्डितों मे पर्याप्त ईर्ष्या—द्वेष था । हरिहर नामक जैन विद्वान वीरधवल के दरबार में अपनी बुद्धिमत्ता से राजा वीरधवल तथा महामात्य वस्तुपाल के द्वारा सम्मानित तथा प्रिय बने । सोमेश्वरदेव को यह सब अच्छा नहीं लगा । यहाँ तक हरिहर की उपस्थिति में वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दरबार में भी नहीं आते थे । एक बार राजा ने सोमेश्वरदेव को दरबार में बुलाया और हरिहर के सामने उन १०८ श्लोकों को पढ़ने के लिए कहा जिन्हें सोमेश्वरदेव ने वीरनारायण मन्दिर के प्रस्तर पर उत्कीर्ण होने के लिए रचा था । यह मन्दिर राजा के ही द्वारा बनवाया गया था । जब सोमेश्वरदेव रचना सुना चुके तब हरिहर ने कहा कि रचना अच्छी है और मुझे स्मरण है । स्मरण शब्द पर राजा आश्चर्य चकित हो गये । इस पर हरिहर ने तुरन्त ही श्लोकों को अक्षरश: पढ़ कर सुनाया । सोमेश्वरदेव लज्जा से नतमस्तक हो गये । सभा के विसर्जित होने के अनन्तर सोमेश्वरदेव वस्तुपाल के पास गये और उन्हें विश्वास दिलाया कि रचना मेरी है और यह भी कहा कि हम इस अपमान से कैसे मुक्त हो सकते हैं ? वस्तुपाल ने परामर्श दिया कि आप हरिहर को अपना घनिष्ट मित्र बनाइये । सोमेश्वर देव तथा हरिहर की मित्रता के पश्चात् एक दिन राज-सभा में हरिहर ने बताया कि मेरी स्मरण शक्ति साधना के द्वारा अपूर्व हो गई है । मुझे श्लोकों की कोई भी संख्या एक ही बार स्मरण करने से कण्ठाग्र हो जाती है । वीर नारायण प्रशिस्त वास्तव में सोमेश्वरदेव की रचना है । राजा को इस अलौकिक स्मरण शक्ति पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने दोनों कवियों में मेल कराके दोनों को ही पुरस्कृत किया । सोमेश्वरदेव की महत्ता पुन: स्थापित हो गयी । प्रबन्ध आगे बतलाता है कि कालान्तर में हरिहर ने सोमेश्वरदेव की ईर्ष्यावश राज दरबार को छोड़ दिया ।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से ज्ञात होता है कि महामात्य वस्तुपाल की विजय के उपलक्ष में स्तंभ तीर्थवासियों ने एक उत्सव मनाया । महामात्य, देवी एकल्लवीरा के दर्शन करने गये । इस अवसर पर भी एक कवि–गोष्ठी का आयोजन हुआ । कवि समुदाय के साथ मंत्री द्राक्षालता से बने मण्डप में निर्मित की गई वेदिका पर बैठ गये:–

प्रकल्पितायां क्षितिकल्पवृक्षो,

द्राक्षालतामण्डपवेदिकायाम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृतोपवेशः स चकारगोष्ठी —

मनिष्ठुरोक्तिप्रसरैः कवीन्द्रैः ॥

(कीर्तिकौमुदी ६/४९)

इस कवि-गोष्ठी में कतिपय कवियों ने वस्तुपाल के परिवार की प्रशंसा की तथा कतिपय ने उसके उज्ज्वल चरित्र की प्रशंसा की । कर्ण सदृश वस्तुपाल के कर्ण–कुहर कवि वाणी से पूत हो गये । उन्होंने भी कवियों को उदारता पूर्वक दान दिया:—

कवीश्वराणां पृणति स्म वाणी,

कर्णद्वयं कर्णसमस्य तस्य ।

सोऽपि प्रभोर्हृदयेषु तेषा —

मुदारपाणी रचयाञ्चकार ।

(कीर्तिकौमुदी ६/५२)

चालुक्य दरबार तथा महामात्य वस्तुपाल के संरक्षण में होने वाली काव्यगोष्ठियों का श्रेय कवि सोमेश्वरदेव को है ।

सोमेश्वरदेव के कवि - जीवन का अन्तिम समय :

सोमेश्वरदेव के द्वारा वस्तुपाल के सम्बन्ध में लिखे गये श्लोक यह सिद्ध करते हैं कि सोमेश्वरदेव के हृदय में वस्तुपाल के प्रति अटूट सम्मान है ।वस्तुपाल ने भी सोमेश्वरदेव की विद्वता, काव्य प्रतिभा तथा श्रेष्ठता के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि बार बार अर्पित की है ।

चतुर्विंशति प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि सोमेश्वरदेव का अबाध प्रभाव पट्टण के सिंहासन पर नृपति वीसलदेव के आने तक अक्षुण्ण बना रहा । अपने आश्रयदाता के प्रति सच्चाई एवं प्रेम से सोमेश्वरदेव ने नवनृपति वीसलदेव के ऊपर अपने प्रभाव को सुरक्षित बनाये रखा ।

सोमेश्वरदेव के सम्बन्ध वीसलदेव के साथ भी बहुत अच्छे थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी कारण से सोमेश्वरदेव ने दो बार वीसलदेव के कोप से वस्तुपाल को बचाया[३०]। यदि सोमेश्वरदेव के सम्बन्ध वीसलदेव से अच्छे न होते तो यह कदापि असम्भव नहीं था कि दोनों में वैमनस्य न हो जाता। वस्तुपाल तथा तेजपाल के द्वारा की गयी भलाई को विस्मृत कर जब वीसलदेव उनके प्रति दुर्व्यवहार कर रहे थे तो सोमेश्वरदेव ने तुरन्त ही एक श्लोक की रचना की, जिसमें वस्तुपाल तथा तेजपाल के प्रति की गयी राजा की कृतघ्नता का वर्णन था। वीसलदेव का मस्तक लज्जा से नत हो गया[३१]। प्रबन्ध आगे बतलाता है कि वस्तुपाल की मृत्यु के अनन्तर सोमेश्वरदेव ने पुराणों का प्रवचन भी बन्द कर दिया, क्योंकि वस्तुपाल की मृत्यु से सोमेश्वरदेव को अत्यधिक दुःख था। वीसलदेव ने सोमेश्वरदेव से पुराण-प्रवचन के लिये बार-बार निवेदन किया,[३२] किन्तु सोमेश्वरदेव तैयार नहीं हुये। अन्त में वीसलदेव ने इस कार्य के लिए गणपति व्यास नामक पुरोहित को नियुक्त किया। गणपति व्यास द्वारा १२७२ ई० में रचित नानाक नामक द्वितीय प्रशस्ति में उसने धाराध्वंश काव्य को स्वरचित बतलाया है और इस काव्य में वीसल देव की मालवा-विजय का वर्णन है[३३]। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि १२७८ ई० में सोमेश्वरदेव के स्थान पर गणपति व्यास वीसलदेव के राजकवि हो गये थे।

कवि सोमेश्वर देव ने अपने जीवन काल में साहित्य के विभिन्न अंगो पर कार्य किया है। वस्तुपाल की संरक्षता में उपस्थित कवि-मण्डल में सोमेश्वर देव ही अकेले कवि हैं, जिन्होंने साहित्य की विविध सरणियों में उत्कृष्ट कार्य किया है। कवि ने महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित, प्रशस्ति, तथा प्रकीर्ण श्लोकों की रचना की है, जिनका संक्षिप्त परिचय आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

कवि सोमेश्वर देव ने अपने मूलपूर्वज मूलराज से लेकर लगभग २५० वर्षों का महत्वपूर्ण संक्षिप्त वंश-परिचय प्रस्तुत किया है। इस वंश-परिचय से यह भी ज्ञात हुआ कि कवि के पूर्वजों में यागादि करने कराने की प्रवृत्ति थी और इसमें सदेह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं कि उनमें कुछ बड़े ही विद्वान् थे। सोमेश्वरदेव ने अपने पूर्वजों के सम्बन्ध में बड़ी ही आवश्यक सूचनाएँ दी हैं परन्तु उन पूर्वजों का साहित्यिक कार्य क्या है? इसके सम्बन्ध में वह बिल्कुल मौन हैं, सम्भव है कि कवि के विद्वान् पूर्वजों ने साहित्यिक कार्य भी किया हो। वंश-परिचय इस तथ्य का प्रमाण है कि कवि सोमेश्वरदेव का जन्म एक प्रतिष्ठित, विद्वान् तथा धनाढ्य परिवार में हुआ था। सोमेश्वरदेव के पूर्वज बडनगर से चालुक्य राजाओं के पुरोहित का कार्यभार सम्भालने आये थे। सोमेश्वरदेव के परिवार के कुछ सदस्य जैसे सोमेश्वर-देव के पिता कुमार, सैन्य संचालन में भी दक्ष थे। मुनिचन्द्र सूरि (११९२ई०) के अमम चरित के आधार पर ज्ञात होता है कि कुमार गुजरात के कतिपय समय तक नृपाक्षपटलाध्यक्ष (Chief Accountant) के पद पर नियुक्त किये गये थे। मुनि चन्द्रसूरि की प्रार्थना पर उपर्युक्त ग्रन्थ को कुमार ने शुद्ध तथा परिमार्जित भी किया था। इस प्रकार से राजपुरोहित के सम्बन्ध में अधोलिखित कथन सत्य प्रतीत होता है :-

This would not appear strange, when we look to the manifold duties of the Rajpurohit in ancient India, who was not only expert in the 'shastras' but also proficient in the Dandniti or politics, and sometimes had to look after the civil and military administration[34].

अभिप्राय यह है कि प्राचीन भारत में राजपुरोहित का महत्वपूर्ण स्थान था। पुरोहित कार्य के अतिरिक्त वे विभिन्न पदों को भी संभालते थे। शास्त्रों में निष्णात होते हुये भी पुरोहित शस्त्र, शासन प्रबन्ध एवं सैन्य-संचालन में भी दक्ष होते थे। इन्हीं गुणों से युक्त सोमेश्वरदेव न केवल राजपुरोहित तथा राजकवि ही थे, अपितु जीवन के विविध क्षेत्रों में उनकी अबाध गति थी।

काल-निर्णय :

महाकवि सोमेश्वरदेव के काव्य-ग्रन्थों के अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य को अपनी रचनाओं के द्वारा अमूल्य-निधि प्रदान की है, परन्तु उनके काव्य, कवि के सम्बन्ध में कोई ऐसी निश्चित सूचना नहीं देते हैं, जिससे यह ठीक ठीक सिद्ध हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि सोमेश्वरदेव की जन्म-तिथि क्या है तथा उनका देहावसान कब हुआ ? तथापि जो साक्ष्य प्राप्त हैं उनके आधार पर काल-निर्णय किया जाता है ।

१- आबू-पर्वत पर वस्तुपाल के भ्राता तेजपाल ने जैन मन्दिरों को निर्मित करवाया है, जिनमें दो मन्दिरों की दो प्रशस्तियों की रचना कवि के द्वारा की गई है, मन्दिर में नेमिनाथ की तिथि १२८७ वि० सं० (१२३१ ई०) अङ्कित है ।

२- वीसलदेव द्वारा निर्मित वैद्यनाथ मन्दिर में जो प्रशस्ति लिखी गई है, वह भी कवि की रचना ही है । यह मन्दिर दर्भावती में स्थित है । इस मन्दिर में स्थित प्रशस्ति प्रस्तर पर जो तिथि अङ्कित है, वह १३११ वि० सं० (१२५५ ई०) है । वस्तुपाल की मृत्यु १२३९ ई० में हुई थी अतएव यह सिद्ध होता है कि सोमेश्वरदेव वस्तुपाल की मृत्यु के अनन्तर १६ वर्ष तक अवश्य जीवित रहे । वैद्यनाथ-प्रशस्ति कवि की अन्तिम रचना प्रतीत होती है ।

३– सोमेश्वरदेव के काल-निर्णय के सम्बन्ध में डा० भोगीलाल जे० सांडेसर ने अधोलिखित मत व्यक्त किया है :—

We do not know the date oi Somesvara's death just as we do not get the date of his birth, He was living at least upto 1255 A, D., the date of the VaidyanathaPrasasti [35]

डा० जी० ब्यूहलर[36] (Dr.G. Buhler) ने गुजरात के चालुक्य तथा बघेल राजाओं का वंशवृक्ष तिथि सहित निर्धारित किया है, जिससे यह सिद्ध हुआ है कि भीमदेव द्वितीय ने ११७९ ई० से १२४२ ई० तक राज्य किया है । वीरधवल ने १२१९ई० से १२३९ ई० तक राज्य किया है और वीरधवल के पुत्र वीसलदेव[37] ने १२४३ई० से १२६२ ई० तक राज्य किया है ।

५–एम० कृष्णमाचारी[38] ने भी चालुक्य वंश का वंशवृक्ष तिथि सहित प्रस्तुत किया है । उनकी भी तिथियां लवण प्रसाद, वीरधवल, भीमदेव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा वीसलदेव के सम्बन्ध में इन्डियन एन्टीक्वयरी से मिलती जुलती हैं। इस आधार पर इन राजाओं का कार्यकाल निश्चित हो जाता है, जिनके समय में कवि सोमेश्वरदेव धवलक्क तथा अनहिलवाड के पवित्र स्थानों में अपनी काव्य-साधना कर रहे थे।

यह हम निश्चित रुप से जानते हैं कि सोमेश्वरदेव भीमदेव द्वितीय के राज्यकाल में प्रारम्भ से ही सम्मानित पुरोहित के पद पर रहे। भीमदेव द्वितीय का शासन काल ११७९ ई० से प्रारम्भ होता है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि कवि की अन्तिम रचना वैद्यनाथप्रशस्ति है, जिसकी तिथि १२५५ ई० है। साथ ही साथ वीरधवल के पुत्र वीसलदेव का राज्यकाल १२६२ ई० तक रहा, जिनके राज्यकाल में सोमेश्वरदेव अन्तिम समय तक रहे। इस प्रकार सिद्ध होता है कि कवि का समय ११७९ ई० से लेकर १२६२ ई० के मध्य रहा होगा। डा० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी[३९] तथा बलदेव उपाध्याय[४०] भी इसी काल के अनुरुप ही अपना मत व्यवत करते है।

सन्दर्भ-सूची

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1. चालुक्य वंशवृक्ष तथा कवि वंशवृक्ष परिशिष्ट में देखिये ।
2. इति श्रीगूर्जरेश्वरपुरोहितश्रीसोमेश्वरदेवविरचिते .... ।
   सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका का पूर्वांश ।
3. विलोक्य वस्तुपालस्य, भक्तिं चात्मनि निर्भराम् ।
   श्रीसोमेश्वरदेवेन, तत्स्वरुपं निरुप्यते ॥
   कीर्तिकौमुदी, १/४६ ।
   सम्पादक श्रीपुण्यविजयसूरि,कीर्तिकौमुदी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९६१ ई० ।
4. सोमेश्वरकृत काव्यादर्श टीका, जिसका दूसरा नाम सङ्केत भी है ।
5. Peterson, P., Report V, Bombay, 1896, p.48.
6. A Catalogus Catalogorum, Vol.I, Leipzig, 1891, pp. 102 and 737 also vide Surthotsava Introduction, p. 16. Edited by Pt. Shivdutt and k.P. parab, kavyamala series, 73, Bombay 1902.
7. Gandhi L B, A catalogue of Manuscripts in the Jain Bhandars at Jesalmere. Baroda, 1923, Intro. p. 62.
8. सुरथोत्सव, सम्पादक पं शिवदत्त तथा के० पो० परब, काव्यमाला सीरीज,७३, बम्बई, १९०२ ई० ।
9. सुरथोत्सव, सोमेश्वर, काव्यमाला सीरीज,७३, बम्बई, १९०२ ई० ।
10. उत्तरी गुजरात में स्थित वडनगर (प्राचीन आनन्दपुर) के रहने वाले वडनगरा ब्राह्मण कहे जाते हैं और आज भी वे नागर उपनाम के द्वारा पुकारे जाते हैं ।
11. आज भी गुजरात के नागर ब्राह्मणों में विवाहोपरान्त गोत्रोच्चारण के समय 'गुलेचागोत्र' का नाम लिया जाता है ।
    —ध्रुव दिग्दर्शन (गुजरात) पृष्ठ १८
12. पुरोहित सोल शर्मा राजा मूलराज के समसामयिक थे । मूलराज का शासनकाल ९३७ ई० से ९९७ ई० तक ।
    Burgess, Jas., Indian Antiquary, Vol. XI, Bombay, 1882., p. 217
13. "पुरः अग्रे हितः स्थापितः स पुरोहित इति कथ्यते ।" पुरोहित शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा में होता है:–

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातवम्।'

ऋग्वेद १/१/१।

पुरोहितम्-पुरोहितवदभीष्टसंपादकम्। यद्वा यज्ञस्य पूर्वभागे आह्वनीयरूपेण संस्थिम्। अग्निर्वै देवानां होता-इति श्रुतेः।

14. चामुण्डराज के सम्मानित पुरोहित लल्ल शर्मा अपने आश्रयदाता के समसामयिक ही थे।

चामुण्डराज का शासनकाल ९९७ ई० से १०१० ई० तक।

Burgess, Jas., Indian Antiquary Bombay, 1876 Vol.V, p. 219&1877, Vol VI, P. 197.

15. राजा दुर्लभराज का शासनकाल १०१० ई०से १०२२ ई० तक। पुरोहित मुञ्ज दुर्लभराज के समसामयिक थे।

16. भीम प्रथम का शासनकाल १०२२ ई० से १०६४ ई० तक। पुरोहित सोम राजा भीमदेव प्रथम के समसामयिक थे।

17. यह वही सोम या सोमेश्वर है जिनके द्वारा सुविहित जैन साधुओं का अनहिलवाड़ में प्रवेश हुआ था।

Sandesar, Bhogi Lal, J. Literary circle of Mahamatya vastupal and its contribution to Sanskrit literature, Bhartiya vidya Bhavan, Bombay, 1953, p-45.

18. श्रीकर्ण का शासनकाल १०६४ ई० से १०·४ ई० तक।

आमशर्मा श्रीकर्ण के समसामयिक थे।

19. It is noteworthy that in mediaeval Gujarat not only vedic sacrifices were performed, but they were Popular. The tradition continued, at least, upto the begining of the 14th century A. D., when the Muslims captured Anahilavad. Candu Pandita (1297 A. .D), the celebrated commentator of the Naisadhiyacarita and inhaibtant of Dhavalakka, had performed several vedic sacrifices like Dvadasaha and **Agnicayana**. By performing the Vājpeya and Brhaspatisava sacrifices he got the titles of Samrat and Sthapati, respectively:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यो वाजपेययजनेन बभूव सम्राड् कृत्वा बृहस्पतिसवं स्थपतित्वमाप ।
यो द्वादशाहय (ज) नेऽग्निचिदप्भूत् सः श्रीचण्डुपण्डित इमां विततान टीकाम् ॥

He also perfomed a number of Somasatras. Candu is the only commentator of Sanskrit poems, who often quotes the Srauta Sutras.

krishnakant Handiqni ,Naisadhiyacarita trans, Lahore,1934 Intro.,P.3.

This shows how vedic learning flourished in Gujarat especially among the Brahmins from vadnagr, Anhilavad and Dhavalakka. Dhavalakka, which was the Place of Vastupala's activity became the second capital of Gujarat not only from political but also from cultural point of view. It would be interesting to mention in this resp ct that the Tattvopaplavasimha of Jayarasi Bhatta (circa 7th-8th century), a unique work on the Lokayata philosophy, was copied down at Dhavalakka in the year 1293 A. D. This shows that dialectics was a highly prized subject in that city during reign of the vaghelas, and even study of the tenets of an almost forgotten school of philosophy like that of carvaka was not neglected.

Edited by pt. sukhalalji and prof.R. C. Parikh, Tattvopaplavasimha, Baroda, 1940, Intro pp. 1 f.

20. मालवाधीशयशोवर्मणः पुरोहितेन स्वदेशभूमिं गूर्जरराजश्रीसिद्धराजापरनामधयजयसिंहदेवेन व्याकुलीकृतां वीक्ष्य तद्वधार्थंव्यभिचारेण कृत्योत्पादिता, सा च आमशर्मणः पुरोधसः शान्तिमन्त्रैः प्रतिषिद्धा सती तमेव मालवाधीशपुरोहितं संहृत्य तिरोहितेति श्रूयते ।
—सुरथोत्सव महाकाव्य की भूमिका, पृ० ३
सिद्धराज का शासनकाल १०९४ ई० से ११४३ ई० तक

21. सिद्धराज का अपर नाम जयसिंह भी था । पुरोहित कुमार सिद्धराज के समकालीन थे ।

Burgess Jas., Indian Antiquary, Vol. X p. 158 & Vol. XI p. 253, Bombay, 1881&1880.

22. कुमारपाल का राज्य ११४३ ई० से ११७४ ई० तक —सुरथोत्सव, पृ० ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Burgess, Jas. Epigraphia Indica VOl., VIII, calcutta 1905-6 में कुमार पाल के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है ।

23. राहौगृहीतोष्णकरे कुमारः कुमारपालस्यसुतेन राज्ञः ।
क्रतोपराधोऽपि परं पुरोधाः प्रत्यगृहीत्तस्य न रत्नराशिम् ॥
सुरथोत्सव १५/३१

कुमारपालके कोई पुत्र नहीं था अतएव उपर्युक्त श्लोक में कुमारपालस्य-सुतेन राज्ञः, में सुतेन का अर्थ उत्तराधिकारी के रुप में लिया जायेगा । अगले श्लोक में स्पष्ट रुप से अजयपाल का नामोल्लेख है, जो कि कुमारपाल के उत्तराधिकारी थे ।

यः शौचसंयमपटुः कटुकेश्वराख्य-
माराध्य भूधरसुताघटितार्थदेहम् ।
तां दारुणामपि रणाङ्गणजातघात-
व्रातव्यथामजयपालनृपादपास्थत् ॥
सुरथोत्सव, १५/३२

24. अजयपाल का शासनकाल ११७४ ई० से ११७७ ई० तक ।
Temple, R. C., Indian Antiquary, Vol. XVIII, Bombay 1889, Page 80.

25. मूलराज द्वितीय का शासनकाल ११७७ से ११७९ ई० तक ।
Burgess, Jas., Indian Antiquary Vol. XI, p. 77 & Vol, VI, p. 250, Bombay, 1882&1877

26. सोलंकी युगनी श्री अने संस्कृति नर्मदास्वर्ण चन्द्रकना स्वीकार प्रसंगे डा० भोगीलाल जयचन्द भाई सांडेसरा नु वक्तव्य, पृ०, १०, नर्मद साहित्य सभा, बड़ौदा, १९६४ई० ।

27- भीमदेव का शासनकाल ११७९ ई० से १२४० ई० तक
Majumdar, R. C., History and culture of the Indian people, Vol V, Bombay, Page 300.

28. उल्लाघराघव में उद्धृत १/८, सम्पादक आगमप्रभाकर मुनिपुण्यविजय तथा डा० भोगीलाल जे० साडेसर, ओरियन्टल इनस्टीट्यूट बड़ौदा, १९६५ ई० ।

29. Sandesar Bhogi Lal J., Literary circle of Mahamatya vastupal and its contribution to Sanskrit Literature; Bhartiya vidya Bhavan, Bombay, 1953, p.44.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

30- प्रबन्धकोश, पृष्ठ १२६, सम्पादक जिन विजय मुनि, अहमदाबाद, १९३५ ई० ।

31- राजशेखर सूरि रचित प्रबन्धकोश, सम्पादक जिनविजयमुनि, अहमदाबाद, १९३५ई०, पृष्ठ १२५ ।
वस्तुपालचरित, सर्ग ३/ पृष्ठ ३३२, सम्पादक मुनिकीर्तिविजय, अहमदाबाद, १९४१ ई० ।
तथा जिनप्रभसूरि रचित विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ ८०, सम्पादक जिनविजय मुनि, अहमदाबाद, १९३४ ई० ।

32- पुरातनप्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ ८०, सम्पादक जिनविजयमुनि, अहमदाबाद तथा कलकत्ता, १९३४ ई० ।

33- Acharya, G.V., Historical Inscripions of Gujarat, Vol, I Bombay, 1934, No 19. V.18.

34- Sandesar, B. J., Literary circle of Mahamatya Vastupal and its contribution to sanskrit Literature, Bhartiya vidya Bhavan, Bombay, 1953, page 47.

35- उल्लाघराघव नाटक, भूमिका पृष्ठ ११ ।

36- Buhler, G., Indian Antiquary, Vol. VI, Bombay, 1877, page 210-12.

37- डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर की १८८३-८४ वर्षीय रिपोर्ट, पृष्ठ ३०८ ४५७, बम्बई, १८८७ ई० ।

38- Krishnamachariar, M., History of classical Sanskrit Literature, Madras, 1937, Page 204.

39- Munshi, k. M., Gujarat and its Literature, Bombay. 1935, Page II2.

40- आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, १९५३ ई०, पृष्ठ २७८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय अध्याय

महाकवि सोमेश्वर की काव्यकृतियाँ

महाकवि सोमेश्वर ने सरस एवं उत्कृष्ट काव्य की रचना की है जिसकी प्रशंसा तत्कालीन हरिहर तथा सुभट प्रभृति कवियों ने की है। कवि की काव्य-माधुरी ने ही हठात् इन कवियों को कुछ कहने के लिये बाध्य किया है। इन कवियों[1] द्वारा की गयी प्रशंसा का उल्लेख कवि ने स्वतः किया है :—

श्री सोमेश्वरदेवकवेरवेत्य लोकंपृणं गुणग्रामम् ।
हरिहरसुभटप्रभृतिभिरभिहितमेवं कविप्रवरैः ॥
वाग्देवतावसन्तस्य कवेः श्रीसोमशर्मणः ।
धुनोति विबुधान्सूक्तिः साहित्याम्भोनिधेः सुधा ॥
तव वक्त्रं शतपत्रं सद्वर्णं सर्वशास्त्रसम्पूर्णम् ।
भवतु निजं पुस्तकमिव सोमेश्वरदेववाग्देवी ॥

(सुरथोत्सव, १५/४४, ४६ तथा ४७).

अपने काव्य तथा अपने आश्रयदाता मित्र वस्तुपाल के काव्य की प्रशंसा[2] कर कवि सुरथोत्सव महाकाव्य का अन्तिम सर्ग समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता है । इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुरथोत्सव की रचना के पूर्व कवि तथा आश्रयदाता दोनों ही परममित्र हो गये थे । सुरथोत्सव[३] महाकाव्य में पौराणिक राजा सुरथ का वर्णन प्राप्त होता है । इस वर्णन का आधार मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत देवी माहात्म्य है ।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य[४] में वस्तुपाल का काव्यात्मक वर्णन प्राप्त होता है । यह काव्य तत्कालीन समाज तथा इतिहास के अध्ययन के लिये उपादेय है । कवि के उल्लाघराघव[५] नाटक के कथानक का आधार रामायण की कथा है । इस नाटक का अभिनय द्वारका के प्रसिद्ध मन्दिर में प्रबोधनी एकादशी के दिन किया गया था, जिसका उल्लेख प्रस्तावना में है[६] । कवि के पुत्र लल्लशर्मा की प्रार्थना पर इस नाटक की रचना की गई थी । इस तथ्य का उल्लेख नाटक के अन्त में है :—

तदङ्गजः स्वाङ्गजलल्लशर्मप्रयुक्तया प्रार्थनया प्रणुन्नः ।
चकार सोमेश्वरदेवनामा, रामायणं नाटकरूपमेतत ॥

सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग से ज्ञात होता है कि यामार्ध (१ घन्टा ३०-मिनट) में ही प्रकृष्ट गुणों से युक्त एक काव्य की रचना कर और एक नाटक के द्वारा अनहिलवाड़ के नृपति भीमदेव द्वितीय के सभासदों को कवि सोमेश्वरदेव ने आह्लादित कर दिया । सुरथोत्सव में वर्णित यह नाटक उल्लाघराघव ही है, जिसके द्वारा कवि ने भीमदेव द्वितीय की सभा को अनुरञ्जित किया :—

काव्येन नव्यपदपाकरसास्पदेन
यामार्धमात्रघटितेन च नाटकेन ।
श्रीसोमभूमिपतिसंसदि सभ्यलोक-
मत्तीवसंमदवशंवदमादधे यः[७] ॥

सुरथोत्सव का उपर्युक्त श्लोक ही सूचित करता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि ने यामार्ध (१घन्टा ३०मिनट) में एक अन्य काव्य की भी रचना की। वह काव्य रामशतक ही हो सकता है क्योंकि रामशतक के अन्तिम श्लोक में कवि सोमेश्वरदेव द्वारा यामार्ध में ही रामशतक को रचने की बात कही गई है :—

विश्वम्भरामण्डलमण्डनस्य, श्रीरामभद्रस्य यशःप्रशस्तिम्।
चकार सोमेश्वरदेवनामा, यामार्द्धनिष्पन्नमहाप्रबन्धः[९] ॥

रामशतक स्तोत्र शतक परम्परा में रचा गया है। इस स्तोत्र की कई हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं, जिनके साथ ही शतक पर दो टीकायें भी उपलब्ध हुई हैं। प्रथम टीकाकार का नाम एकनाथभट्ट तथा दूसरे का नाम अज्ञात ही है। टीकाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रामशतक का गुर्जरप्रदेश में व्यापक प्रचार था। उल्लेखनीय है कि रामशतक ही कवि की अकेली रचना है, जिस पर टीका उपलब्ध है। इन काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि ने एक सुभाषित संग्रह की भी रचना की है, जिसमें २१७ श्लोक हैं। यह सुभाषित संग्रह कर्णामृतप्रपा[१०] के नाम से जाना जाता है।

कष्टानष्टापि निर्विश्य रसांस्तेष्वद्य नीरसः।
श्रीकुमारसुतो ब्रूते पिपासुर्नवमं रसम् ॥
कर्णामृतप्रपा/४

वस्तुपाल तथा तेजपाल द्वारा निर्मित आबू मन्दिर की प्रशस्ति की रचना सोमेश्वरदेव द्वारा की गई है और आज भी शिलालेख के रूप में देखी जा सकती है। विभिन्न छन्दों में लिखी गई इस सुन्दर रचना में ७४ श्लोक हैं। साथ ही साथ प्रशस्ति[११] में विक्रम संवत् १२८७ (१२३१ ई०) की तिथि अङ्कित है। इसी वर्ष मन्दिर में नेमिनाथ की स्थापना की गई थी। इसके अतिरिक्त वस्तुपाल की प्रशंसा में लिखे गये गिरनार के शिला लेखों में दो पद्यमय शिलालेख[१२] सोमेश्वरदेव की रचनाये हैं। इन शिला-लेखों में विक्रम संवत् १२८८, (१२३२ई०) की तिथि अङ्कित है। वैद्यनाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिर के जीर्णोद्धार की स्मृति में वैद्यनाथप्रशस्ति[13] की रचना भी कवि द्वारा की गई है, जिसमें विक्रम संवत् १३११ (१२५५ ई०) की तिथि अङ्कित हैं। यह मन्दिर बड़ौदा के पास दर्भावती अथवा आधुनिक दभोई में स्थित हैं। इस प्रशस्ति से यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि सोमेश्वरदेव वस्तुपाल की मृत्यु के उपरान्त १६ वर्ष तक अवश्य जीवित रहे, क्योंकि वस्तुपाल की मृत्यु विक्रम संवत् १२९६ (१२४० ई०) में हुई थी। वैद्यनाथ प्रशस्ति कवि की अन्तिम रचना प्रतीत होती है। इन प्रशस्तियों के अतिरिक्त कवि ने एक अन्य प्रशस्ति की भी रचना की थी, परन्तु उसके अवशेष अब उपलब्ध नहीं होते है। वह प्रशस्ति वीरनारायणप्रासाद की थी, जिसे वीरधवल ने धवलक्क में निर्मित कराया था। इस प्रशस्ति में १०८ श्लोक[14] थे। नाम से यह अनुमान लगाया जा सकता हैं कि मन्दिर नारायण अथवा विष्णु का था। धोलका में सम्प्रति इस मन्दिर के भग्नावशेष उपलब्ध नहीं होते है और न वीरधवल अथवा वस्तुपाल द्वारा निर्मित कराये गये किसी मन्दिर के अवशेष ही प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त कवि रचित कतिपय प्रकीर्ण श्लोक[15] भी प्राप्त हुये हैं।

इस प्रकार सोमेश्वरदेव ने संस्कृत-साहित्य की विविध सरणियों में उत्कृष्ट काव्य की रचना की है। कवि की रचनाओं के अन्तर्गत महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित, प्रशस्ति तथा प्रकीर्ण श्लोक आते हैं। अनेक विषयों पर की गई रचनाओं के द्वारा यह प्रतीत होता है कि सोमेश्वरदेव एक उदार प्रकृति के कवि थे। यद्यपि वह वेदों के पारंगत होने के साथ साथ शैव थे तथापि राम से सम्बन्धित नाटक तथा स्तोत्र की भी रचना की है। यही नहीं वह जैन मन्दिरों की प्रशस्तियों के प्रणेता के रूप में भी जाने जाते हैं।

संस्कृत-साहित्य में महाकाव्य

महाकाव्यों का संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इन महाकाव्यों की रचना अश्वघोष से पूर्व ही होने लगी थी। अद्यावधि अनेक कवियों ने सैकड़ो महाकाव्यों की रचना की है। यह निश्चित है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाकाव्य का सर्वाधिक प्राचीन लक्षण काव्यादर्श में प्राप्त होता है। तदनन्तर रुद्रट ने काव्यालङ्कार में महाकाव्य के लक्षण को अधिक विस्तार के साथ प्रतिपादित किया है। दण्डी (छठी शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श[१८] में महाकाव्य का लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है :—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्त नायकम् ॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति ॥

(काव्यादर्श, १/१४ से १९ तक)

दण्डी के अनुसार महाकाव्य[१९] की रचना सर्गों में की जाती है। महाकाव्य का नायक धीर, एवम् उदात्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है। वीर, शृङ्गार अथवा शान्त में से एक रस अङ्गी होता है तथा अन्य रस गौण माने जाते हैं। कथानक इतिहास प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन का चरित-वर्णन किया जाता है। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के वृत्त में रचना की जाती है परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया जाता है। सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए और न बहुत छोटे। सर्ग आठ से अधिक होने चाहिए और प्रतिसर्ग के अन्त में आगामी कथानक की सूचना होनी चाहिए। वृत्त को अलङ्कृत करने के लिए संध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, वन, ऋतु, समुद्र, पर्वत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य किया जाता है । बीच में शृङ्गार रस का भी परिपोष किया जाता है। वीर रस के प्रसंग में युद्ध, मन्त्रणा, शत्रु पर चढ़ाई आदि विषयों का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन रहता है। नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष काव्य की मुख्य वस्तु होती है। महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य धर्म तथा न्याय की विजय एवं अधर्म और अन्याय का विनाश होना चाहिए। महाकाव्य में सुन्दर अलङ्कारों का समावेश होना आवश्यक है। इस प्रकार का काव्य श्रोतृ-वर्ग के लिए मनोरञ्जक होता है और कल्पान्तर पर्यन्त स्थायी कीर्ति प्रदान करने वाला हुआ करता है।

उपर्युक्त लक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य इतिहास-कथा पर आधारित होता है। यह इतिहास-कथा परम्परया पुराण इत्यादि के माध्यम से प्राप्त होती है अथवा किसी वास्तविक घटना को लेकर महाकाव्य की रचना की जाती है, जिसे आधुनिक युग में ऐतिहासिक घटना की संज्ञा दी जा सकती है। इस घटना विशेष को दण्डी के द्वारा सदाश्रय की संज्ञा दी गई है। संस्कृत के अधिकांश महाकाव्यों का कथानक पौराणिक ही है। महाकाव्यों में पौराणिक कथानक की अपेक्षा ऐतिहासिक कथानक की परम्परा कालान्तर में प्राप्त होती है। भारतीय-साहित्य में पौराणिक नायकों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जिनका जीवन-चरित सम्पूर्ण भारत में श्रद्धा और विश्वास के साथ सम्मानित किया जाता है। इन पौराणिक महाकाव्यों के नायकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नायकों की प्रसिद्धि का क्षेत्र सीमित रहा है। इस सामान्य प्रवृत्ति के विद्यमान होने पर भी भारत के गुजरात सदृश कतिपय प्रान्तों में महाकाव्यों की रचना की गयी, जिनके आधार ऐतिहासिक व्यक्ति अथवा ऐतिहासिक कथानक ही थे। ये ऐतिहासिक महाकाव्य पौराणिक महाकाव्यों के समान ही प्रसिद्धि को भी प्राप्त कर चुके थे। हेमचन्द्र रचित द्वाश्रय महाकाव्य प्रथमतः ऐतिहासिक महाकाव्यों में अवलोकनीय है। इसी परम्परा में गणपति व्यास द्वारा लिखित धाराध्वन्स महाकाव्य भी आता है, जिसका उल्लेख नानाक प्रशस्ति में आता है परन्तु अभी तक यह महाकाव्य उपलब्ध नहीं हो सका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुजरात के ऐतिहासिक महाकाव्यों में जयसिंह सूरि रचित **कुमारपाल चरित** महाकाव्य (१३६७ ई०) का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठासोम का **सोमसौभाग्य** महाकाव्य (१४६८ ई०), देव विमल (१७ शताब्दी) का **हरिसौभाग्य** महाकाव्य, अन्य काव्य तथा इसी परम्परा में अनेक चरित भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हम इस इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ऐतिहासिक तथा पौराणिक महाकाव्यों के द्विविध रूप संस्कृत-साहित्य को परिवर्धित कर रहे थे। इन्हीं परम्पराओं से प्रेरित होकर महाकवि सोमेश्वरदेव ने महामात्य वस्तुपाल के जीवन-चरित का काव्यात्मक वर्णन **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य में किया है, जो कि एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। कवि की एक अन्य कृति जिसे सुरथोत्सव नाम से अभिहित किया जाता है, पौराणिक महाकाव्य है। कवि की कीर्ति-पताका को अमर रखने के लिये ये काव्य पर्याप्त है।

सुरथोत्सव महाकाव्य

सुरथोत्सव एक पौराणिक महाकाव्य है। गुर्जर प्रदेश में जो भी उस समय महाकाव्य लिखे गये, उनमें सुरथोत्सव का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि सुरथोत्सव का विषय-वर्णन पौराणिक है तथापि उसका राजनैतिक एवम् ऐतिहासिक महत्त्व भी है। सुरथोत्सव में राजा सुरथ का वर्णन मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत[17] देवीमाहात्म्य अथवा सप्त-शती के वर्णन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यह काव्य तत्कालीन भीमदेव द्वितीय के राजनैतिक पराभव तथा राज्यलक्ष्मी को पुनः प्राप्त करने की घटना को भी इङ्गित करता है।

सुरथोत्सव महाकाव्य में १५ सर्ग तथा ११८२ श्लोक है, जिनमे एक पौराणिक आख्यान उपनिबद्ध किया गया है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि प्रथमतः विभिन्न देवताओं की स्तुति करता है। सर्व प्रथम ५ श्लोक दुर्गा की स्तुति में रचे गये हैं। दुर्गा के प्रति ये श्लोक मंगलाचरण की परम्परा में लिखे गये हैं प्राचीनकाल से ही संस्कृत कवियों ने ग्रन्थ के निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण की परम्परा को अपनाया है। सुरथोत्सव में कवि ने नमस्कारात्मक मंगलचरण[18] के द्वारा ग्रन्थ-रचना प्रारम्भ की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदनन्तर कवि सोमेश्वरदेव उस आदि कवि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिसके काव्य-मन्दिर में राम की कीर्ति रुपी मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस प्रकार वाल्मीकि रचित रामायण के प्रति उनकी अगाध-निष्ठा व्यक्त होती है । इसके अतिरिक्त सत्यवती के पुत्र व्यास के प्रति भी वह श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं, जिन्होंने महाभारत जैसा अद्वितीय महाकाव्य लिखा । प्रसंगत: वह अन्य कवियों की भी प्रशंसा करते हैं, जिनमें बृहत्कथा के रचयिता गुणाढ्य, इसके अतिरिक्त सुबन्धु, कालिदास, माघ तथा मुरारि आदि प्रमुख हैं। तदनन्तर कवि ने कतिपय श्लोक काव्य के सम्बन्ध में लिखे हैं। कवि ने सज्जन की प्रशंसा तथा दुर्जन की निन्दा भी मार्मिक शब्दों में की है। सर्ग के अन्त में महाकाव्य के पौराणिक नायक नृपति सुरथ के विश्वविजय का भी उल्लेख होता है :—

बद्धाः केचन केचन प्रणमिता दासीकृताः केचन,
क्षिप्ताः केचन केचन प्रशमिताश्चारोपिताः केचन ।
भूपाला करवाललालनकलासोत्साहबाहुद्वयी-
दुःशीला अपि येन विश्वविजयव्यापारपारस्पृशा ।।

(सुरथोत्सव, १/९६)

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में यह देखा जाता है कि राजा सुरथ के साथ कतिपय मंत्रियों ने विश्वासघात किया है। राजा के साथ समुचित मंत्रणा के कार्य को छोड़कर वे शत्रुओं से मिल गये । फलतः राजा को राज्यलक्ष्मी से हाथ धोना पड़ा । निराश होकर राजा को बन की शरण लेनी पड़ी । सौभाग्यवश जगल में एक तपस्वी के दर्शन हुये जिनसे उन्होंने अपने दुर्भाग्य की गाथा दुःखी होकर कह सुनायी :—

इत्थं मुनीन्द्रेण मनोज्ञवाचा कृतानुयोगो युगदीर्घबाहुः ।
नृपस्त्रपाकुण्ठितकण्ठपीठः पूर्वानुभूतं निजगाद खेदम् ।।

(सुरथोत्सव, २/३७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दया से द्रवित होकर मुनि ने दुःख-निवारण का उपाय बतलाया कि आप भवानी को तप के द्वारा प्रसन्न कीजिये, जिनमें इस प्रकार के कष्ट-निवारण की क्षमता है। मुनि ने सुरथ से भवानी के साहसिक कार्यों का वर्णन भी किया।

मुनि ने सुरथ को बतलाया कि शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्यों ने ब्रह्मा से यह वरदान मांगा था कि उन्हें स्त्री जाति को छोड़कर कोई भी मार न सके। इस प्रकार के वरदान को पाकर दोनों दैत्य सभी प्राणियों को अतिशय क्लेश देते थे। इन दैत्यों से अत्यधिक दुःखी होकर देवगण ब्रह्मदेव के पास गये तथा इन दैत्यों द्वारा दिये जाने वाले कष्ट के सम्बन्ध में विनत होकर उलाहना सहित निवेदन किया। ब्रम्ह्मदेव ने दैत्यों को दिये गये वरदान के सम्बन्ध में देवगणों से बतलाया कि उन्हें किस प्रकार का वरदान मिला है। ब्रह्मा ने यह भी बतलाया कि आप लोग भवानी के पास जाकर, जो कि दैवी स्त्री जाति की हैं, अपने कष्ट को कह सुनायें। निश्चय ही वह शुम्भ को मारने में समर्थ है :—

तदितः सत्वरं गत्वा गुहमातामहं गिरिम्।
स्तुतप्रस्तुतकार्याय शम्भोरम्भोजलोचनम् ॥
पूरयिष्यति योऽस्माकान्कामान्कामारिकामिनी।
नैसर्गिकं हि वात्सल्यमपत्ये मातुरातुरे ॥

(सुरथोत्सव, ३/६८ तथा ६९)

ब्रह्मदेव के निर्देशानुसार देवगण हिमालय पर्वत पर गये। चतुर्थ सर्ग में कवि हिमालय का मनोरम वर्णन प्रस्तुत करता है। पञ्चम सर्ग में षड्-ऋतुओं का सामयिक वर्णन उपस्थित किया जाता है। इस सर्ग के द्वारा कवि का ऋतु-सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान परिलक्षित होता है[20]। चन्द्रोदय का आह्लादकारी वर्णन षष्ठ सर्ग में प्राप्त होता है[21]। सप्तम सर्ग का प्रारम्भ सूर्योदय से होता है। कथानक की घटनायें सूर्य के समान प्रखर होती हैं। यहाँ पर भवानी पुष्प-चयन के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाहर जाती हुई चित्रित की गई हैं । तदनन्तर वह गङ्गा में स्नान के लिए जाती हैं, वहाँ से वापस आती हुई भवानी के दर्शन देवगण करते हैं । देवगण दूर से ही भवानी की स्तुति करते हैं । तदनन्तर वे अपने कष्ट को बतलाते हैं तथा देवी से शुम्भ को मारने के लिए निवेदन करते हैं । देवी ने दैत्य के अन्याय को सुनकर उसे मारने का वचन दिया :—

दैत्यं दावमिव प्रतापिनमपह्नोतुं कृताङ्गीकृतेः
श्रुत्वा शाब्दितमेवमद्रिदुहितुः पायोदपङ्क्तेरिव ।
देवैः संमदमुक्तलोचनपयःपूरैर्मयूरैरिव
श्रोत्रप्रीतिकिरः परं जयगिरःकेका इव व्याकृताः ।।

(सुरथोत्सव ७/७५)

अष्टम सर्ग में देवी अपने को उस नवयुवती के रूप में परिवर्तित कर देती है जो कि अभी कुमारी है । उस कुमारी का वास-स्थान हिमालय के शिखर पर है । सम्प्रति हिमालय पर एक सुन्दरी निवास कर रही है, इस प्रकार की चर्चा चारों ओर होने लगी । इस कुमारी का वृत्तान्त शुम्भ के कर्ण-कुहरों तक पहुँचा । शुम्भ ने तुरन्त ही एक अनुचर कुमारी के पास भेजा, जिसका सदेश था कि शुम्भ के साथ भवानी को पाणिग्रहण करना है । प्रत्युत्तर में भवानी ने उस अनुचर से कहा कि मैं उस वीर पुरुष के साथ पाणिग्रहण करूंगी, जो कि युद्ध में मुझे परास्त कर दे । उस कुमारी ने स्पष्टतः कह दिया कि यही मेरी प्रतिज्ञा है । अनुचर पुनः शुम्भ के पास जाकर भवानी की प्रतिज्ञा के बारे में उसे सूचित करता है । शुम्भ कुमारी की इस प्रतिज्ञा को सुन कर आश्चर्ययुक्त हो गया । पुनः शुम्भ ने धूम्रलोचन नामक एव दैत्य को भेजकर यह कहा कि वह इस प्रकार की कठोर तपस्या को त्याग दे । उस कुमारी के पास पहुँचकर धूम्रलोचन शुम्भ के निर्देशानुसार अनुचित वैवाहिक सम्बन्ध की भी बातचीत करने लगा । देवी की क्रोधाग्नि से वह दैत्य-अनुचर भस्म हो गया :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ मोधवचाः कचावकृष्टि-

कुपितः कर्तुमियेष यावदेषः ।

कृत हुंकृतया तयात्मकर्मा —

जितमृत्युः क्रियते स्म भस्म तावत् ।।

(सुरथोत्सव, ८/८०)

अनुचर के भस्म होने के समाचार को पाकर एक विशाल सेना के साथ शुम्भ उमा पर आक्रमण करने के लिए अग्रसर होता है। नवम सर्ग का यही मुख्य विषय है। देवी तथा शुम्भ के युद्ध का का वर्णन दशम सर्ग[२२] तथा शुम्भ के मृत्यु का वर्णन ११ वें सर्ग में होता है :—

निर्दयं हृदिहतो भुवि पश्चान्निर्गतासुरसुरः पतितोऽसौ ।

पुष्पवृष्टिरमरैस्तु विसृष्टा पार्वती शिरसि पूर्वमपप्तत्[२३] ।।

नृपति सुरथ ने जंगल में मुनि के मुख से शुम्भ के संहार की घटना सुनी। सुरथ को प्रेरणा मिली। उसने भवानी को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप करने का निश्चय किया। द्वादश सर्ग का यही वर्ण्य-विषय है :—

श्रुत्वैवं श्रवणसुखं मखारिपत्नी-

माहात्म्यं मुनिमुखतः क्षितीन्दुरेषः ।

तत्पादौ परिचरितुं चकारचित्तं

चिन्तापि स्फुरति शुभागमे शुभैव[२४] ।।

त्रयोदश सर्ग में पार्वती सुरथ की परीक्षा लेती है, अतएव वह एक सुन्दर स्त्री को राजा के पास भेजती है जिससे उनकी तपस्या भंग हो जाय। राजा अपनी तपस्या में रत रहे, उन पर उस युवती का कोई भी असर न हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्दश सर्ग में भवानी प्रसन्न होकर राजा सुरथ को दर्शन देती है । भवानी ने आशीर्वाद दिया कि आगामी जीवन में वर्तमान सप्तम मनु की सत्ता समाप्त होने के अनन्तर अष्टम मनु के रूप में राजा सम्मान को प्राप्त करे । भवानी ने एक हजार वर्ष तक की राजसत्ता का भी आशीर्वाद दिया :—

भज वत्स वत्सरसहस्रवर्तिनीं
निजराज्यसंपदमदभ्रविक्रमः ।
भवतश्चिराय विरहार्तिमङ्कुरै-
नुपस्कृतानुपचितैर्व्यनक्ति या ॥
(सुरथोत्सव, १४/२७)

इसी बीच राजा के विश्वास-पात्र मंत्रियों ने शत्रुओं तथा विश्वासघात करने वाले मंत्रियों को समूल नष्ट कर दिया । तदनन्तर विभिन्न दिशाओं में राजा का पता लगाने के लिए अनुचर भेजे गये । एक अनुचर अन्वेषण करता हुआ जंगल में राजा के पास पहुँचा । उसने राजा से बतलाया कि उसके विश्वासपात्र मंत्रियों ने किस बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है । वह अनुचर जंगल से वापस आकर मंत्रियों से राजा के सम्बन्ध में सूचना देता है । राजधानी से असंख्य राजपुरुष तथा मंत्रिगण उस अनुचर के साथ जंगल को जाते हैं, वहाँ से राजा को राजधानी लाया जाता है । उमा के बचनानुसार एक दीर्घ अवधि तक राजा सुरथ राजसत्ता का उपभोग करते हैं । पन्द्रहवें सर्ग में सोमेश्वरदेव अपना तथा अपने पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं । अन्त में वह अपने परम मित्र वस्तुपाल के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देते हैं । सुरथोत्सव महाकाव्य का यही संक्षिप्त-परिचय है ।

सुरथोत्सव में कवि परिष्कृत पदविन्यास के आचार्य के रूप में हमारे सामने आते हैं । कवि के लिए इस महाकाव्य में सीधे-सादे शब्दों में पदार्थ-निरूपण ऊँचे काव्य की कसौटी नहीं है, प्रत्युत् वक्रोक्ति से मण्डित शाब्दिक और आर्थिक चमत्कार के उत्पादक अलङ्कारों से सुसज्जित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदविन्यास ही सोमेश्वरदेव की दृष्टि में सच्चे काव्य का निदर्शन है। फलत: इस काव्य में समास बहुलता, विकट वर्णों की उदारता, गाढबन्धों की मनोंहरता पाठक के हृदयावर्जन में सर्वथा समर्थ होती है। सोमेश्वरदेव के द्वारा प्रणीत पद्य उस गुलदस्ते के समान है जिसे माली ने अनेक रंगीन फूलों के मिश्रण से तैयार किया है और जो खूब कटे-छटे नपे-तुले, विदग्ध-जनों के मनोविनोद के लिए सुन्दर रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। १०वें सर्ग में देवी तथा दैत्य के युद्ध-वर्णन के प्रसंग में चित्रालङ्कारों का सुन्दर विनिवेश है। इसी प्रकार माघ का १९ वां सर्ग, **किरातार्जुनीय** का १५ वां सर्ग तथा **नरनारायणानन्द** का चतुर्दश सर्ग भी विविध प्रकार के चित्रालङ्कारों के माध्यम से लिखे गये हैं। निष्कर्ष यह है कि अलंकृत शैली में लिखे गये पौराणिक महाकाव्यों में **सुरथोत्सव** का महत्वपूर्ण स्थान है।

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाव्य रचयिताओं में यह परम्परा थी, कि वे युद्ध-वर्णन विविध प्रकार के चित्रकाव्य के माध्यम से करते थे। यद्यपि यह चित्रकाव्य युद्ध की भीषणता तथा शीघ्रता को प्रस्तुत करने में असमर्थ होता था। **नैषध** तथा **कीर्तिकौमुदी** के समान **सुरथोत्सव** में कतिपय वर्णन मनोरम हैं। ब्रह्मा के समक्ष देवताओं द्वारा अपनी दुर्दशा का मार्मिक वर्णन तृतीय सर्ग में किया गया है। चतुर्थ सर्ग का वर्णन देखने योग्य है। छठे सर्ग में षड्ऋतु का मनोमोहक वर्णन प्राप्त होता है। दशम सर्ग भी ध्यान देने योग्य है क्योंकि उसमें युद्ध- वणन के विविध दृश्यों की झांकी है। **सुरथोत्सव** के कतिपय श्लोक यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं जिससे अन्य महाकाव्यों को देखते हुये कवि की काव्यकला पर प्रकाश पड़ता है। राजा सुरथ मंत्रियों से त्रस्त होकर वन में प्रवेश करते हैं। कवि ने इस प्रसंग में एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

> विशन्वनादेष वनान्तराणि, सान्द्रद्रुमश्रेणिनिन्तराणि ।
> भाति स्म भिन्नाञ्जनसंनिभानि, घनादिवेन्दुर्घनमण्डलानि ॥
>
> (सुरथोत्सव; २/१८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौड़ी रीति में लिखे गये सुरथोत्सव महाकाव्य में क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग किया गया है और इस प्रकार **किरातार्जुनीय** तथा **शिशुपालवध** की परम्परा को निभाया गया है, तथापि षड्ऋतु वर्णन में ऋतुराज का कैसा ही सरल एवं सरस वर्णन किया गया है :—

कटाक्षिता कैरपि चुम्बिता परैः कृतोपभोगा मधुपैश्च कैश्चन ।
मधु क्षरन्ती विरराजमाधवी नवीनरूपा गणिकेव कामिभिः ॥
(सुरथोत्सव, ५/१०)

शरद्-वर्णन की मार्मिकता किस पाठक को प्रसन्न नहीं करेगी :—

जलं प्रसन्नं जलदा निर्वतिताः प्रवर्तिताश्चाध्वनिसाधुसिन्धव ।
गदाधरः स्वापपरः प्रबोधितः शरद्दिनैर्निर्मलोचितं कृतम् ॥
(सुरथोत्सव, ५/३९)

वसन्त की रमणीयता भी दर्शनीय है : -

लभन्ते सौभाग्यं किमपिहरिणाङ्कस्य किरणा,
पिकाः शब्दायन्ते, स्वगतममृतस्यन्दि च तदा ।
चलत्यद्य श्वो वा पवनपृतना चन्दनगिरे—
रवामं कामस्य स्फुरति च शुभाशंसि नयनम् ॥
(सुरथोत्सव ५/५६ तथा उल्लाघराघव, २/३२)

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से ज्ञात होता है कि **अलंकृत** होते हुये भी **सुरथोत्सव** एक सरस महाकाव्य है । तत्कालीन रचित महाकाव्य **नरनरायणानन्द, पद्मानन्द, शान्तिनाथ चरित, पार्श्वनाथ चरित** तथा **चतुर्विशति-जिनेन्द्र संक्षिप्त-चरितानि** में सुरथोत्सव का प्रथम स्थान है । इसके अतिरिक्त द्व्यर्थक महाकाव्य **द्विसन्धान, पार्वतीरुक्मणीय**, **राघवनैषधीय**, तथा **राघवपाण्डवीय** एवं त्र्यर्थी महाकाव्य **राघवयादवपाण्डवीय** तथा **राघवपाण्डवयादवीय** की अपेक्षा भाषा तथा भाव की दृष्टि से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरथोत्सव उत्कृष्ट है। यही नहीं, यद्यपि **सुरथोत्सव** का हिमालय-वर्णन **कुमारसंभव** से प्रभावित है, तथापि वर्ण्य विषय मौलिक ही प्रतीत होता है ! गौड़ी रीति में लिखे गये **किरातार्जुनीय, शिशुपालवध** तथा **नैषधीयचरित** के पश्चात् **सुरथोत्सव**, संस्कृत महाकाव्य-साहित्य में सम्मानित स्थान प्राप्त करने योग्य है। यही नहीं, कतिपय स्थलों के स्वाभाविक एवं मार्मिक चित्रण में कवि **सोमेश्वरदेव** अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती महाकवियों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान पाने योग्य है।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य :

कीर्तिकौमुदी एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। बघेल-वंश तथा महामात्य वस्तुपाल के सम्बन्ध में सर्वाधिक ज्ञान इसी काव्य-ग्रन्थ से प्राप्त होता है। इस महाकाव्य में ९ सर्ग तथा कुल मिलाकर ७२२ श्लोक हैं। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि विष्णु की चारों भुजाओं की वन्दना करता है, जो कि धर्म के प्रहरी के रूप में वर्तमान है :—

श्रिये सन्तु सतामेते, चिरं चातुर्भुजा भुजाः ।
यामिका इव धर्मस्य, चत्वारः स्फुरदायुधाः ॥

(कीर्तिकौमुदी, १/१)

तदनन्तर कवि शिव तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है। पुनः विशिष्ट संस्कृत-कवियों की प्रशंसा करता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, बाण, धनपाल, विल्हण, हेमचन्द्र, नीलकण्ठ तथा प्रह्लादन आदि कवियों की अलग-अलग श्लोकों में प्रशंसा की गई है। वस्तुपाल के साहित्यिक कविमण्डल में वह नरचन्द्र, विजयसेन, सुभट तथा यशोवीर की प्रशंसा करता है। कतिपय श्लोकों में दुर्जन-निन्दा तथा सज्जन-प्रशंसा का वर्णन मार्मिक भावों से ओत प्रोत होकर किया जाता है :—

वृश्चिकानां भुजंगानां दुर्जनानां च वेधसा ।
विभज्य नियतं न्यस्तं, विषं पुच्छे मुखे हृदि ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्जनैस्तर्ज्यमानस्य, साधोरधिकमेधते ।

भस्मभिर्मृज्यमानस्य, मुकरस्येव चारुता ।।

(कीर्तिकौमुदी, १/३५ तथा३९)

इसके अनन्तर कवि वस्तुपाल के चरितचित्रण का कारण बतलाता है । कवि का कथन है कि मंत्री की मुझमें अपार भक्ति है, मंत्री का परिवार सुशील एवं पवित्र है, उसका व्यक्तित्व उत्कृष्ट है, व्यवहार उत्तम, चरित दया से युक्त, शत्रु पर भी दया करने वाला, उसकी दया भयरूपी कीटाणुओं को नष्ट करने वाली है, उसका यश पृथ्वी का अलङ्कार तथा शासन उचित नियमों के द्वारा आबद्ध है, अतएव मैं सोमेश्वरदेव वस्तुपाल के चरित चित्रण में प्रवृत्त होता हूँ[२५] । इसके अनन्तर कवि गुर्जर प्रदेश की राजधानी अनहिलवाड़ का वर्णन प्रस्तुत करता है। यद्यपि वह वर्णन काव्यात्मक है तथापि वास्तविकता का भी चित्रण प्राप्त होता है । नगर के विविध वर्णनों में सिद्ध-सरोवर का प्रमुख स्थान है । सिद्ध सरोवर के तट पर स्थित कीर्तिस्तम्भ का भी मार्मिक वर्णन प्राप्त होता है[२६] ।

द्वितीय सर्ग में गुर्जर प्रदेश के राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है । राजधानी अनहिलवाड़ में चालुक्य-वंशीय राजा मूलराज से भीमदेव द्वितीय तक तथा धवलक्क के वघेलवंशीय राजा अरणोराज से वीसलदेव तक का वर्णन प्राप्त होता है । प्रथमतः मूलराज, चामुण्ड, वल्लभराज दुर्लभराज, भीम, कर्ण जयसिंह, सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज द्वितीय तथा भीमदेव द्वितीय का काव्यात्मक राजनीतिक जीवन अङ्कित किया गया है[२७] । पुनः धवलक्क के वघेल राजा अरणोराज का वर्णन प्राप्त होता है, जिसने चालुक्य वंश की नींव को सुदृढ़ बनाया । अरुणोराज के पुत्र लवण प्रसाद तथा पौत्र वीरधवल ने वस्तुपाल को अपना मंत्री नियुक्त किया । लवण प्रसाद ने नड्डूल नृपति को मार डाला । उसके राज्य में हरण कर्म चोर नहीं करते थे अपितु विपक्षी राजाओं की कीर्तिहरण राजा स्वंय करता था :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न चौरास्तस्य सौराज्ये, दोरात्म्यं कुर्वते क्वचित् ।
स्वयमेष पुनः कीर्ति, हरति प्रतिभूभुजाम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, २/७०)

उसका पुत्र वीर शिरोमणि वीरधवल अपने पिता के ही अनुरूप था, मानो दर्पण में स्थित पिता का ही प्रतिविम्ब हो[२८] ।

एक बार नृपति लवण प्रसाद ने सूर्योदय होने पर पुरोहित सोमेश्वरदेव को बुलाया कि ब्रह्ममुहूर्त में मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा है। लवणप्रसाद यह जानना चाहते थे कि स्वप्न का क्या परिणाम होगा ? पुरोहित ने आकर स्वस्तिपाठ किया और आसन पर बैठ गये । तदनन्तर सोमेश्वरदेव तथा वीरधवल की उपस्थिति में लवण प्रसाद ने स्वप्न के सम्बन्ध में वर्णन करना शुरू किया[२९] ।

लवण प्रसाद ने स्वप्न के सम्बन्ध में बतलाया कि मैं शिवाद्रि पर अर्चना हेतु चढ़ गया, वहाँ पर हृदय से शिव-आराधना में तल्लीन हो गया, फलतः शिव के दर्शन हुये । तदनन्तर ज्यों ही मैंने शिव-पूजा समाप्त की और समाधि - मुद्रा में आया, त्यों ही मेरे समक्ष राका सदृश कोई बाला दिखलायी पड़ी :-

विसृज्य पूजामथ मन्मथारेः,
समाधिमुद्रां विदधामि यावत् ।
तावत् पुरः कामपि वामनेत्रां,
राकामिवाऽऽकारवतीमपश्यम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, २/८९)

वह बाला श्वेत वस्त्राभूषण धारण किये हुये, श्वेत शाटिका पहने हुये तथा हाथ में श्वेत माला लिये हुये दिखलायी पड़ी, जिसे देखकर मैं आश्चर्य चकित हो गया और उससे पूछा—तुम कौन हो तथा यहाँ क्यों आई हो, प्रत्युत्तर में उसने कहा—हे वीर ! शत्रुओं से त्रस्त मैं गुर्जर राज्यलक्ष्मी हूँ । हन्त ! वे वीर गुर्जर नृपति अब नहीं रहे जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने शत्रुओं को समूल नष्ट करने में समर्थ थे तथा जिनके बलिष्ट भुजाओं में मेरा निवास था । सम्प्रति जो शासक है वे शत्रुओं की वाहनियों को विदीर्ण करने में असमर्थ हैं । उनके मंत्री पराक्रम तथा बुद्धि-वैभव से रहित हैं । वे मेरी ओर दृष्टि-पात ही नहीं करते हैं यद्यपि मैं उनकी नियमतः राज्यलक्ष्मी हूँ । पुरोहित आमशर्मा की मृत्यु हो चुकी है जो मेरी उचित रुप से रक्षा करते थे । मुञ्जाल सुत अब जीवित नहीं रहे जिनके समक्ष में विद्रोही राजपूत सदा विनत रहे । राष्ट्र-कूट कुलश्रेष्ठ प्रतापमल्ल भी इस समय में नहीं रहे जो विपक्षी हाथियों के मद-गंध को भी सहन नहीं कर सकते थे । अपने ही लोगों के कारण मेरी यह दयनीय स्थिति हो गयी है । केवल जगदेव ही एक ऐसा वीर था जिसने शत्रु-वाहिनी को राजधानी में प्रविष्ट होने नही दिया । राजधानी की स्थिति दयनीय हो गयी, है जहाँ रात्रि में प्रकाश नहीं होता है, शृगाल के शब्द सुनाई पड़ते हैं तथा दीवालें भग्न हो गयी हैं । अपने पुत्र वीर-धवल के साथ आप मेरी रक्षा कीजिए । लवण प्रसाद ने आगे बतलाया कि इस प्रकार कह चुकने के पश्चात् राज्यलक्ष्मी ने मेरे कण्ठ में उस अलौलिक माला को डाल दिया तथा मेरे स्वप्न के साथ ही वह अगोचर हो गयी । अब आप कृपया बतलाइये कि स्वप्न का क्या तात्पर्य है । सोमेश्वर ने अपने मालिक को बताया कि गुर्जर प्रदेश के सभी राजपूत बड़े ही भाग्यशाली हैं क्योंकि राज्यलक्ष्मी आप पर प्रसन्न हुई हैं । राज्यलक्ष्मी ने आपको राजसत्ता सौंपी है अतएव आप सुयोग्य मंत्रियों को नियुक्त कीजिये[३०] ।

इस कथात्मक वर्णन से ज्ञात होता है कि लवण प्रसाद ने भीम-देव द्वितीय से अनहिलवाड़ की राजसत्ता अपने हाथों में ले ली थी ताकि राज्य में शान्ति-व्यवस्था स्थापित हो सके । यही वर्णन कीर्तिकौमुदी के समकालीन सुकृत संकीर्तन तथा वसन्तविलास नामक ग्रन्थों में भी कतिपय परिवर्तन के साथ प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार का वर्णन प्रबन्धकोश तथा वस्तुपाल चरित में भी प्राप्त होता है जो कि बाद को लिखे गये ऐतिहासिक वर्णन हैं । यह सत्य ही प्रतीत होता है कि लवण प्रसाद तथा उनके पुत्र वीरधवल ने भीमदेव के शत्रुओं को उचित अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुचित नीतियों से समूल नष्ट कर दिया अतएव कथा लेखकों ने अनहिलवाड़ के सौभाग्य का वर्णन उचित रूप से ही प्रस्तुत किया है ।

तृतीय सर्ग में वस्तुपाल के पूर्वज चण्डप से लेकर वस्तुपाल के पुत्र जयसिंह तथा तेजपाल के पुत्र लावण्यसिंह का वंश क्रमानुसार वर्णन किया गया है[11] । लवण प्रसाद सुयोग्य मन्त्रियों को नियुक्त करना चाहता था अतएव उसने इस कार्य के लिए विशेष रूप से वस्तुपाल तथा तेजपाल को बुलाया और उनसे हार्दिक इच्छा प्रकट की कि हम आपको मन्त्रित्व का भार सौंपना चाहते हैं । वस्तुपाल ने राजा की इच्छा की पूर्ति करते हुये मंत्रि-पद संभाल लिया । चतुर्थ सर्ग सूचित करता है कि मंत्रिपद पर नियुक्ति के अनन्तर वस्तुपाल स्तम्भतीर्थ भेजे गये, जहां पहुँच कर उन्होंने शासन प्रबन्ध में परिवर्तन कर शान्ति-व्यवस्था स्थापित की । जिस समय राज्य में शान्ति-व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी तभी देवगिरि के सिंहन ने गुर्जर-देश पर आक्रमण किया परन्तु लवण प्रसाद के द्वारा पराभूत हुआ । लाट के नृपति शंख स्तम्भतीर्थ बन्दरगाह को अपनी सम्पत्ति मानता था और वस्तुपाल के पास उसने दूत भेजा कि वह मेरे प्रभुत्व को स्वीकार करे परन्तु वस्तुपाल ने इसका समुचित उत्तर दिया और दूत को वापस होना पड़ा ।

पञ्चम सर्ग में भृगुकच्छ के नृपति शंख तथा वस्तुपाल के भीषण युद्ध का वर्णन है । उस युद्ध में दोनों पक्षों के वीर योद्धा मारे गये । अंत में शंख को अपनी बची हुई अल्प सेना के साथ सन्धि करनी पड़ी । छठे सर्ग में वस्तुपाल की विजय के उपलक्ष में स्तम्भतीर्थ वासियों द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव का वर्णन है । प्रत्येक गृह लेप के द्वारा स्वच्छ बनाये गये थे, जिनमें स्वास्तिक अङ्कित था । गृहों में वाद्य के अनुकूल ही कुलाङ्गनाओं के गीत हो रहे थे, मन्दिरों में विशेष रूप से पूजा हो रही थी, स्त्रियों की विशिष्ट वेषभूषा थी तथा समग्र नगर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी थी :—

गृहे गृहे धातुरसानुलेपाः समन्ततः स्वास्तिकपङ्क्तिमन्तः ।
विरेजिरे तूर्यरवानुकूलाः, कुलाङ्गना मङ्गलगीतयश्च ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बभूव देवेषु विशेष पूजा, राजन्यमार्गेषु विशेषशोभा ।
विशेषहर्षः पुरपूरुषेषु, विशेषवेषश्च वधूजनेषु ।।
(कीर्तिकौमुदी, ६/२तथा३)

देवी एकल्लवीरा के मन्दिर में उत्सव था । मंत्री कतिपय परिजनों के साथ देवी की अर्चना करने गया । मार्ग में विजयी मंत्री को देखने के लिये राजमार्ग के दोनों ओर दर्शकों की भीड़ एकत्र हो गयी । देवी की अर्चना करने के अनन्तर मध्यान्हकाल में मंत्री कवि समुदाय के साथ एक लतामण्डप में बैठकर कवि - गोष्ठी करने लगे । सायंकाल तक कवि-गोष्ठी चली पुनः रात्रि हो जाने पर वह अपने महल को वापस गये[१२] ।

सप्तम सर्ग मे परम्परा से प्राप्त चन्द्रोदय तथा रतिक्रीड़ा का काव्यात्मक वर्णन है । अष्टम सर्ग में धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है । प्रातःकालीन स्नान के अनन्तर मंत्री ने तीर्थङ्कर की अर्चना की तथा ध्यानावस्था में मग्न हो गये । इसके अनन्तर ही मंत्री ने तीर्थयात्रा के लिए निर्णय लिया ।

नवम सर्ग में संघ यात्रा का विस्तृत-वर्णन प्राप्त होता है । तीर्थ-यात्रा शुभ दिन से प्रारम्भ हुई, जिसमें अनेक हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट, रथ तथा प्रतिदिन उपयोग की जाने वाली वस्तुयें थी । संघ के साथ बहुत बड़ी संख्या में यात्री थे । संघ यात्रा के लिए जिन्हें वाहन की आवश्यकता थी उन्हें वाहन दिया गया, जिन्हें धन की आवश्यकता थी उन्हें धन दिया गया, जिन्हें वस्त्र की आवश्यकता थी उन्हें वस्त्र दिये गये । मार्ग के प्रत्येक नगर में संघ का स्वागत किया गया । यात्रा में संघ के स्त्री तथा पुरुष धार्मिक गीत गाते थे तथा जैन मूर्तियों की पूजा करते थे । मंत्री वस्तुपाल ने शत्रुञ्जय की चोटी पर पहुँच कर कपर्दिन यक्ष की पुष्पों से उपासना की । शत्रुञ्जय पर ही वस्तुपाल ने नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ के दो मन्दिर बनवाये । पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में अपने पूर्वजों, भ्राताओं तथा मित्रों की प्रतिमाओं को प्रस्थापित करवाया और पहाड़ी के पार्श्व भाग में ही एक झील को निर्मित करवाया[१३] । वहाँ पर दो या तीन दिन[१४] ठहरने के अनन्तर वह रैवतक (गिरनार) पर्वत पर गये । वहाँ पर नेमिनाथ के मन्दिर में प्रवेश कर सुगन्धित पदार्थों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेमिनाथ की अर्चना की, जिससे सम्पूर्ण पर्वत प्रदेश सुगन्धित हो गया। राज्य-कार्य को विस्मृत कर उसने वहाँ पर अनेक सुखद दिवस व्यतीत किये :—

धर्मक्रियाविस्मृतराजकार्यस्तत्रैव निन्ये स बहून्यहानि ।
असक्तमासक्तमभीप्सितेऽर्थे, कालातिपातं न हि वेत्ति चेतः ॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/६९)

तदनन्तर दक्षिण सौराष्ट्र में स्थित प्रभास पट्टण को जाते हुये वस्तुपाल ने तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ को नमस्कार किया तथा श्रीसोमनाथ की भक्ति-पूर्वक अर्चना की। वहाँ से वह पुनः अपने नगर धवलक्क को वापस आ गया तथा सत्पात्रों को प्रभूतदान दिया। नगर में प्रवेश कर मंत्री वस्तुपाल ने अपने प्रभु के चरण स्पर्श किये तथा संघ के लोगों को सत्कार प्रदान करते हुये बधाई दी :—

आगत्य स्वपुरं पुरन्दरसमस्याऽऽनम्यपादौ प्रभोः,
स क्षेमेण समेत्य चाऽऽत्मशरणं व्यापारिणामग्रणीः ।
देशाय प्रजिघाय संङ्घजनतां सत्कृत्य तां कृत्यवि-
न्निर्विघ्नाः कृतिनां भवन्ति हि समारब्धक्रियासिद्धयः ॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/७७)

महाकवि सोमेश्वरदेव एक मंगल श्लोक का पाठ करते हुये महाकाव्य की समाप्ति करते हैं। कर्ण के समान दानी वस्तुपाल वंदिजनों के द्वारा गाये गये यशः प्रशंसा के गीतों को सुनते हुये सर्वदा विजय प्राप्त करे :—

दुर्वा-पुष्प-फलाऽक्षतैरुपचितं पात्रं दधत्यः करे,
यस्मै मङ्गलमङ्गनाः प्रणयिनां चक्रुस्तदा सम्मदात् ।
सर्वत्र स्वयशांसि वन्दिगदितान्याकर्णयन् कर्णवद्,
दानोंद्दाम कराम्बुजः स जयतु श्रीवस्तुपालश्चिरम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/७८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि के महाकाव्य कीर्तिकौमुदी के सम्बन्ध में डा० कन्हैयालाल माणिक-लाल मुंशी का कथन सत्य ही प्रतीत होता है :–

Someshwara's diction has both grace and lucidity. When he has something new to say, he rises above the wearisome and degonerate imitation of classic models. The kavya had become rigid and lifeless. The decadent taste of Pandits perpatuated the bandage of conventions, which were no longer living interpreta-tion of life and like all worn out conventions They satisfied the soul that accepted them. From historical point of view, the work is invaduable. The author had first hand knowledge of events connected with the Calukya kings & Free from any propagandist zeal. In the first three contoes, he sets men and events in a fairly accurate perspective, and is fairly reliable guide for correcting the faulty perspective of Jain-works[35].

अभिप्राय यह है कि सोमेश्वरदेव ने संस्कृत-पण्डितों के मध्य परम्परा से प्राप्त गौड़ी रीति को छोड़कर इस महाकाव्य की रचना वैदर्भी रीति में की है। ऐति-हासिकता की दृष्टि से महाकाव्य अद्वितीय है। कवि ने चालुक्य-राजाओं का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। कवि का वस्तुपाल वंश-वर्णन जैन ग्रन्थों के त्रुटिपूर्ण वंश-वर्णन को शुद्ध करने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य अपने समकालीन नायक महामात्य वस्तुपाल का काव्यात्मक चरित-चित्रण प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त यह रचना महाकाव्य के लक्षणों से परिपूर्ण है। इस महाकाव्य में एक वास्तविक नायक का चरित-चित्रण है, जिसे **सदाश्रय** की संज्ञा दी जा सकती है। महाकाव्य का नायक वस्तुपाल चतुरोदात्त गुणों से युक्त है। इस काव्य की रीति वैदर्भी है, जो कि अल्प समास तथा सरल शब्दों वाली रचना मानी जाती है। इस रीति का प्रयोग विषयानुसार ही हुआ है। **कीर्तिकौमुदी** में श्लेष का प्रयोग यत्र-तत्र ही हुआ है तथा तत्कालीन काव्य-जगत् में प्रचलित शब्दाडम्बर को कवि ने स्वीकार नहीं किया है। इस महाकाव्य की रचना में श्री सोमेश्वर महाकवि कालिदास की परम्परा में आते हैं और कम से कम कवि का **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य, कालिदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारवि तथा माघ के पश्चात् रचे गये महाकाव्यों में सम्मानित स्थान प्राप्त करने योग्य है। सुरथोत्सव के प्रथम सर्ग में कवि ने कलिदास की काव्यमाधुरी के प्रति अपना अत्यधिक आकर्षण व्यक्त किया है :-

श्रीकालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्यकाव्ये रमते मतिर्मे ।

किं पारिजातं परिहृत्य हन्त ! भृङ्गालिरानन्दति सिन्धुवारे ॥

(सुरथोत्सव, १/३५)

कालिदास के काव्य को छोड़कर मेरा मन अन्यत्र नहीं रमता है। क्या भ्रमर समुदाय कभी स्वर्गीय पारिजात पुष्प को छोड़कर सिन्धुवार में अपना मन लगाता है? सोमेश्वर देव की कालिदास के प्रति श्रद्धा **कीर्तिकौमुदी** के रुप में प्रकट हुई है। कवि की यह श्रद्धा और भी तथ्यपूर्ण हो जाती है जब कि हम देखते हैं कि **कीर्तिकौमुदी** के द्वितीय सर्ग में वैभव से युक्त राजवंश का वर्णन रघुवंश के १६वें सर्ग में प्राप्त निर्जन अयोध्या से सम्बन्धित वर्णन (१६/४-२५) की स्पष्ट छाप प्रतीत होती है, जिसमें कुश से कुशवती राजधानी को छोड़कर पैतृकनगर साकेत को चलने के लिये निवेदन किया गया है। **कीर्तिकौमुदी** के अनेक स्थल सरल काव्यकला के वर्णन हैं। कवि के ये वर्णन संस्कृत काव्य-जगत् के उत्कृष्ट साहित्य के समक्ष तुलना के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। **कीर्तिकौमुदी** के कतिपय महत्वपूर्ण वर्णन इस प्रकार है :-

गुर्जर प्रदेश की राजधानी अणहिल्लपत्तन, झील सहस्रलिङ्ग तथा कीर्तिस्तम्भ का काव्यात्मक वर्णन प्रथम सर्ग (१/४८-८१) में प्राप्त होता है। कवि द्वारा किया गया राजधानी का यशोगान बड़ा ही मार्मिक है। यद्यपि यह वर्णन काव्यात्मक गुणों से युक्त है तथापि वास्तविकता का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। नगर के विविध वर्णनों में सिद्धसरोवर का प्रमुख स्थान है। सिद्ध सरोवर के तट पर स्थित कीर्तिस्तम्भ का भी मार्मिक वर्णन [१/७१-८१] प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ एक श्लोक प्रस्तुत है :—

यस्योच्चैः सरसस्तीरे, राजते रजतोज्ज्वलः ।

कीर्तिस्तम्भो नभोगङ्गाप्रवाहोऽवतरन्निव ॥

(कीर्तिकौमुदी , १/७५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि द्वितीय सर्ग में पाटन के राजाओं का वर्णन मूलराज से प्रारम्भ करता है। मध्य में नृपति सिद्धराज का वर्णन प्राप्त होता है। तदनन्तर लवण प्रसाद के स्वप्न की चर्चा की जाती है। स्वप्न में गुर्जर राज्यलक्ष्मी लवण प्रसाद के सम्मुख आयी, जिसे देखकर राजा विस्मित हो गये। श्वेतवस्त्रधारी राज्यलक्ष्मी ने पूर्व राजाओं की प्रशंसा करते हुये वर्तमान कष्ट को कह सुनाया। त्रस्त राज्यलक्ष्मी के द्वारा अपनी दयनीय स्थित का वणन (२/८७-१०७) अत्यन्त मार्मिक है। राज्य लक्ष्मी कहती है :—

मुण्डेव खण्डितनिरन्तरवृक्षखण्डा,

निष्कुण्डलेव दलितोज्ज्वलवृतवप्रा।

दूरादपास्तविषया विधवेव दैन्य—

मभ्येति गूर्जरधराधिपराजधानी॥

(कीर्तिकौमुदी, २/१०४)

स्तम्भतीर्थं में वस्तुपाल की नियुक्ति सचिव के रुप में की गयी। इस उपलक्ष में उसका स्तम्भतीर्थ में अभिनन्दन किया गया। महामात्य के पहुँचते ही पुरवासी प्रमुदित हुये :—

प्रविवेश पुरे तत्र, स पश्चान्मन्त्रिसत्तमः।

तस्याऽऽगमे तु पौराणां, प्रमोदः प्रथमं हृदि॥

हट्टे हट्टे पटोत्तम्भस्तोरणं च गृहे गृहे।

पुरुषे पुरुषे प्रीतिः, सम्प्राप्ते, तत्र मन्त्रिणि॥

(कीर्तिकौमुदी, ४/७-८)

इस प्रकार निश्चत ही उपर्युक्त वर्णन महत्वपूर्ण है।

शंख के पराभव पर नगरवासियों द्वारा किये गये महोत्सव का वर्णन भी महत्वपूर्ण है। शंख के पराभव पर पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न हैं। मंत्री की प्रशंसा करते हुये कवि कह रहा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संशोषिताशेषनदे निदाघे, मन्त्रीशदृष्टिः कमलाभिरामा ।
तृष्णापहारं न चकार कस्य, प्रपेव सन्मार्गमुपागतस्य ? ॥
(कीर्तिकौमुदी, ६/१३)

महोत्सव में राजमार्ग पर चलते हुये मंत्री को देखने के लिए युवतियां शीघ्रता कर रही हैं :—

प्रसर्पतः प्रोषितगर्वभावात्, परिच्छदो यद्यपि तस्य तुच्छः ।
स्त्रीभिः कृताः प्रेक्षणकाङ्क्षिणीभिस्ते सङ्कटा राजपथास्तथापि ॥
तं राजवीथ्यामथ सञ्चरन्तमालोकयन्त्यः पुरलोककान्ताः ।
दातेति पातेति जयीत्ययीति, क्षमीति वाग्मीति भृशं शशंसुः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ६/१६ तथा १७)

इस विजय महोत्सव में कवि ने अनेक छन्द रचे हैं ।

उपर्युक्त वर्णन अश्वघोष, कालिदास तथा बाण की वर्णन शैली को स्मरण कराते हैं और कहीं कहीं विचारों में नवीनता भी है । हृदय को आह्लादित करने वाला चन्द्रोदय का वर्णन सप्तम तथा नवम सर्ग में संघयात्रा का मार्मिक वर्णन उल्लेखनीय है । वस्तुपाल तथा लवण प्रसाद की राजनैतिक वार्ता (३/५९-७९) एक प्रभावशाली काव्यात्मक कथनोपकथन कहा जा सकता है । शिशुपालवध तथा किराताजुनीय में भी इसी प्रकार का राजनीति सम्बन्धी कथनोपकथन प्राप्त होता है ।

यहां कीर्तिकौमुदी से कतिपय छन्द उद्धृत किये जाते हैं । इन छन्दों के द्वारा, संस्कृत के अन्य महाकाव्यों को देखते हुये कवि सोमेश्वरदेव की काव्य-कला पर प्रकाश पड़ता है । वस्तुपाल मंत्रिपद ग्रहण करने के लिए तैयार है, यदि राजा राजनैतिक मामलों में न्यायोचित व्यवस्था करते रहे :—

पुरस्कृत्य न्यायं खलजनमनादृत्य सहजा —
नरीन् निर्जित्य श्रीपतिचरितमाश्रित्य च यदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्धर्तुं धात्रीमभिलषसि तत्सैष शिरसा,

धृतो देवादेशः स्फुटमपरथा स्वस्ति भवते ।।

(कीर्तिकौमुदी, ३/७७)

सिङ्घन ने गुर्जरदेश पर आक्रमण किया । चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई । आर्तनाद से युक्त गुर्जरवासियों का वर्णन हृदय-द्रावक है :—

श्रुतसिङ्घनसिंहनादप्रसरा गूर्जरराजराजधानी ।

हरिणीव हरिन्मुखावलोकं चकितान्तःकरणा मुहुश्चकार ।।

गृहमारभते न कोऽपि कर्तुं, कुरुते कोऽपि न सङ्ग्रहं कणानाम् ।

स्थिरतां क्वचनापि नैति चेतः, परचक्रागमशङ्कया प्रजानाम् ।।

अवधीरितधान्यसञ्चयानां, बहुमानः शकटेषु मानवानाम् ।

विपदामुदये हि दुर्निवारे, शरणं चक्रभदेव देहभाजाम् ।।

समुपैति यथा यथा समीपं, रिपुराजध्वजिनी मदात्तदानीम् ।

परतः परतस्तथा तथाऽसौ, जनता जातभयोच्छ्रया प्रयाति ।।

(वही, ४/४३-४६)

स्तम्भतीर्थ के महोत्सव-वर्णन की भाषा सरल किन्तु प्रभावशाली है :—

गृहे गृहे धातुरसानुलेपाः समन्ततः स्वस्तिकपङ्क्तिमन्तः ।

विरेजिरे तूर्यरवानुकूलाः, कुलाङ्गनामङ्गलगीतयश्च ।।

बभूव देवेषु विशेषपूजा, राजन्यमार्गेषु विशेषशोभा ।

विशेषहर्षः पुरपूरुषेषु, विशेषवेषश्च वधूजनेषु ।।

(वही, ६/२-३)

कवि की कीर्तिकौमुदी में अनेक सारगर्भित कथन हैं, जिनमें से दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं । तीर्थयात्रा को जाने से पूर्व वस्तुपाल कह रहे हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पित्राद्यैरुपभुक्ता या, पुत्राद्यै रपि भोक्ष्यते ।
कामयन्ते न तां सन्तो, ग्रामवेश्यामिव श्रियम् ।।

(वही, ८/३५)

पुनश्च —

अन्धा एव धनान्धाः स्युरिति तथ्यं तथाहि ये ।
अन्योक्तेनाध्वना गच्छन्त्यन्यहस्तावलम्बिनः ।।

(वही, ८/३७)

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कीर्तिकौमुदी अश्वघोष, कालिदास तथा बाण की वर्णन शैली को स्मरण दिलाती है । कीर्तिकौमुदी के राजनीति से सम्बन्धित कथनोपकथन किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध के समान ही है । यह कहा जा सकता है कि काव्यकला की दृष्टि से कालिदास भरवि तथा माघ के पश्चात् रचे गये महाकाव्यों में कीर्तिकौमुदी का उच्च स्थान है । विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहसाङ्कचरित, वसन्तविलास, सुकृतसंकीर्तन तथा धर्माभ्युदय आदिक ऐतिहासिक महाकाव्यों में ऐतिहासिकता की दृष्टि से कीर्तिकौमुदी अधिक तथ्यपूर्ण है । इसके अतिरिक्त रघुवंश के समान ही कीर्तिकौमुदी की सरसता का विवेचन विगत अनुच्छेदों में किया जा चुका है, जिससे यह सिद्ध हो चुका है कि कीर्तिकौमुदी एक उत्तम कोटि का काव्य है। कीर्तिकौमुदी का नायक नृपति न होकर संस्कृतज्ञ महामात्य है । इस प्रकार ऐतिहासिकता तथा काव्यकला की दृष्टि से संस्कृत-जगत् के ऐतिहासिक महाकाव्यों में कीर्तिकौमुदी का विशिष्ट स्थान है और यह अपने प्रकार का पहला महाकाव्य है ।

उल्लाघराघव नाटक :

रामायण की कथा पर आधारित सोमेश्वरदेव रचित उल्लाघराघवनाटक में ८ अङ्क हैं । प्रथम अङ्क राम और सीता के विवाहोपरान्त होने वाली घटना से प्रारम्भ होता है । नान्दी के अनन्तर जनक के पुरोहित शतानन्द कन्या-जन्य दुःख की सूचना देते हैं कि अब सीता,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिता जनक से अलग कर दी जायेगी । दशरथ तथा उनके दोनों पुत्र एवं सीता जनक से विदाई लेकर राजधानी साकेत के लिये प्रस्थान करते हैं । इसके अनन्तर कन्यान्तःपुर पालक हरिदत्त सूचित करता है कि किस चातुर्य के साथ राम ने क्रोधित परशुराम को शान्त किया। राजा जनक अपने जामाता राम की इस सफलता की सूचना अन्तः-पुर में देते हैं । द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में एक विष्कम्भक के द्वारा दो अनुचरों के वार्तालाप के आधार पर हम जानते हैं कि राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में निर्णय ले लिया है तथा इस पुनीत कार्य के लिए पुरोहित वशिष्ठ को बुलाया है। पुनः राम और सीता मालाधर के साथ प्रमोद-बन तथा प्रमोद-तडाग में भ्रमण करते हैं अतः उनका मन प्राकृतिक सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाता है :—

द्विगुणमरुणिमानं पल्लवाः पादपानां,
दधति सति विभाते भास्कराभीशुभिन्नाः ।
उपहितमिहिकाम्भः सीकरालीकराला,
सकुसुमकलिकेव भ्राजते पत्रपङ्क्तिः ॥
(उल्लाघराघव, २/१६)

इस बीच में दशरथ प्रिय पुत्र राम को बुलाते हैं और कहते हैं कि वह राज्यभार को स्वीकार करने के लिए तैयार रहें । इसी बीच वैतालिक संध्याकालीन वर्णन नेपथ्य से प्रस्तुत करता है । कञ्चुकी राजा दशरथ से निवेदन करता है कि भरत की माँ कैकेयी ने अपने भवन में आपको बुलाया है । वहाँ जाने से पूर्व राजा दशरथ ने पुनः राम से राज्याभिषेक के लिए तैयार रहने की आज्ञा दी ।

तृतीय अंङ्क में सेविका मन्थरा तथा सुबुद्धिका के वार्तालाप से यह प्रतीत होता है कि रानी कैकेयी पति दशरथ से दो वरदानों को चाहती है, जिन्हें दशरथ ने कुछ समय पूर्व देने के लिये कहा था । कैकेयी ने प्रथम वरदान में राम को चौदह वर्ष का बनवास तथा दूसरे वरदान में साकेत का राज्य भरत के लिये मांगा । अयोध्या में भ्रमण करते हुये राम राज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भवन आते हैं। राम और सुमन्त्र ने कैकेयी के भवन में देखा कि राजा दशरथ कैकेयी से वरदान न मांगने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। राम को देखकर दशरथ मूर्छित हो जाते हैं। इसी बीच कौसल्या, सुमित्रा तथा सीता का प्रवेश होता है और इस नवीन वृत्तान्त को सुनकर सभी चित्रवत् रह जाते हैं। क्रोधित लक्ष्मण धनुष पर बाण चढ़ाकर प्रवेश करते है और कहते हैं कि किसमें सामर्थ्य हैं? जो राम को वनवास दे सके[३६]। परन्तु राम उनको शान्त कर बनवास के लिए अयोध्यावासियों से विदाई लेते हैं। सम्पूर्ण साकेत दुःख से निमग्न हो जाता है :—

का माता? श्रवसोर्वचांसि कुरुते दासीजनोक्तानि या,
कस्तातः? प्रमदाप्रतारितमतिर्जानाति कृत्यं न यः।
कश्चायं भरतः? श्रिया ह्यविधिना यो रज्यते, दुर्णय-
व्याषेधार्थमधिज्यधन्विनि मयि श्रीरामभृत्ये स्थिते॥

(उल्लाघराघव, ३/२३)

सम्पूर्ण चतुर्थ अङ्क में राम के वनवास के अनन्तर घटित होने वाली घटनाओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस अङ्क में गन्धर्व कुमुदाङ्गद तथा उसके पुत्र कनकचूड की विमानयात्रा तथा उनका परस्पर वार्तालाप भी प्रस्तुत किया गया है। उस वार्तालाप से हम जानते हैं कि दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। भरत चित्रकूट पहुँच कर राम से वापस चलने के लिये आग्रह करते हैं। राम के समझाने पर प्रजा के रक्षार्थ चरण-पादुका लेकर भरत अयोध्या वापस आते हैं। राम निशाचर विराध का बध करते हैं और दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में ही एक विष्कम्भक है, जिससे श्रोतागण जानते हैं कि मारीच की सहायता से रावण सीता को चुराना चाहता है क्योंकि लक्ष्मण ने उसकी बहिन शूर्पणखा के नाक और कान काट लिये हैं तथा जनस्थान के रहने वाले राक्षसों को राम ने मार डाला है। तदनन्तर रावण का प्रवेश होता है और वह सीता को बलात् रथ पर बैठा लेता है। गृद्धराज जटायु सीता की सहायता के लिये आता है और रावण से घोर युद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता है। राक्षस रावण के प्रणिधि से ज्ञात होता कि जटायु ने अपने चोंच से रावण को अस्तव्यस्त कर दिया है और अन्त में क्रोधित रावण उसके पंख कृपाण से काट लेता है और वह धरणीतल पर गिर पड़ता है। राम और लक्ष्मण सीता को न पाकर जंगल में खोजने के लिये निकलते हैं और जटायु के द्वारा राम को बलात् सीता के ले जाने की सूचना मिलती है :—

कृत्वा तपोधनतनुं दशकन्धरेण,
साध्वी बलादपहृता रुदती स्नुषा मे।
आक्रन्दितानि करुणानि निशम्य पातुं,
तामागतोऽहममुना निहितोऽस्मि निघ्नन् ॥

(उल्लाघराघव, ५/५९)

जटायु दक्षिण में स्थित पम्पासर को जाने के लिये परामर्श देता है और कहता है कि दक्षिण पहुंचकर सुग्रीव आदि प्रमुख बन्दरों से मित्रता स्थापित कीजिये, तभी लङ्का पर विजय सम्भव हो सकती है।

छठे अङ्क के प्रारम्भ में माल्यवान् तथा सारण राक्षस आपस में वार्तालाप करते हैं, जिससे दर्शकों को ज्ञात होता है कि राम ने कपीश बालि का बध कर दिया है और हनुमान ने लङ्का जला दी है। विभीषण ने रावण को परामर्श दिया कि वह सीता को वापस कर दे परन्तु वह रावण के द्वारा तिरस्कृत किया गया अतएव राम के पक्ष में चला गया। तदनन्तर अङ्गद रावण के दरबार में जाता है परन्तु असफलता मिलती है, क्योंकि दोनों ही आपस में एक दूसरे के ऊपर दोषारोपण करते हैं। नेपथ्य में युद्ध सम्बन्धी बन्दरों की गर्जना सुनायी पड़ती है। रावण अपने राजप्रासाद के ऊपर से शुक के साथ राम की विशाल सेना को देखता है। शुक राम की सेना के प्रधान योद्धाओं को रावण से बतलाता है। इसी प्रकार राम भी सुवेल पर्वत के शिखर पर पहुँचकर रावण की युद्ध-वाहिनी को देखते हैं।

सम्पूर्ण सप्तम अङ्क में मथुरा के अधिपति लवण के गुप्तचर एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रावण के मित्र कार्पटिक का राक्षस वृकमुख से वार्तालाप प्राप्त होता है। इस प्रकार हम जानते हैं कि रावण मारा जा चुका है। सीता की शुद्धता अग्नि-परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुकी है :—

दिष्ट्या मुञ्चत पुष्पवृष्टिममरास्तारापथस्थायिनः!,
प्रीतिं पुष्यतु दिव्यदुन्दुभिरवस्तूर्णं च कर्णद्वये।
पुष्पाणामपि ताडनं न सहते मयद्वी दीया तनु—
वैदेही दहनेऽपि साऽद्य निहिता शुद्धा न दग्धा यतः॥

(उल्लाघराघव, ७/२८)

विभीषण लङ्का के सिहांसन पर आसीन कर दिये गये हैं। कार्पटिक कहता है कि मैं अब भी राम के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करूँगा। नेपथ्य में विभीषण की आवाज सुनायी पड़ती है जिससे ज्ञात होता है कि विभीषण राम से अयोध्या जाने के लिये पुष्पक विमान में बैठने के लिये कहते हैं।

अष्टम अङ्क के प्रारम्भ में राम की अयोध्या के प्रति विमान यात्रा वर्णित है। मार्ग में सीता अनेक स्थानों को पूछती हैं और राम उनकी उत्सुकता को शान्त करते हैं। कार्पटिक छद्म वेश में मुनि बनकर अयोध्या जाता है, जहाँ रावण-वध की सूचना अभी प्राप्त नहीं हुई है। अयोध्या में वह मिथ्या प्रचार करता है कि रावण ने राम तथा लक्ष्मण को मार डाला है और इस समय अपने पुष्पक विमान पर चढ़ कर अयोध्या पर आक्रमण करने आ रहा है। अयोध्या में युद्ध के लिए सेना तैयार की जाती है। कौसल्या तथा सुमित्रा इतनी दुःखी हुई कि जीवित ही जलने के लिये तैयार हो जाती हैं। इसी बीच पुष्पक-विमान आता है और विभीषण के ऊपर भरत अपना बाण छोड़ना चाहते हैं परन्तु वशिष्ठ भरत को रोकते हैं क्योंकि वशिष्ठ को अन्तर्चक्षुओं से यह सारी बातें मालूम थी। कार्पटिक का सारा षडयंत्र खुल गया। राम अपने परिवार के साथ प्रसन्नता पूर्वक मिलते हैं। अन्त में वशिष्ठ के मुख से भरत-वाक्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजानो जनयन्तु कीर्त्तिकुमुदैरामोदिनीं मेदिनीं,

भूदेवाश्च तदापदामपनुदे वह्नौ वषट् कुर्वताम्।

वक्त्राम्भोरुहरङ्गभूमिविहरद्वाग्देवतामत्सरं,

श्रीरुत्सृज्य करोतु तेषु च रतिं मत्तेभविभ्राजिनी ।।

(उल्लाघराघव, ८/४३)

उल्लाघराघव के प्रत्येक अङ्क के अन्त में एक नवीन श्लोक दिया गया है, जिसके द्वारा मंत्री वस्तुपाल की प्रशंसा की गई है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि मंत्री का कवि से घनिष्ठ सम्बन्ध था। नाटक के अन्त में चार श्लोकों की एक प्रशस्ति है, जिसमें नाटककार अपने बारे में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है। इनमें से दो श्लोक[३७] सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग (१५/३९ तथा ४०) में भी प्राप्त होते हैं। उल्लाघराघव नाटक का यही संक्षिप्त-परिचय है।

रामशतकम् स्तोत्र :

पुराणों के पश्चात् लौकिक साहित्य में स्वतंत्र रूप से स्तोत्रों की रचना हुई है। लौकिक साहित्य में सबसे प्राचीन अश्वघोष का **गण्डिस्तोत्र** (ईसा पूर्व प्रथम शतक) माना जाता है। तब से लेकर अब तक भारतवर्ष में अपार स्तोत्र-साहित्य का सृजन किया गया है। **शिवमहिम्नस्तोत्र**, **शिवापराधक्षमापनस्तोत्र**, **कृष्णकर्णामृतम्** आदि कतिपय स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं। स्तोत्रों में शतक परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। मयूर का **सूर्यशतक**, बाण का **चण्डीशतक**, सोमेश्वर देव का **रामशतक** तथा मधुसूदन सरस्वती का **आनन्द-मन्दाकिनी** स्तोत्र, संस्कृत स्तोत्र साहित्य में शतक परम्परा को सम्मानीय स्थान दिलाने में सुक्षम है[३८]।

वस्तुपाल के आश्रय में रहने वाले कवियों ने अनेक स्तोत्र लिखे, जिनमें सोमेश्वर के **रामशतकम्** का महत्वपूर्ण स्थान है। **रामशतक** स्तोत्र में, जैसा कि नाम से ही मालूम होता है, १०० श्लोक हैं। इस स्तोत्र का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ण्य विषय राम का जीवन चरित्र[३९] है । सम्पूर्ण स्तोत्र स्रग्धरा छन्द में लिखा गया है । अन्तिम १०१ वाँ श्लोक उपजाति छन्द में है-जो कि स्तोत्र का अंग नहीं है । इस अन्तिम श्लोक में कवि अपना परिचय प्रस्तुत करता है । इस स्तोत्र में राम की स्तुति की गई है । स्तोत्र शतक परम्परा के अन्तर्गत आता है । यह स्तोत्र मयूर के सूर्यशतक तथा बाण के **चण्डीशतक** की परम्परा को आगे बढ़ाता है । ये स्तोत्र भी स्रग्धरा छन्द में लिखे गये हैं तथा संस्कृत-स्तोत्र साहित्य में अत्यधिक प्रसिद्ध है[४०] ।

रामशतक स्तोत्र में राम के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित घटनाओं की प्रशंसा की गई है । प्रथम श्लोक में राम की सामान्य रूप से स्तुति की गई है । कवि ने राम-जन्म तथा बाल-वर्णन बड़े ही मनोरम ढंग से अङ्कित किया है । राम की शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख करते हुये कवि भगवान् राम से सुख की कामना करते हैं (श्लोक १-११) । इसके अनन्तर राम के द्वारा विश्वामित्र के यागों की रक्षा की जाती है । तदनन्तर ताड़का तथा अन्य राक्षसों का वध-वर्णन किया गया है । वन में ही रहते हुये राम एक दिन अहल्या का उद्धार करते हैं (श्लोक १२-१९) । जनक के द्वारा विश्वामित्र को आमंत्रित किये जाने पर उन्हीं के साथ राम तथा लक्ष्मण का आगमन मिथिला नगरी में होता है । मिथिला में पहुँचकर राम सभी राजाओं के समक्ष शिव-धनुष को तोड़ डालते हैं । अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राजा जनक अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करते हैं(श्लोक २०-३१)। विवाह के पश्चात् मिथिला से राम की वापसी होती है । क्रोधित परशुराम से राम की भेंट होती है (श्लोक३२-६९) । अयोध्या पहुँचकर राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक की घोषणा करते हैं । कैकेयी के द्वारा राज्याभिषेक में विघ्न डालने पर राम १४ वर्ष के लिये वन को चले जाते हैं (श्लोक४०-५६) । वन में पहुँच कर राम इधर-उधर भ्रमण करते हैं । राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा ले गया । इसी बीच राम की बन्दरों से मित्रता हो गयी (श्लोक५७-७१) । बन्दरों के नायक हनुमान् समुद्र लाँघ कर सीता से मिले । पुनः लङ्का जाने के लिये समुद्र पर सेतु-निर्माण के अनन्तर राम ने लङ्का पहुँचकर आक्रमण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दिया (श्लोक७२-८१)। स्तोत्र के अन्तिम श्लोकों में राम और रावण का युद्ध वर्णित किया गया है। युद्ध में रावण मारा गया, अतः विभीषण का लङ्का में राजतिलक होता है (श्लोक८२-९३)। अशोक वाटिका से सीता को प्राप्त कर उनकी अग्नि परीक्षा होती है। तदनन्तर राम पुष्पक-विमान से अयोध्या को लौट आते हैं। अन्त में राम का राज्याभिषेक होता है (श्लोक९४-१००)।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य और **उल्लाघराघव** नामक नाटक की तरह ही इस काव्य में भी सोमेश्वर एक उच्च कोटि के कवि के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। **रामशतक** के कर्त्ता के समक्ष **सूर्यशतक** और **चण्डीशतक** के नमूने प्रस्तुत होते हुए भी किसी भी स्थान पर इन प्राचीनतर काव्यों का सोमेश्वर ने अनुकरण नहीं किया है किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि इन स्तोत्रों की लोकप्रियता से सोमेश्वर को इस रचना के लिए प्रेरणामात्र मिली हो। संस्कृत - साहित्य के उत्तरकाल में रचित स्तोत्रों की कृत्रिम शैली से **रामशतक** सर्वथा मुक्त है। इसके विपरीत **कीर्तिकौमुदी** की तरह इस काव्य का भी प्रसाद गुण उल्लेखनीय है। इस विषय में तो सोमेश्वर की रचनायें कालिदास को बार-बार याद दिलाती है। इस प्रकार के काव्यों में आवश्यक भक्ति-भाव और सहृदयता से **रामशतक** आद्यन्त ओतप्रोत है। शतस्रग्धरा छन्दों से जोड़ी हुई ये कड़ियाँ लम्बे वृत्त पर कर्त्ता का प्रभुत्व बतलाती है और यही एकमात्र कृति संस्कृत-स्तोत्र साहित्य में कर्त्ता को सम्मानीय स्थान दिलाने के लिये सुक्षम है। नीचे **रामशतक** से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। राम की स्तुति करता हुआ कवि उनके बचपन की चर्चा करता है:—

पर्यङ्के पङ्कजन्माङ्कितलविचलत्पाणि-पादप्रवालः,
खेलन् बालः प्रमोदं प्रथयतु मिथिलानाथपुत्रीपतिर्वः।
पित्रोः पोतप्रतीतिः समभवदुचिता पुंसि यस्मिन् पुराणे,
पारं संसारवार्द्धेर्न हि परमपरस्तं विना नेतुमीशः॥

(रामशतक, श्लोक २)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न व्यक्ति अपनी दृष्टि से राम का दर्शन करते थे। इसका मनोहर वर्णन कवि कर रहा है:—

पुण्यानां प्राक्तनानां फलमिति जनकेनान्तरात्मेति मात्रा,
साक्षादक्षीयमाणः प्रणयनिधिरिति भ्रातृभिश्च त्रिभिर्यः।
नीतिर्मूर्त्तत्यमात्यैः परपुरुष इति ज्ञानिभिर्ज्ञायमानः,
प्राप प्रौढिं क्रमेण द्रढयतु निरघां राघवः स श्रियं वः॥

(वही, श्लोक ६)

अर्थात् पिता ने पूर्व पुण्य के फल के रूप में, कौसल्या ने अन्तरात्मा के रूप में, तीनों माताओं ने साक्षात् अक्षय प्रेमनिधि के रूप में, अमात्यों ने नीतिमूर्ति के रूप में और ज्ञानियों ने परमपुरुष के रूप में जिन्हें पहचाना ऐसे युवावस्था प्राप्त कर रहे राघव आप सब की श्री दृढ़ करें।

राम अयोध्या से चल कर बन में पहुँचते हैं। वहाँ पर वृक्ष पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हैं। कोयल, बाँस तथा लताएँ मिलकर संगीत प्रस्तुत करते हुये राम का स्वागत करते हैं:—

सन्दोहे पादपानां विकरति कुसुमस्तोममुच्चैः पिकानां,
गीते नृत्यं श्रितासु व्रततिषु मरुता कीचकेषु ध्वनत्सु।
सङ्गीतं काननेन प्रथितमिवमुदा यत्र नाथे त्रयाणां,
लोकानामभ्युपेते स भवदवभयात् पातु पीताम्बरो वः॥

(रामशतक, श्लोक ५५)

राम की माया देखिये—जब तक रावण जीवित रहा। उसने अपने समक्ष परिजनों को मरते हुये देखा जो कि उसके लिए यमपुरी के तुल्य था, परन्तु स्वयं राम के द्वारा मारे जाने के पश्चात् उसने मुक्ति प्राप्त की :—

तस्माद् वः सर्वसिद्धिर्भवतु भगवतो भूरिमायाप्रपञ्चः,
पञ्चत्वं प्राप्य यस्मादगमदमरतां राक्षसः सोऽपि सम्यक्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु श्रीकान्तकान्ताहठहरणमहापातकात् तेन काम—
व्यामोहान्धेन बन्धुक्षयनिरयरुजः सेहिरे जीवतैव ॥

(वही, श्लोक ९२)

रामशतक पर दो टीकायें भी प्राप्त होती हैं । प्रथम टीका एकनाथभट्ट[४१] की हृदयरञ्जनी अथवा शुभहरिवल्लभा है और दूसरी टीका बालबोधिनी के नाम से जानी जाती है । बालबोधिनी का टीकाकार अज्ञात है । रामशतक पर लिखी गई ये टीकायें स्त्रोत्र के व्यापक प्रचार पर प्रकाश डालती हैं ।

कर्णामृतप्रपा सुभाषित संग्रह :

विभिन्न विषयों पर लिखी गई सुभाषित रचनाओं का समुदाय सुभाषित संग्रह कहलाता है । अमितगति रचित सुभाषितरत्नसंदोह (९९४ ई०) के समान सुभषित संग्रह एक ही कवि की रचना हो सकती है अथवा कवीन्द्रवचनसमुच्चय (दशमशतक का अन्तिम भाग) के समान भूतपूर्व कतिपय कवियों का संग्रह भी हो सकता है । इन दो सुभाषितों के अनन्तर ही संस्कृत-साहित्य में उत्कृष्ट सुभाषित रचे गये । दूसरे प्रकार के सुभाषितों में कभी-कभी श्लोकों में ही कवि का नामोल्लेख भी प्राप्त होता है । इस प्रकार की सूचना संस्कृत साहित्य के इतिहास के लिए बड़ी उपादेय सिद्ध हुई है, यद्यपि अधिकांश कवियों के तिथि निश्चय के लिए प्रबल प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत सुभाषित प्रथम प्रकार की रचना है, जिसके रचयिता केवल एक ही कवि सोमेश्वरदेव हैं ।

कवि सोमेश्वरदेव रचित कर्णामृतप्रपा धार्मिक, भक्ति तथा सुभाषित मुक्तकों का एक संग्रह है, जिसमें २१७ श्लोक विभिन्न छन्दो में रचे गये हैं । सुभाषित के कतिपय श्लोक कवि की अन्य रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं, शेष श्लोकों के बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता है । यह भी सम्भव हो सकता है कि शेष श्लोक कवि के अप्राप्त ग्रन्थों से संग्रहीत किये गये हों । अधिक सम्भव यही है कि कवि ने विषयानुसार नवीन श्लोकों की रचना की है । पुष्पिका में यह रचना सुभाषितावली के नाम से अभिहित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की गई है[४२]। मंगलाचरण से ज्ञात होता है कि कवि का उद्देश्य धार्मिक तथा सुभाषित श्लोकों को प्रतिपादित करना है। यह मंगलाचरण प्रथम श्लोक से नव श्लोक पर्यन्त वर्णित किया गया है। प्रथमत: कवि अपने कार्य की सिद्धि के लिए शिव तया कृष्ण की बन्दना करता है। तदनन्तर वह गङ्गा के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है। पञ्चम श्लोक में कवि अपने मुख में स्थिति तीनों वेदों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुये सप्तम श्लोक में वह अपने ग्रन्थ को साधुबोध की संज्ञा देता है। सम्पूर्ण सुभाषित-संग्रह १४ विभागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग का विषय स्वतंत्र है।

लक्ष्मी (श्लोक १०-१९), काम (श्लोक २०-२५), क्रोध (श्लोक २६), लोभ (श्लोक २७), कलिस्वरूप (श्लोक २८-३९), कुनरेन्द्रनिन्दा (श्लोक ४०-५६), दुर्जन (श्लोक ५७-६५), मनस्वी (श्लोक ६६-७०), विधि (श्लोक ७१-७९), निर्वेद (श्लोक ८०-१०९), प्रकीर्ण काव्योक्ति (श्लोक ११०-१४५), जिनमें अधिकांश अन्योक्तियाँ हैं। शम (श्लोक १४६-१६२), उपदेश (श्लोक १६३-१९६), अन्त में कवि ने श्रीकृष्ण की प्रार्थना की है, (श्लोक १९६-२१६), इनमें कतिपय श्लोक शिव की वन्दना में भी लिखे गये हैं। अन्तिम श्लोक में कवि का नामोल्लेख है:—

संसारस्थलदु:स्थानां प्राणिनां प्रीतिहेतवे।
श्रीसोमेश्वरदेवेन कृता कर्णामृतप्रपा॥

कर्णामृतप्रपा का १०९ वाँ श्लोक जिसमें गुर्जर राजधानी अनहिलवाड़ की दयनीय स्थिति का वर्णन है, कीर्तिकौमुदी (सर्ग २/१०४) में भी प्राप्त होता है:—

मुण्डेव खण्डितनिरन्तरवृक्षखण्डा,
निष्कुण्डलेव दलितोज्ज्वलवृत्तवप्रा।
दूरान्निरस्तविषया विधवेव दैन्य-
मभ्येति गूर्जरधराधिपराजधानी॥
(कर्णामृतप्रपा, १०९)

श्लोक १०८ भी अनहिलवाड़ की दयनीय स्थिति को व्यक्त करता है परन्तु कवि की प्राप्त रचनाओं में यह श्लोक उपलब्ध नहीं होता है:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'सिद्धेशप्रमुखैः पुरा परिहृतं प्राणैरिव क्षोणिपैः
पश्चान्मुक्तममुक्तधर्म्ममतिभिर्बन्धूपमैर्मन्त्रिभिः ।
स्थायं स्थायमथ श्रिया कथमपि त्यक्तं जनन्येव यत्
तत् कैश्चित् पुरमर्धदग्धमधुना ध्वाङ्क्षैर्यथा भक्ष्यते ॥

(वही, १०८)

अन्योक्तियों में श्लोक १२४ प्रबन्ध कोश [श्लोक ३२९] तथा विविधतीर्थंकल्प के पृष्ठ ८० पर प्राप्त होता है। इन दोनों ग्रन्थों में यह उद्धृत है कि यह सोमेश्वर की ही रचना है:—

मासान् मांसलपाटलापरिमलव्यालोलरोलम्बिनः
प्राप्य प्रौढिमिमां समीर ! महतीं हन्त त्वया किं कृतम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ निरस्ततमसौ दूरं तिरस्कृत्य यत्
पादस्पर्शसहं विहाय सितयोः स्थाने रजः स्थापितम् ॥

(वही, १२४)

श्लोक १०६ तथा १०७ गोलोकवासी नृपति सिद्धराज जयसिंह की स्मृति में लिखे गये हैं:—

तिष्ठत्येव तवान्तिके सुरतरुर्दानैयदीनात्मनां
आनन्दं नयनद्वयस्य कुरुते चन्द्रोऽपि सान्द्रद्युतिः ।
देवेनाऽपि दितेः सुतान् दलयता नाकश्च निष्कण्टकः
श्रीसिद्धाधिपतिं विधे ! स्वसविधे तत् किं भवान् नीतवान् ॥

तानेव स्तुमहे महेश ! महितां प्रागेव यातान् महीं
यस्मादस्तमिते महात्मनि हहा श्रीकर्णदेवात्मजे ।
स्नात्वा दुस्तरशोकलोकनयनभ्रष्टैर्जलैर्बिभ्रती
शुभ्रं कीर्तिपटं प्रियेण रहिता भूरद्य दृष्टा न यैः ॥

(कर्णामृतप्रपा, श्लोक १०६ तथा १०७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वद्य तथा शैली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्लोक १७७-९६ शङ्कराचार्य के चर्पटपञ्जरिका नामक स्तोत्र से प्रभावित होते हैं यथा—

वित्तं तदखिलमपि परिगलितं,
प्रादुर्भूतं शिरसि च पलितम् ।
तदपि न हृदयं विषयवितृष्णं,
संसेवितुमभिलष्यति कृष्णम् ।।
इयमपि दशनश्रेणी पतिता,
सा च समाप्ता जगदधिपतिता ।
तज्जगदाश्रयमाश्रय देवं,
हृदय ! विरंस्यसि दुःखादेवम् ।
सत्पात्रेषु न दत्तं दानं,
मन्ये तत् तव दौस्थ्यनिदानम् ।
प्रणतः क्वचदपि न स गोविन्दः,
तवयं प्रहरति कालपुलिन्दः ।।

(कर्णामृतप्रपा, श्लोक १७७-७९)

उपर्युक्त छन्दों की तुलना अधोलिखित शङ्कराचार्य की चर्पटपञ्जरिका[४१] के कतिपय श्लोकों से की जा सकती है:—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।।
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जनसंगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ।।

(चर्पटपञ्जरिका, श्लोक ६ तथा १३)

इस प्रकार सोमेश्वरदेव ने इस प्रसंग में २० श्लोकों की रचना की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है जो कि **कर्णामृतप्रपा** के एक महत्वपूर्ण अंग है। इस रचना का दार्शनिक दृष्टिकोण से महत्व तथा इसकी व्यापक उपयोगिता है।

यदि **कीर्तिकौमुदी** सोमेश्वरदेव की महाकाव्य रचना में सफलता प्रदर्शित करती है तो **कर्णामृतप्रपा** प्रमाणित करती है कि कवि का मुक्तकों पर भी महाकाव्यों के समान अधिकार है। यह ध्यान देने योग्य है कि सम्पूर्ण रचना में कवि ने एक ही प्रकार का काव्यात्मक-स्तर निरूपित किया है। **कर्णामृतप्रपा** की अधिकांश पंक्तियाँ सुभाषित काव्य-जगत् में काव्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कवि का शब्द-चयन अत्यन्त सरल तथा प्रभावशाली है। इसके अतिरिक्त कवि का अधिकांश वर्णन धार्मिक भावना से प्रभावित है। **कर्णामृतप्रपा** के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। ग्रन्थारम्भ में कवि अपने मुख में स्थित वेदत्रयी को नमस्कार करता है जो वेदत्रयी तीन कटुजड़ों से निर्मित उस औषधि के समान है जो अपने सदृश मनुष्यों की अज्ञानता को दूर कर रही है :—

विषयरसनिरन्तरानुपान प्रकुपितमोहकफोपगुम्फितात्मा ॥
त्रिकटुकगुटिकामिव त्रिवेदीं वदनगतामहमन्वहं वहामि ॥

(कर्णामृतप्रपा, श्लोक ५)

कवि एक स्थल पर धीर-पुरुष की प्रशंसा करता है :—

कुरुतां विधिर्विरुद्धं तत्कृतमनुमोदतां च पिशुनजनः ।
न मनागपि धीरमनाः कुप्यति तस्मै च तस्मै च ॥

(कर्णामृतप्रपा, श्लोक ७८)

संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र हमें यह उल्लेख प्राप्त होता है कि सरस्वती और लक्ष्मी में वैर रहता है। उसी परम्परा के आधार पर कवि ने भी धनिकों पर विद्या-हीन होने की छींटाकशी की है:—

धत्ते व्याकरणं न कोऽपि कवितां कुत्रापि नार्थत्यसौ,
तर्कं मर्क्कटवन्न कोऽपि निकटीकर्तुं कदाऽपीच्छति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदादुद्विजते जनस्तदपरं नैवाल्पमप्यस्ति मे,
भ्रातर् ! जल्प पणेन केन तदहं वित्तं धनिभ्यो लभे ।।
(वही, श्लोक ९८)

कवि की प्रबल उत्कंठा है कि वह एकान्त में ईश्वर का ध्यान करे । इस सम्बन्ध में उसका कथन इस प्रकार है:—

नगोपान्ते कान्ते क्वचिदपि निकुञ्जे श्रुतिजपै-
रुपेन्द्रध्यानैवा सकलमपि कालं गमयतः ।
हिमाकारं हारि त्रिदशतटिनीवारि पिबतः
कदा कन्दैवृत्तिर्मम शमरतेरीश ! भविता ।।
(वही, श्लोक १५२)

प्रत्येक परिस्थिति में रहकर सोमेश्वरदेव दामोदर के चरणों की उपासना करना चाहते हैं:—

स्वयं श्रीरायातु प्रकृतिचपला यातु यदि वा,
शिवाः कश्चिद् वाचो वदतु यदि वा वक्तु विरसाः ।
तथाऽप्येते भ्रातर् न खलु विलसामो न च वयं,
विषीदामो दामोदरचरणचर्यासु रसिकाः ।।
(वही, श्लोक १५९)

अज्ञानी को कवि परामर्श देता है:—

चित्तं दमय मा कूर्च्चं, वृत्तं संस्कुरु मा वपुः ।
गीतां शृणु च मा गीतं, पुरुषं पश्य मा स्त्रियम् ।।
(वही, श्लोक १६४)

अंत में कवि जगत्पिता से प्रार्थना करता है कि वह सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पावे:—

त्वमपि न तथा तात ! ध्यातः प्रमादितया मया
फलमभिमतं निःशङ्कस्त्वां यथाऽहमिहार्थये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदपि करुणात्मानं मत्वा भवन्तमुपाश्रित-
स्तदवतु जवान्मामेतस्माद् भवाभिभवाद् भवान् ॥
(वही, श्लोक २१६)

प्रस्तुत सुभाषितावली के कतिपय अंश वैराग्यशतक तथा नीतिशतक से प्रभावित हैं। हमारे कवि के लिये यह गौरव की बात है कि वह प्रभाव अक्षरंस: नहीं है अपितु उस प्रभाव का तात्पर्य रचनाशैली तथा वर्ण्य-विषय से है। यह स्वाभाविक है कि सोमेश्वरदेव सदृश परवर्ती कवि ने अपने पूर्ववर्ती भर्तृहरि जैसे महाकवि से प्रेरणा प्राप्त की है।

प्रशस्तियाँ :

जूनागढ़ में प्राप्त रुद्रदामन् का शिलालेख (१५०ई०) प्रारम्भिक शिलालेखों में गिना जाता है। जूनागढ़ अभिलेख के अतिरिक्त शिला लेख के रूप में महत्वपूर्ण प्रशस्तियाँ सर्वप्रथम हमें गुप्तकाल में प्राप्त होती हैं। प्रयाग - स्तम्भ पर उत्कीर्ण हरिषेण की समुद्रगुप्त - प्रशस्ति (३७५-३९०), स्कन्दगुप्त का गिरनार शिलालेख (४५६ई०) तथा वत्सभट्टि की कवि - प्रतिभा की अमर यादगार मन्दौर-प्रशस्ति है, जो कि कुमारपाल के राज्यकाल (पांचवी शताब्दी) में मालव-सवत् ५२९ ई० में उत्कीर्ण हुई थी। इस प्रशस्ति में मन्दसौर के रेशम बुनने वालों द्वारा मालव-संवत् ४९३ (४३७ई०) में एक सूर्य- मन्दिर के निर्माण का वृतान्त दिया गया है, जिसका पुनरुद्धार मालव संवत् ५२९ (४७३ई०) में हुआ था। इस प्रशस्ति का वर्षा-वर्णन काव्यात्मक एवं आकर्षक है। प्राय: इन प्रशस्तियों का सृजन राजाओं तथा मंत्रियों के संरक्षण में होता था। हिन्दू-काल के पश्चात् भी प्रशति-रचना की परम्परा अबाध-गति से चलती रही। विशेष रूप से कीर्तिस्तम्भों की रचना किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित है। इसके अतिरिक्त राजस्थान तथा गुजरात के जैनों में ग्रन्थ-प्रशस्ति की परम्परा प्राप्त होती है। ग्रन्थ के अन्त में लिखी गई प्रशस्ति ग्रन्थ-प्रशस्ति के नाम से जानी जाती है। जैन कवियों ने अपने ग्रन्थों के अन्त में विस्तृत प्रशस्तियां प्रदान की हैं। उन प्रशस्तियों में कवि अपना, अपने गुरू तथा गच्छ का विवेचन प्रस्तुत करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त कवियों ने प्रशस्ति में उस व्यक्ति के सम्बन्ध में उल्लेख किया है, जिसके संरक्षण में पुस्तक की अन्य प्रतियाँ तैयार की गई हैं तथा उस व्यक्ति सम्बन्ध में भी उल्लेख मिलता है, जिसने पुस्तकें क्रय कर निर्धन जैन सन्यासियों में वितरित करायी । इस प्रकार की अनेक प्रशस्तियां, पीटर्सन तथा भण्डारकर सदृश विद्वानों की रिपोर्टों में प्रकाशित हुई है । यही नहीं, जेसलमेर तथा पाटन के जैन भण्डारों एवं जैनपुस्तक-प्रशस्तिसंग्रह में इस प्रकार की प्रशस्तियां पर्याप्त रूप में संकलित हैं। ये प्रशस्तियां कट्टर तथा उच्चमध्यवर्गीय जैन परिवारों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करती हैं ।

स्वरूप की दृष्टि से प्रशस्ति सामान्य ही होती है । मंगलचरण के अनन्तर दानी अथवा स्मारक के निर्माण करवाने वाले का वर्णन किया जाता है । जब दानी व्यक्ति या स्मारक के निर्माता शासक दोनों एक ही नहीं होते हैं तो शासक के सम्बन्ध में अलग से वर्णन किया जाता है । प्रशस्ति के स्मारक का निर्माता चाहे सामान्य व्यक्ति हो अथवा राजा हो, वंश-परिचय अवश्य ही प्रस्तुत किया जाता है । इसके अनन्तर काव्यात्मक शैली में प्रशस्ति का उद्देश्य सूचित किया जाता है । पुनः प्रशस्ति में शिल्पकार, प्रशस्ति-रचयिता कवि, स्थापना कराने वाले पुरोहित, ताम्रपत्र अथवा पत्थर पर उत्कीर्ण करने वाले उत्कीर्ण कर्त्ता तथा उस पर उत्कीर्ण होने के पूर्व लिखने वाले लिपिक का उल्लेख प्राप्त होता है । स्थान के अनुसार प्रशस्ति- रचना में वैभिन्नय होता है । मन्दिर, मूर्ति, जनसामान्य, भवन, ताम्रपत्र तथा ग्रन्थ की प्रशस्ति में भिन्नता होती हैं । प्रशस्ति का महत्वपूर्ण भाग वंश-परिचय, वीरता अथवा धार्मिक

कार्यों का वर्णन होता है कतिपय प्रशस्तियों में अत्यल्प श्लोक होते हैं जब कि कतिपय प्रशस्तियों में शताधिक श्लोक पाये जाते हैं । संस्कृत-साहित्य में प्रशस्तियाँ गद्य पद्य तथा यत्र-तत्र उभय रुपों में उपलब्ध होती हैं । महाकवि सोमेश्वर ने भी उत्कृष्ट प्रशस्तियों की रचना की है जिनका संस्कृत-प्रशस्ति साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । प्रसंगतः अब हम यहाँ पर महाकवि सोमेश्वरदेव की प्रशस्तियों का विवेचन करेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१- आबू-प्रशस्ति

सोमेश्वरदेव रचित आबू प्रशस्ति ४४ आबू पर्वत के ऊपर मन्दिर-निर्माण की स्मृति में लिखी गई है, जिसमें विभिन्न छन्दों में ७४ श्लोक रचे गये हैं। प्रथम दो श्लोकों में देवी सरस्वती तथा आबू-मन्दिर के प्रधान नेमिनाथ की प्रशसा की गई है तथा तृतीय श्लोक में अनहिलवाड़ का संक्षिप्त-परिचय प्रस्तुत किया गया है। तदनन्तर निर्माणकर्त्ता के पूर्वजों, भाइयों तथा बहिनों के प्रति कतिपय प्रशंसायुक्त वाक्य कहे गये हैं (श्लोक ४-२४)। २५ से २१ श्लोकों में सोमेश्वर चलुक्यवंश के शाखान्तर से उत्पन्न बघेलवंशीय अरणोराज तथा उसके पुत्र एवं प्रपौत्र लवणप्रसाद तथा वीरधवल का उल्लेख करते हैं। इसके पश्चात् आबू वर्णन एवं वहाँ पर शासन करने वाले परमार राजाओं की वंशावली जिनमें नृपति वशिष्ठ की पौराणिक उत्पत्ति यज्ञ - कुण्ड से बतलाते हुये सोम सिंह तक का वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन शासक सोमसिंह तथा उसका उत्तराधिकारी कृष्णराज था (३०-४२)। पुनः वस्तुपाल के परिवार के सदस्य जिनमें, उसकी धर्मपत्नी ललितादेवी तथा पुत्र जयन्तसिंह, भ्राता तेजपाल तथा उसकी पत्नी अनुपमा एवं बड़े भाई मल्लदेव तथा उनकी पत्नी एवं पुत्र का उल्लेख प्राप्त होता है (श्लोक ४३-५८)। इसके अनन्तर कवि मन्दिर के निर्माता तेजपाल तथा उसके परिवार के हाथियों पर चढ़े हुये दश सदस्यों को जो कि दश दिक्पालों के समान प्रतीत होते हैं जिन की वन्दना के लिए आते हुए चित्रित किये गये हैं (श्लोक ५९-६५) श्लोक ६६ से ६८ तक में वस्तुपाल के उत्कृष्ट कार्यों की अतिशयोक्ति पू[र्ण] प्रशंसा की गई है।

नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों का वर्णन (६९-७१) श्लोकों में होता है, जिन आचार्य विजयसेन सूरि ने ही मन्दिर की स्थापना करवाई थी। श्लोक ७[२] में मन्दिर तथा मन्दिर निर्माण कर्त्ता के प्रति मांगलिक वचन कहे गये तथा श्लोक ७३ में कवि स्वयं को प्रशस्ति का रचयिता बतलाता है। अन्[तिम] श्लोक में वस्तुपाल के परिवार की रक्षा के लिये नेमिनाथ तथा देवी अम्बि[का] की वन्दना की गई है। दो सरल गद्य वाक्यों में प्रशस्ति के उत्कीर्ण कर्ता[ओं] तथा मन्दिराभिषेक की तिथि अङ्कित की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरनार शिलालेख में गद्य भाग

वस्तुपाल के गिरनार शिलालेखों में छः शिलालेख स्वतंत्र प्रशस्ति के रूप में आ सकते हैं। इन छः शिलालेखों का गद्य भाग एक ही प्रकार का है, जिससे प्रतीत होता है कि गद्यभाग का कोई एक ही रचयिता था, जो दुर्भाग्यवश मालूम नहीं है। यह गद्य भाग गुजरात के मध्यकालीन हिन्दू-इतिहास को जानने के लिए उपादेय श्रोत हैं।

२- गिरनार के छः शिलालेखों में सोमेश्वर की दो रचनायें

गद्य-भाग के अतिरिक्त शिलालेखों में कतिपय श्लोक निर्माण-कर्ता के स्तुति-पाठ के रूप में कहे गये हैं। प्रत्येक शिलालेख कवि की स्वतंत्र रचना है। छः में से दो शिलालेख कविवर सोमेश्वर की रचनाय हैं। सोमेश्वरदेव के प्रथम शिलालेख में ९ तथा दूसरे शिलालेख में १६ श्लोक हैं। सभी श्लोकों में परम्परा से प्राप्त स्तुति-पाठ ही किया गया है। अन्य शिलालेखों की अपेक्षा सोमेश्वरदेव की रचना अधिक मर्मस्पर्शी है। वस्तुपाल के काव्य-कौशल तथा प्रशासकीय क्षमता के सम्बन्ध में कवि इस प्रकार कहता है :—

विरचयतिवस्तुपालश्चुलुक्यसचिवेषु कविषु च प्रवरः।
न कदाचिदर्थहरणं श्रीकरणे काव्यकरणे वा ॥

(आबूप्रशस्ति, श्लोक १४)

तेजपाल के सम्बन्ध में भी कवि इस प्रकार कहता है :—

तेजपालः सकलप्रजोपजीव्यस्य वस्तुपालस्य।
सविधे विभाति सफलः सरोवरस्येव सहकारः ॥

(वही, श्लोक ६५)

वस्तुपाल की कीर्ति सर्वत्र किस प्रकार फैल गयी है :—

उदारः शूरो वा रुचिरवचनो वाऽस्ति न हि वा
भवत्तुल्यः कोऽपि क्वचिदिति चुलुक्येन्द्र सचिव।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्भूतभ्रान्तिर्नियतमवगन्तुं तव यशस्-

ततिर्गेहे गेहे पुरि पुरि च याता दिशि दिशि ॥

(सोमेश्वर का द्वितीय गिरनार शिलालेख श्लोक ४)

३-वैद्यनाथप्रशस्ति

सोमेश्वरदेव ने आधुनिक बड़ौदा के पास स्थित दभोई (दर्भावती) की ऐतिहासिक वैद्यनाथ-प्रशस्ति लिखकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। वैद्यनाथप्रशस्ति नृपति वीसलदेव द्वारा वैद्यनाथमहादेव अथवा शिव मन्दिर के जीर्णोद्धार करने के उपलक्ष में लिखायी गयी थी। तभी से वैद्यनाथ महादेव को दैविक वैद्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। प्रशस्ति वि० सं० १३११ (१२५५ ई०) में लिखी गई थी तथा इसमें ११६ श्लोक हैं। वस्तुपाल तथा तेजपाल इस प्रशस्ति रचना के कुछ वर्ष पूर्व ही मर चुके थे। दुर्भाग्यवश प्रशस्ति के दो पत्थर अत्यधिक भग्न हो गये हैं। एक शिलाखण्ड की लिखावट प्रायः अस्पष्ट ही है और दूसरे शिलाखण्ड में ऐसी कोई भी पंक्ति नहीं है, जो पूर्ण हो, अतएव एक भी पूर्ण श्लोक नहीं प्राप्त हो सका है। छठे श्लोक में प्राप्त पंक्ति और अक्षरों के आधार पर कीर्तिकौमुदी (सर्ग २/२) के श्लोक से तुलना की जा सकती है। दोनों श्लोक एक ही हैं। श्लोक १४ भी कीर्तिकौमुदी (सर्ग २/६९) में प्राप्त होता है :—

आवर्जिता जितारातेर्गुणैर्बाणरिपोरिव।

गूर्जरेश्वरराज्यश्रीर्यस्य जज्ञे स्वयंवरा॥

(कीर्तिमौमुदी, २/२)

जघ्ने येनासिदण्डेन, गाढं नड्डूलनायकः।

निर्घातेनैव तेनामी, कम्पन्तेऽद्यापि भूभृतः॥

(वही, २/६९)

पचीसवें श्लोक के प्राप्तांश सोमेश्वर रचित आबू प्रशस्ति के श्लोक २७ से एक रूपता रखते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुतस्तस्मादासीद्दशरथ ककुत्स्थ प्रतिकृतिः

प्रतिक्ष्मापालानां कवलितबलो वीरधवलः ।

यशः पूरे यस्य प्रसरति रतिक्लान्तमनसा—

मसाध्वीनां मग्नाभिसरणकलायां कुशलता ।।

(आबूप्रशस्ति, श्लोक२७)

प्रशस्ति के प्राप्त भागों से यह ज्ञात होता है कि चालुक्य तथा वघेल वंशीय राजाओं को कई युद्ध करने पड़े । जिनमें वीसलदेव का विशिष्ट रूप से उल्लेख है । श्लोक ४५ सूचित करता है कि धारानरेश तथा दक्षिण के शासक वीसलदेव के द्वारा पराजित हुये थे[४७] । वीसलदेव के भवन-निर्माण कार्य का वर्णन श्लोक ८० से प्रारम्भ होता है[४८] । इस प्रसंग में हम एक अथवा अनेक शिव मन्दिरों के निर्माण की चर्चा सुनते हैं (श्लोक ८१-९१ तक) । उसने मूलस्थान[४९] नामक सूर्य मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया (श्लोक ९२) । एक अन्य मन्दिर का निर्माण करवाया जिसकी चोटी कैलाश के समान ऊँची थी (श्लोक ९३), तथा किसी अन्य मन्दिर के चारों ओर प्राकार निर्मित करवाया । श्लोक १०२ से ज्ञात होता है कि वीसलदेव के समय वेद पारंगत ब्राह्मण प्रतिदिन सस्वर वेद-पाठ करते थे । वेद-ध्वनि सर्वत्र सुनाई पड़ती थी । उन ब्राह्मणों को यागादि के समय बहुमूल्य दक्षिणा प्रदान की जाती थी:—

अश्रांतक्रतुदक्षिणाप्रभुक्षितब्रह्म प्रयुक्तः पुनः—

र्वेदानां ध्वनिरध्वनिश्रवणयोरस्यैव देशोऽवि-।। १०२ ।।

रचना के अन्त में कवि, अधिकारी, शिल्पकार, उत्कीर्णकर्त्ता तथा अपने आपका संक्षिप्त-परिचय प्रस्तुत करता है:—

प्रशस्तिमेता (म)..................

सम्भूतभूपालपुरोहितेन्द्रः ।

चकार सोमेश्वरदेव नामा

यामार्धं निष्पन्न महाप्रबन्धः ।। ११४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रियामंदस्य तनयः श्रीनंदिपुरगो..........(त्र)..........जः

प्रह्लादनोऽलिख......(त्तां च) प्रशस्तिं द्विजपुङ्गवः ।। ११५ ।।

सूत्र सज्जन पुत्रेण पद्मसिंहेन शिल्पिना ।

सूत्रधार धुरीणेन प्रशस्तिरुदकीर्यत ।। ११६ ।।

सत्य तो यह है कि इस प्रशस्ति के दो श्लोक जल्हण रचित सूक्तिमुक्तावली में प्राप्त होते हैं[५०] जो कि कवि का काव्य क्षेत्र में प्रसिद्धि का प्रमाण हैं। यदि हमें इस प्रशस्ति के प्राचीन हस्तलेख की प्रतिकृति मिल जाती जैसे कि उदयप्रभ की सुकृतकीर्तिकल्लोलनी तथा जयसिंह सुरि की वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति है तो साहित्य क्षेत्र में कुछ नवीन उपलब्धियों की सम्भावना हो सकती है।

वीरनारायणप्रासाद प्रशस्ति

कवि ने एक अन्य प्रशस्ति की भी रचना की थी जो कि आजकल उपलब्ध नहीं हो रही है। वह प्रशस्ति वीरनारायणप्रासाद की थी। इस प्रासाद को नृपति वीरधवल ने धवलक्क में बनवाया था। इस प्रशस्ति में १०८ श्लोक[५१] थे। नाम से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह मन्दिर नारायण अथवा विष्णु का था। वर्तमान धोलका में इस मन्दिर अथवा वस्तुपाल के द्वारा बनवाये गये किसी भी अन्य मन्दिर के अवशेष सम्प्रति शेष नहीं है।

सोमेश्वरदेव द्वारा विभिन्न विषयों पर लिखी गई रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक उदार प्रकृति के कवि थे। शैव तथा शाक्त होने के साथ ही साथ वह वेदों के भी पारंगत थे। उन्होंने काव्य तथा राम की प्रशंसा में स्तोत्र एवं नाटक ही नहीं अपितु जैन मन्दिरों के लिये प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं।

प्रकीर्ण श्लोक

महाकवि सोमेश्वरदेव ने महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषितसंग्रह तथा प्रशस्तियों के अतिरिक्त अनेक स्फुट श्लोकों की रचना की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये श्लोक प्रायः प्रबन्धों में उपलब्ध होते हैं । प्रबन्धों में प्राप्त कथाओं तथा उपाख्यानों से यह सिद्ध होता है कि गुर्जर कवि सोमेश्वरदेव का वस्तुपाल से घनिष्ट सम्बन्ध था । इन उपाख्यानों का मूल्याङ्कन उनके स्वरूप मात्र से नहीं करना चाहिए, अपितु आलोचनात्मक परीक्षण से यह ज्ञात होता है कि उनका ऐतिहासिक महत्व है । उल्लेखनीय है कि प्रबन्धों की इन्हीं कथाओं में सोमेश्वरदेव रचित आशु-श्लोक भी प्राप्त होते हैं । इन श्लोकों को कवि ने विभिन्न अवसरों पर तुरन्त ही रच कर सुनाया है । सोमेश्वरदेव के पद्यों से सम्बन्धित उपाख्यानों के कतिपय उदाहरण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

एक बार वर्षाकाल में वस्तुपाल तथा सोमेश्वरदेव स्तम्भतीर्थ नामक बन्दरगाह पर उपस्थित थे। बन्दरगाह पर उस समय किसी देश से आयात अश्व जलयानों से उतारे जा रहे थे[५२] । वस्तुपाल ने उस समय कवि सोमेश्वरदेव से अधोलिखित समस्या की पूर्ति करने के लिए कहा :—

प्रावट्काले पयोराशिः कथं गर्जितवर्जितः ।

अर्थात् वर्षाकाल में समुद्र क्यों गर्जन नहीं कर रहा है ? कवि सोमेश्वरदेव ने अपनी प्रतिभा से तुरन्त ही समस्यापूर्ति करके वस्तुपाल को सुना दिया :—

अंतःसुप्तजगन्नाथनिद्राभङ्ग भयादिव ।।

अर्थात् समुद्र के अन्दर भगवान् विष्णु शयन कर रहे हैं । उनकी निद्रा-भङ्ग के भय से समुद्र वर्षाकाल होने पर भी गर्जन नहीं कर रहा है ।

मंत्री वस्तुपाल ने समस्यापूर्ति के उपलक्ष में कवि को तुरन्त ही १६ अश्व प्रदान किये[५१] ।

एक अवसर पर कवि समुदाय एकत्रित था । वहीं वस्तुपाल तथा तेजपाल भी उपस्थित थे । कवियों को एक समस्या इस प्रकार से दी गई :—

काकः किं वा क्रमेलकः ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि सोमेश्वरदेव ने तुरन्त ही समस्या पूर्ति इस प्रकार से कर दी कि अप्रासंगिक शब्दों से युक्त वह समस्या सार्थक बन गयी। समस्या की पूर्ति इस प्रकार से हुई :—

येनागच्छन्ममाख्यातो येनानीतश्च मे पतिः।
प्रथमः सखि कः पूज्यः काकः किं वा क्रमेलकः ॥

अर्थात् काक ने मेरे पति के आने की सूचना दी है तथा ऊँट स्वयं मेरे पति को ले आया है। अतः हे सखि ! यह बताओ कि काक और ऊँट में कौन सर्वप्रथम पूजनीय है ?

अत्यधिक प्रसन्न होकर वस्तुपाल ने सोमेश्वर को १६ सहस्र द्रम[५४] प्रदान किये[५५]।

एक बार सोमेश्वरदेव वस्तुपाल के राजभवन में आये। वस्तुपाल ने बैठने के लिये विष्टर प्रदान किया परन्तु कवि सोमेश्वरदेव उस पर बैठे नहीं। जब सोमेश्वरदेव से विष्टर पर न बैठने का कारण पूछा गया तो कवि ने उत्तर दिया कि वस्तुपाल के द्वारा अन्न का दान देने, जल पिलाने की व्यवस्था करने तथा धर्मस्थानों को निर्मित कराने से पृथ्वी लोक एवं यश के द्वारा आकाश लोक रुद्ध हो गया है। इस प्रकार बैठने के लिए कोई भी स्थान रिक्त नहीं है अतः कहां बैठा जाय:—

अन्नदानैः पयः पानैर्धर्मस्थानैश्च भूतलम्।
यशसा वस्तुपालेन रुद्धमाकाशमण्डलम् ॥

उपर्युक्त श्लोक सुनकर मंत्री ने कवि सोमेश्वरदेव को ९ हजार द्रम उपहार स्वरूप भेंट किये[५६]।

शत्रुञ्जय की एक संघयात्रा में जब कि मत्री जिन भगवान् की अर्चना कर रहे थे। वस्तुपाल को देखने के लिए बहुत बड़ी संख्या में अर्चक दौड़ पड़े। जन समुदाय को देखकर सोमेश्वरदेव ने अधोलिखित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्लोक तुरन्त ही रचकर सुनाया :—

इच्छासिद्धिसमुन्नते सुरगणे कल्पद्रुमैः स्थीयते,
पाताले पवमानभोजनजने कष्टं प्रणष्टो बलिः ।
नीरागानगमन्मुनीन् सुरभयश्चिन्तामणिः क्वाप्यगात्,
तस्मादर्थिकदर्थनां विषहतां श्रीवस्तुपालः क्षितौ ।

अर्थात् देगवण स्वयं इच्छा की सिद्धि में समर्थ होने पर भी कल्पद्रुम वहाँ स्थित है । दानी बलि सर्पों के मध्य पाताल में कष्ट प्राप्त कर नष्ट हो रहे हैं । रागरहित मुनियों के पास सुरभियाँ चली गई तथा चिन्तामणि भी कहीं चली गयी । सभी के चले जाने पर पृथ्वीतल पर केवल वस्तुपाल ही ऐसे हैं जो याचकों के कष्ट को हर रहे हैं ।

प्रबन्ध सूचित करते हैं कि कवि को इस छन्द के लिये अपार सम्पत्ति प्रदान की गई[५७] ।

जब वस्तुपाल शङ्ख को युद्ध में पराजित कर अपने नगर वापस आये, उस समय सोमेश्वरदेव ने अधोलिखित श्लोक पढ़ते हुये मन्त्री का स्वागत किया:—

श्रीवस्तुपाल प्रतिपक्षकाल त्वया प्रपेदे पुरुषोत्तमत्वम् ।
तीरेऽपि वार्द्धरकृतेऽपि मात्स्ये दूरं पराजीयत येन शङ्खः[५८] ॥

अर्थात् विरोधियों के काल श्रीवस्तुपाल ! तुम्ही पुरुषोत्तम हो क्योंकि तुमने समुद्र के किनारे मत्स्य का रूप न धारण करके भी राजा शङ्ख को पराजित कर दिया । भगवान् ने मत्स्य रूप धारण करके शङ्खासुर को मारा था अतः वह मत्स्योत्तम हुये और तुमने पुरुष वेष में शङ्ख को मारा अतः तुम्ही वास्तविक पुरुषोत्तम हो ।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त प्रबन्धों में अनेक श्लोकों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनकी आशु-रचना कवि ने विभिन्न अवसरों पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की थी । मंत्री तेजपाल ने गोद्रह अथवा आधुनिक गोदहरा के राजा धुधुल पर विजय प्राप्त की[५९] । विजय के अनन्तर मंत्री तेजपाल अपने नगर को वापस आये । इस विजय का वर्णन कवि ने मनोरम शब्दो में किया है । कवि ने ललितासर का बहुत ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है । इस झील को वस्तुपाल ने पालिताणा नामक स्थान में निर्मित करवाया था। वस्तुपाल की पत्नी ललिता के निधन के अनन्तर यह झील उनकी पत्नी के नाम से ही सम्बोधित की जाने लगी[६०] । इसके अतिरिक्त वस्तुपाल की शत्रुञ्जय-पर्वत के लिये की गई सघ-यात्रा का कवि द्वारा सरस छन्दों में वर्णन किया गया है[६१] । वीरधवल ने अपनी विजय के उपलक्ष में एक दरबार किया था। इस दरबार की प्रशसा कवि ने अनेक छन्दों में की है[६२] । इस प्रकार सोमेश्वरदेव ने प्रवन्धों के अपार सागर में अपनी छन्द-रत्नराशि को विखेरा है जो अद्यावधि प्रकाशमान है ।

देवगिरि के नृपति कृष्ण (१२४७-१२६० ई०) के हाथियों के संरक्षक जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में कवि रचित चार श्लोक प्राप्त होते हैं[६३] । सम्प्रति हम जानते हैं कि सोमेश्वरदेव नाम के एक से अधिक कवि[६४] हुए हैं । अस्तु, कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि श्लोकों के रचयिता हमारे सोमेश्वरदेव ही हैं। परन्तु यह सत्य है कि गुर्जर प्रदेश के अन्य कवियों द्वारा रचित श्लोकों का उल्लेख सूक्तिमुक्तावली में प्राप्त होता है । सूक्तिमुक्तावली में गुर्जरप्रदेशीय कवि हेमचन्द्र, सोमप्रभ[६५] श्रीपाल[६६], वस्तुपाल, वाग्भट्ट[६७], विजयपाल[६८], प्रह्लादन[६९], दुर्लभराज[७०], देवबोधि अथवा देवबोध[७१], कुमुदचन्द्र[७२], अरसी ठक्कुर अथवा अरिसिंह[७३] के श्लोकों के अतिरिक्त अनहिलवाड़ के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह (१०९४-११४३ ई०) के भी दो श्लोकों का उल्लेख प्राप्त होता है । इस प्रकार यह सत्य ही प्रतीत होता है कि **सूक्तिमुक्तावली** के सोमेश्वरदेव कोई अन्य नहीं है अपितु हमारे कवि सोमेश्वरदेव ही है। हमारी सम्भावना और अधिक सुदृढ़ हो जाती है, जब कि हम जानते हैं कि हमारे कवि सोमेश्वर के स्थान पर सोमेश्वरदेव ही लिखना अधिक पसन्द करते थे और सूक्तिमुक्तावली में भी सोमेश्वरदेव नाम का ही उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त **सूक्तिमुक्तावली** में वैद्यनाथप्रशस्ति के दो श्लोकों[७४] का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख प्राप्त होता है। वैद्यनाथ-प्रशस्ति निश्चित रूप से सोमेश्वरदेव की ही रचना है । प्राय: शिलालेखों से संग्रह-ग्रन्थों में पद्य उद्धृत किये गये हैं । उसी परम्परा में वैद्यनाथ-प्रशस्ति के श्लोक सूक्तिमुक्तावली में प्राप्त होते हैं । इस व्यापक प्रचार से सिद्ध होता है कि वैद्यनाथ-प्रशस्ति एक उच्चकोटि की साहित्यिक रचना स्वीकार की जाने लगी थी[७५] । इसके अतिरिक्त १५ वीं शताब्दी के प्राचीन गुजराती फागु वसन्तविलास में कीर्तिकौमुदी का निम्न श्लोक प्राप्त होता है :—

निगदितुं विधिनाऽपि न शक्यते,
सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम् ।
सुरतसंयति यो प्रियपीडिता—
वपि नतिं न गतौ च्युतकञ्चुकौ ।।
(कीर्तिकौमुदी, ७/७९)

इस प्रकार कवि सोमेश्वरदेव के अनेक श्लोक-रत्न संस्कृत साहित्य-सागर में उपलब्ध होते हैं । अन्य ग्रन्थों के द्वारा कवि सोमेश्वरदेव के इन श्लोकों का ग्रहण किया जाना संस्कृत-जगत् के लिए एक महत्व-पूर्ण सूचना है । इससे कवि के काव्य की उत्कृष्टता का मूल्याङ्कन स्वतः हो जाता है ।

कवि की कृतियों का पौर्वापर्य तथा काल-निर्णय

कवि सोमेश्वरदेव की रचनाओं में शिलालेखों के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ में तिथि का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है तथापि ग्रन्थों के अन्त:सक्ष्य से उनका पौर्वापर्य निश्चित किया जाता है ।

सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग में कवि के द्वारा यामार्ध में ही एक काव्य रचने की सूचना प्राप्त होती :—

काव्येन नव्यपदपाकरसास्पदेन,
यामार्धमात्रघटितेन च नाटकेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीभीमभूमिपतिसंसदिसभ्यलोक-

मस्तोक संमदवशंवदमादधे यः ॥

(सुरथोत्सव, १५/४९)

रामशतक के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि रामशतक यामार्ध में ही रचा गया है:—

विश्वम्भरामण्डलमण्डनस्य, श्रीरामभद्रस्य यशःप्रशस्तिम् ।

चकार सोमेश्वरदेवनामा, यामार्द्धनिष्पन्नमहाप्रबन्ध : ॥

(रामशतक, १०१)

अत: सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग में वर्णित यामार्ध में ही रचा जाने वाला काव्य रामशतक ही प्रतीत होता है । इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सुरथोत्सव से पूर्व ही रामशतक की रचना हो चुकी थी । सुरथोत्सव का ही (१५/४९) श्लोक सूचित करता है कि एक नाटक द्वारा भीमदेव द्वितीय के सभासदों को कवि सोमेश्वरदेव ने आह्लादित कर दिया । सोमेश्वरदेव रचित अकेला नाटक उल्लाघराघव ही उपलब्ध है । अतः यह निश्चित है कि सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग में वर्णित नाटक उल्लाघराघव ही है । इस प्रकार यह भी सिद्ध हुआ कि उल्लाघराघव की रचना सुरथोत्सव से पूर्व ही हो चुकी थी । रामशतक तथा उल्लाघराघव के श्लोकों की भाषा में पर्याप्त साम्य है और दोनों ही ग्रन्थों के नायक राम है अतः सुरथोत्सव से पूर्व दो रचनाओं का रचा जाना निश्चित है। भाषा को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि रामशतक और उल्लाघराघव के अनन्तर ही कर्णामृतप्रपा की रचना हुई होगी । राम के समान ही कृष्ण, शिव आदि देवों की भी वन्दना कर्णामृतप्रपा में की गई हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उल्लाघराघव के भारत वाक्य में सोमेश्वरदेव ने कीर्तिकौमुदी का ही उल्लेख किया है:—

राजानो जनयन्तु कीर्त्तिकुमुदैरामोदिनीं मेदिनीं,

....

भूदेवाश्च तदापदामपनुदे वह्नौ वषट् कुर्वताम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वक्त्राम्भोरुहरङ्गभूमिविहरद्वाग्देवतामत्सरं,
श्रीरुत्सृज्य करोतु तेषु च रतिं भक्तेभविभ्राजिनी ।।
(उल्लाघराघव, ८/४३)

यदि यह सत्य है तो **उल्लाघराघव** को **कीर्तिकौमुदी** के बाद की रचना कहा जा सकता है, परन्तु **सुरथोत्सव** के पूर्व ही **कीर्तिकौमुदी** की भी रचना हो चुकी थी ।

सुरथोत्सव महाकाव्य तत्कालीन नृपति भीमदेव द्वितीय के राजनैतिक ह्रास एव अनहिलवाड में पुनः उनकी राज्य-प्राप्ति से सम्बन्धित एक काव्यात्मक रूपक प्रस्तुत करता है । एक शासन पत्र के द्वारा हम जानते है कि १२२४ ई० म जयसिंह ने अनहिलवाड़ की सत्ता को बलात् अपने अधिकार में कर लिया था[७६] । फलतः भीमदेव द्वितीय ने किसी अन्य स्थान पर शरण ली और १२२६ ई० में पुनः सत्ता ग्रहण की[७७] । सत्ता प्राप्ति में लवण प्रसाद तथा वीरधवल का विशिष्ट सहयोग था । **सुरथोत्सव** महाकाव्य भी सुरथ नामक पौराणिक राजा का वर्णन प्रस्तुत करता है जिसकी स्थिति भीमदेव द्वितीय के समान ही थी । यह सम्भव है कि तत्कालीन राजा भीमदेव द्वितीय की पुनः सत्ता प्राप्त की स्मृति में सोमेश्वरदेव ने सुरथोत्सव महाकाव्य की रचना की हो । इस प्रकार सुरथोत्सव की रचना-तिथि १२२७ ई० हो सकती है । भाषा और विषय की दृष्टि से गौड़ी रीति में लिखा गया **सुरथोत्सव** कवि की परिपक्वावस्था की ही रचना प्रतीत होती है और **रामशतक** आदि प्रारम्भिक रचनायें हैं ।

इन कृतियों के अतिरिक्त सोमेश्वरदेव के शिलालेखों में निश्चत रूप से तिथि का उल्लेख है । कवि रचित **आबूप्रशस्ति** विक्रम संवत् १२८७ (१२३१ ई०) में रची गई है । सोमेश्वरदेव ने गिरनार के दोनों शिलालेख विक्रम संवत् १२८८ (१२३२ ई०) में लिखे है । कवि की अंतिम रचना **वैद्यनाथ-प्रशस्ति** विक्रम सवत् १३११ (१२५५ ई०) में लिखी गई है । कवि रचित **वीरनारायणप्रासादप्रशस्ति** आजकल उपलब्ध नहीं है । कवि ने स्फुट श्लोक समय-समय पर लिखे हैं ।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के प्रारम्भ में सुभट तथा हरिहर (कीर्तिकौमुदी १/२४ तथा २५) के काव्य-सौष्ठव पर सोमेश्वर ने प्रकाश डाला है। सुभट छाया नाटक दूतागंद के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध है। हरिहर नैषधीय चरित के रचयिता श्रीहर्ष के वंशज थे। प्रबन्धों में हरिहर के स्फुट श्लोक प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त हरिहर रचित सर्वाङ्ग सम्पन्न काव्य शंखपराभवव्यायोग में भृगुकच्छ के राजा शंख पर वस्तुपाल की विजय का वर्णन है।

2. सुरथोत्सव, १५/४८ से ६६ तक।

3. सुरथोत्सव, सम्पादक पं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, काव्यमाला-सीरीज, ग्रन्थाङ्क ७३, बम्बई, १९०२ ई०।

4. कीर्तिकौमुदी, सम्पादक श्री पुण्यविजय सूरि, भारतीयविद्याभवन, बम्बई, १९६१ ई०।

5. उल्लाघराघव नाटक, सम्पादक, आगम प्रभाकर मुनिपुण्यविजय तथा डा० बी० जे० सान्डेसर, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६१ ई०।

6. तदस्य भगवतः श्रीद्वारकालङ्कारनीलमणेः श्रीकृष्ण देवस्य पुरतः श्रीधर-प्रबोधैकादशीपर्वणि सर्वदिग्गतानां सामाजिकजनानां जनकसुतापतिचरिताभि-नयादेशसम्पादनेन कृतार्थयामि संसारकदर्थितमात्मानम्।
उल्लाघराघव, प्रस्तावना, पृष्ठ २.

मध्यकालीन गुजरात में उत्सवों के अवसर पर संस्कृत नाटकों को अभिनय किया जाता था।

vide B. J. Sandesara's paper 'Gujaratamam Sanskrit Nataka' (Guj) published in **Itihasani kedi** (Padmaja publications, Baroda, 1945).

7. उल्लाघराघव, पृष्ठ १५५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

8. सुरथोत्सव, १५/४९ .

9. रामशतक,/ १०१ .

10. सम्पादक, पद्मश्री जिनविजयमुनि, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, १९६३ ई०

11. जिनविजय जी, प्राचीन जैन लेख संग्रह - नं० ६५, जैन धर्म प्रचारक सभा, भावनगर, १९२१ ई० ।

And Acharya, G.V., Historical Inscriptions of Gujarat No. 206, Bombay, 1933.

12. सम्पादक जिनविजय, प्राचीन जैन लेख संग्रह नं० ३८-१ तथा ४०-३ ।
And Acharya, G·V.,op., cit., No. 207 & 209.
Also Shastri B., and Parab, K.P., Prachin lekhmala Nos. 168 & 170, Bombay, 1903.

13. Epigraphia Indica Vol. I, Calcutta, 1892, Page 20 and Acharya, op. cit., No. 215.

14. राजशेखर, प्रबन्धकोश, सम्पादक,जिनविजयमुनि अहमदाबाद, १९३५, पृष्ठ ५९ ।

15. अनुशीलित ग्रन्थ सूची देखिये ।

16. काव्यादर्श, सम्पादक, आचार्य रामचन्द्र, चौखम्भा,विद्याभवन, १९५८ ई० ।
विस्तृत लक्षण के लिए रुद्रट रचित काव्यालङ्कार पृष्ठ १६, १७, व १८ ।
तथा साहित्यदर्पण ६/३१५-२५ ।
साहित्यदर्पण, श्रीशालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७ ई० ।

17. मार्कण्डेय पुराण के ८१ से ९३ सर्ग सुरथोत्सव महाकाव्य के वर्णन की आधारशिला है ।
मार्कण्डेयपुराण, कलकत्ता,१९०४ ई० ।

18. श्री कण्ठकान्तास्तु सतां सुखाय
नखेन्दुकान्तिच्छुरितो यदाङ्घ्रि प्रः ।
हसन्निवाभातिमहेन्द्रहेति—
मखण्डितोद्दण्डलुलायलोमाम् । (सुरथोत्सव, १/१)

सुरथोत्सव, सम्पादक पं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, काव्यमाला सीरीज, ग्रन्थाङ्क ७३, बम्बई, १९०२ ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

19. सितमरीचिरुचामिव संचयं
हसितराशिमिव त्रिपुरद्रुहः ।
धनपतेर्यशसामिव मण्डलं
समुदयं शरदम्बुमुचामिव ॥
(सुरथोत्सव, ४/१)

20. अर्घाम्भोभिर्वरुणनगरीवासिनां वासरेन्द्रे
पादोष्माणं शमयति वियद्वर्त्मखेदोपनीतम् ।
सर्वर्तूनां व्यवसितिमिति श्रेयसीं वीक्ष्यसाक्षा-
त्सिद्धा मेने विबुधविभुनाभाविनी कार्यसिद्धिः ।
(सुरथोत्सव, ५/५७)

21. अथ क्रीडागारे चिरविरतपारापतरुते
रतान्तक्रान्ताभिर्दयितहृदि सुप्तं युवतिभिः ।
वशे विश्वं कृत्वा रतिसहचरोऽपीश्वरशम-
प्रमाथप्रख्यातं समहरत पौष्पं प्रहरणम् ॥ (वही, ६/११३)

22. ततस्तद्दलमालोक्य त्रैलोक्यमपि चुक्षुभे ।
युयुत्सयोत्सुका जज्ञे महेशमहिषी पुनः ॥
(वही १०/१,

23. वही, ११/३५
24. वही, १२/१
25. कीर्तिकौमुदी, १/४४ से ४७ तक ।
कीर्तिकौमुदी, सम्पादक श्री पुण्य विजयसूरि, भारतीय विद्याभवन, बम्बई १९६१ ई० ।
26. कीर्तिकौमुदी, १/४८ से ८१ तक ।
27. वही, २/६७ से ७७ तक ।
28. वही, २/७६ तथा ७७ ।
29. वही, २/८३ से ८६ तक
30. वही २/८७ से ११३ तक ।
31. वही, ३/१ से ५० तक ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

32. कीर्तिकौमुदी, ६/ श्लोक ४९ से ५६ तक ।

33. कीर्तिकौमुदी, ९/३१ से ३६ तक ।

34. द्वित्राणि तत्रैव दिनानि नीत्वा, कीत्वाऽर्थदानैः सुकृतं यशश्च ।
कथञ्चिदापृच्छ्य तमीशमाद्य, माद्यन्नसौ रैवतकं जगाम ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/३७)

महामात्य वस्तुपाल की पर्वत पर दो या तीन दिन रुकने की घटना महत्वपूर्ण है क्योंकि आजकल जैन तीर्थयात्री पर्वत पर रात्रि में रुकते ही नहीं हैं । सुकृतसंकीर्तन सर्ग ६, ,श्लोक ४३ सूचित करता है कि वस्तुपाल पर्वत पर ८ दिन रुके, इसकी पुष्टि वस्तुपाल चरित से भी हो जाती है ।

Temple, R. C., Indian Antiquary, Vol. XXXI, Bombay, 1902, P. 489 N.
यह निश्चित है कि उन दिनों तीर्थयात्री पर्वतों पर कई दिन व्यतीत करते थे ।

35. Munshi, K. M., Gujarat and its literature, page 112., Bombay, 1935.

36. का माता ? श्रवसोर्वचांसि कुरुते दासीजनोक्तानि या,
कस्तातः ? प्रमदाप्रत'रितमत्तिर्जानाति कृत्यं न यः ।
कश्चायं भरतः ? श्रिया ह्यविधिना यो रज्यते, दुर्णय
व्याषेधर्थमधिज्यधन्विनि मयि श्रीरामभृत्ये स्थिते ।।
(उल्लाघराघव, ३/२३)

उल्लाघराघव, सम्पादक आगमप्रभाकर मुनि पुण्यविजय तथा डा० बी० जे० साडेसर, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६१.

37, यः कर्माणि च षड् गुणांश्च तनुते तद्भूर्भुवः स्वस्त्रयं,
कीर्तिर्यस्य वरास्यनिर्मलरुचिर्नो जातुचिन्मुञ्चति ।
शस्त्राविष्कृतिरध्वरे च युधि च श्लाघ्योज्जिहीते यतः,
सूत्रं यस्य हृदि स्फुरत्यविरतंत्रा ब्राह्मं च राज्यस्य च ।।
अरुन्धती व कान्ताऽस्य पत्युराज्ञामरुन्धती ।
अभूदभिधया लक्ष्मी : साक्षाल्लमीरिव क्षितौ ।
(उल्लाघराघव, प्रशस्ति श्लोक २ तथा ३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

38 डा० देवदत्त शुक्ल, मधुसूदन विरचित आनन्द-मन्दाकिनी-अध्ययन और अनुवाद, लखनऊ, १९६६ ई०, पृष्ठ २।

39 Ramsatakam, Edited by Muni Punyavijaya and Bhogi Lal J. Sandesar, Oriental Institute, Baroda, 1965, P. 1.

40 The **Jinasataka** of Jambu Guru (Published in the Kavyamala, Vol. VII) and **Narayanasataka** of Vidyakara (G. O. S. No. 71), Jain and Vaisnava humns respectively, are also in 100 Sragdhara meters and appear to have continued the same literary tradition. The date of **Jinasataka** is uncertain, though it is definitely later than the **Ramsataka**; the author of the **Narayanasataka** lived in the 16th Century A. D. Ibid, p. VIII.

41 It is not possible to say, whether this commentator is identical with Ekanath, who has written commentries on the Kiratarjuniya and Shishupalvadh.

Krishnamachari, M., **Classical Sanskrit Literatnre.**, Madras, 1937, Para 53&56.

42 इति श्रीठक्कुरसोमेश्वरदेव विरचता **कर्णमृतप्रपा** सुभाषितावली संपूर्ण कर्णामृतप्रपा सम्पादक पद्म श्रीजिनविजयमुनि, राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६३ ई०।

43 चर्पटपञ्जरिका, शङ्कराचार्य, स्तोत्ररत्नावली, गीताप्रेस गोरखपुर संवत् २०१२।

44 Acharya G, V., **Historical Inscriptions of Gujarat,** No. 206. Vol, I, Bombay, 1933.

तथा

सम्पादक जिनविजय जी, प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ नं० ६५ जैनधर्म प्रचारक सभा, भावनगर, १९२१ई०।

45 Acharya, G. V., op cit. No. 207 and 209.

and

Sri Jin Vijaymuni, op. cit, No. 38-1 and 40-3.

also

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Shastri B., and Parab K. P. Prachin Lekhmala Nos. 168& 170, Bombay 1903.

46 Burgess, Jas., Epigraphia Indica, Vol. I. Bombay, 1892, P. 20.

and

Acharya, G. V. op. cit, No. 215.

47 धारापतिश्दक्षिण......................

......................युगप.........(त्स)......मेत्रौ ।

धीरस्तयोरेव समान तत्र..............,

निका..............................धश्चकार ॥

श्लोक-४५

48 श्रीमूलराजकुलजेषुमृगाङ्कमौलि-

भक्तेषु भूपतिषु दिवं गतेषु ।

यस्ये...सम्प्रति समं...तिपन्नवित्ते-

श्चिन्ते......वेश्यभिर....................॥ ८० ॥

49 सौराष्ट्र-स्थित 'धान' में निर्मित मन्दिर हो सकता है । मन्दिर के शानदार भग्नावशेष आज भी प्राप्त हैं। बालचन्द्र की उपदेश कन्दली टीका में 'धान' के अतिरिक्त स्थान शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

50 सिन्दूर सीमन्तात्०तथा यद्येतत्क्षय वह्नि० । प्रस्तर पर उत्कीर्ण प्रशस्ति की लिपि अत्यन्त ही भग्न है अतएव इन दो श्लोकों का अन्वेषण प्रशिस्त में नहीं हो पाया है ।

51 राजशेखर रचित प्रबन्धकोश पृष्ठ ५९, सम्पादक जिनविजय मुनि, अहमदाबाद, १९३५ ई० ।

52 It is well known that high breed horses were imported in India from countries like Arabia.

Budhiprakasihka, Vol. XC, pp. 195 f.

53 राजशेखर, प्रबन्धकोश, पृष्ठ १२१, अहमदाबाद, १९३५.
तथा वस्तुपालचरित सर्ग ७, पृष्ठ ३७७-८४, सम्पादक मुनिकीर्ति विजय, अहमदाबाद, १९४१ ई० ।

54 द्रम एक पारसी सिक्का था, जो तत्कालीन गुजरप्रदेश में भी प्रचलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। उसी आधार पर घोड़ों का क्रय-विक्रय किया जाता था।

55. राजशेखर प्रबन्धकोश, पृष्ठ १२१।
तथा वस्तुपालचरित सर्ग ७, पृष्ठ ३७७-८४।

56. मेरुतुंग, प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ १०४, सम्पादक मुनि जिनविजय, अहमदाबाद तथा कलकत्ता, १९३३ ई०। तथा रत्नमन्दिरगणि, उपदेशतरंगिणी पृष्ठ ७६, बनारस, वीर संवत् २४३७।

57. प्रबन्धकोश पृष्ठ ११६, सम्पादक जिन विजयमुनि, अहमदाबाद, १९३५ ई०। तथा रत्नमन्दिरगणि, उपदेश तरंगिणी, पृष्ठ ७४।

58. पुरातन प्रबन्धसंग्रह, पृष्ठ ७४, सम्पादक जिन विजयमुनि, अहमदाबाद तथा कलकत्ता, १९३६ ई०।

59 वही, पृष्ठ ६९ तथा वस्तुपाल चरित सर्ग ३/४२८-३३।

60 वस्तुपाल चरित ६/५१९ उपदेश तरंगिणी पृष्ठ ७९ तथा प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ १०२, सम्पादक मुनि जिनविजय, अहमदाबाद तथा कलकत्ता १९३३ ई०।

61. जिनहर्ष, वस्तुपाल चरित ६/८३, तथा उपदेश तरंगिणी, पृष्ठ ७५।

62. वस्तुपाल चरित सर्ग ३/४६४-६८, सम्पादक मुनिकीर्तिविजय, अहमदाबाद, १९४१ ई०।

63. इन्द्राभ्यर्थनया०, यथावद्वादनात्, वनभुवि, व चं यस्सरस०।

64. Krishnamachariar M., Classical Sanskrit Literature, Madras. 1937, pp. 1108-9.

65. प्राकृत-ग्रन्थ 'कुमारपालप्रतिबोध' (प्रकाशित, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, नं० १४) तथा 'सिन्दूर प्रकार' आदि ग्रन्थों के रचयिता।

66. सहस्त्रलिङ्ग झील की प्रशस्ति तथा वडनगर के किले की प्रशस्ति के रचयिता, इसके अतिरिक्त सिद्धराज जयसिंह के राजकवि।

67. काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'वाग्भटालङ्कार' के रचयिता।

68. श्रीपाल के पौत्र तथा संस्कृत नाटक 'द्रौपदीस्वयम्वर' के रचयिता।

69. 'पार्थपराक्रमव्यायोग' (प्रकाशित गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज नं० ४) के रचयिता तथा उत्तरी गुजरात में स्थित नगर प्रह्लादनपुर अथवा पालनपुर के संस्थापक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

70. 'सामुद्रिकतिलक' (११६० ई०) के रचयिता तथा राजा कुमारपाल के मंत्री ।

71. The Prabhavakacarita (Ch. 21) says that Devabodha had come to Anhilavad during the reign of Sidhraja and had come in contact with the poet Sripal. He is said to be an Acharya of the Bhagvata Sect. Both Devabodha and Sripala were favourities of Sidharaja, but their mutual relations were anything but friendly.
R. C. Parikh, Kavyanusasana, Intro, Vol. II, Bombay, 1938, pp. 255 ff.

72. राजा सिद्धराज के समकालीन कमुदचन्द्र, दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य थे । श्वेताम्बर आचार्य 'वादीदेवसूरि' के साथ होने वाले उनके विवाद का वर्णन यशस्चन्द्र ने अपने नाटक 'मुद्रिकाकुमुदचन्द्रप्रकरण' में किया है ।

73. अपने आश्रयदाता मन्त्री वस्तुपाल के जीवन चरित्र का काव्यात्मक वर्णनपरक महाकाव्य 'सुकृतसङ्कीर्तन' के रचयिता ।

74. 'सिन्दूरं सीमन्तात्०' तथा यद्येतत्क्षयवह्नि० नामक दो श्लोक दभोई के वैद्यनाथ प्रशस्ति से लिये गये हैं परन्तु शिलालेख की लिपि अस्पष्ट है अतः ये दोनों श्लोक प्रशस्ति में नहीं खोजे जा सके हैं ।

75. Another inscription quoted in the Suktimuktavali is the Somanathaprasasti, evidenty an inscription from Gujarat (सन्ध्याताण्डव० etc). As the verse is not found in any of the extant Inscriptions connected with the famous Somanatha temple, it may belong to some Prasasti of the same shrine, which was repaired more than once.
Sadesar, B. J., Literary circle of Mahamatya Vastupal and its contribution to Sanskrit Literature, Bhartiya Vidya Bhawan, 1953, Page 51.

76. Buhler, G., Indian Antiquary,, Vol. VI, pp. 187 ff.

77. D. K. Shastri, **Gujaratana Madhakalin Itihas** (1st. Ed.) Vol. I, Ahmedabad, 1939, p.359.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीय अध्याय

वस्तु-वर्णन

काव्य में वस्तुवर्णन से काव्य-सौन्दर्य बढ़ जाता है। सम्भवतः इसीलिए प्रसिद्ध आलङ्कारिक दण्डी ने वस्तुवर्णन को आवश्यक समझते हुये सर्गबन्ध महाकाव्य लक्षण में नगर, समुद्र, नदी, सरोवर, पर्वत, वन, ऋतु, विवाह, यात्रा, चन्द्रोदय-सूर्योदय, चन्द्रास्त-सूर्यास्त के वर्णन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है[1]। तदनन्तर उत्तरवर्ती आलङ्कारिकों ने इस परम्परा का निर्वाह करते हुये, उसे उचित सम्मान दिया[2]।

वस्तुवर्णन कवि की प्रतिभा द्वारा किया जाता है। काव्य मीमांसा में राजशेखर द्वारा उद्धृत आपराजित नामक आलङ्कारिक के कथन से इस समस्या पर अप्रत्यक्ष रूप से यत्किञ्चित् प्रकाश पड़ता है। आपराजित के अनुसार-'यस्तु सरदद्रिसागरपुरतुरगरथादि वर्णने यत्नः, कविशक्तिख्यातिफलः' अर्थात् वस्तुवर्णन कवि की शक्ति की प्रसिद्धि है। राजशेखर उपर्युक्त मत से सहमत प्रतीत होते हैं, अर्थात् वस्तुवर्णन के मूल में कवि की शक्ति का विस्तार रहता है। इसके अतिरिक्त राजशेखर प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों को ही शक्ति का कर्तृत्व स्वीकार करते हैं—"शक्तिकर्तृके हि प्रतिभाव्युत्पत्ति-कर्मणी" ४। अतएव वस्तुवर्णन में दोनों का ही यथोचित सहयोग विद्यमान रहता है। वस्तुतः प्रतिभा अथवा व्युत्पत्ति दोनों में से किसी एक के अभाव में सहृदयों को चमत्कृत एवं आकर्षित करने वाली विच्छित्ति एवं सरसता उस वस्तु वर्णन में नहीं आ पाती है। सम्पूर्ण चित्र अपूर्ण सा रहता है तथा हृदय को प्रभावित नहीं कर पाता है। अस्तु, निष्कर्ष रूप में यह कहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा सकता है कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों के मणिकाञ्चन संयोग द्वारा ही वस्तु वर्णन की काव्यात्मकता का आस्वाद किया जा सकता है।

वस्तु-वर्णन महाकाव्य में सरसता, रमणीयता एवं सौन्दर्य का आधान अवश्य करता है, किन्तु अत्यधिक विस्तृत वर्णन प्रकृतरस के प्रतिकूल आलङ्कारिक चमत्कार का साधन होने पर वह (वस्तु वर्णन) रसास्वादन में अवरोधक भी बन जाता है। कविकृत वस्तुवर्णन सरस, संक्षिप्त एवं प्रकृत रसानुकूल ही हो, इसका समर्थन राजशेखर करते हुए आपराजित के मत का उल्लेख किया है :—

मज्जनपुष्पावचयनसन्ध्याचन्द्रोदयादिवाक्यमिह ।
सरसमीप नाति बहुलं प्रकृतरसानन्वितं रचयेत् ॥

नदी, उपवन, चन्द्र आदि वस्तुवर्णन जड़ पदार्थ है तथापि उनका वर्णन रसात्मक हो सकता है। राजशेखर के कथनानुसार—"रस वस्तुनिष्ठ न हो कर कवि बचन में होता है"। यह तो कवि पर निर्भर करता है कि वह किसी वस्तु को किस रूप में अनुभूत करता है। असत्कवि तो विप्रलम्भ से भी रसवत्ता को निकाल देता है[६]। राजशेखर ने अपने इस मत को पाल्यकीर्ति एव अवन्तिसुन्दरी के कथन से पुष्ट किया है[७]। साथ ही नदी, पर्वत, नगर, अश्व आदि के वर्णन में रसवत्ता को सिद्ध किया है[८]। राजशेखर की उपयुक्त विचारधारा से भोजदेव भी सहमत हैं। उन्होंने इसी प्रकार के विचार सरस्वती कण्ठाभरण में अभिव्यक्त किये हैं[९]। वस्तुतः वस्तुवर्णन की सार्थकता उसके रसवत् होने पर निर्भर करती है।

अतः प्रस्तुत अध्याय में कवि सोमेश्वरदेव की वर्णन-शैली की इन्हीं विशेषताओं का विवेचन किया जाता है।

नगर वर्णन

संस्कृत काव्य की प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुये कवि सोमेश्वर ने ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी के प्रथम सर्ग में राजधानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अणहिल्लपत्तन का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है । यह नगर हाथियों के मद से आर्द्र रहता है तथा इसे धाम का गौरव प्राप्त है । हार के अनुरूप नगर के चारों ओर प्राकार वर्तमान है, अत: ऐसा प्रतीत होता है कि कलि अपने सुकृत्यों के द्वारा वृत्ताकार होकर नगर निवासियों की रक्षा कर रहा है :—

कृतहारानुकारेण, प्राकारेण चकास्ति यत् ।
सुकृतेन वृतीभूय, त्रायमाणं कलेरिव ॥
(कीर्तिकौमुदी, १/४९)

अणहिल्लपत्तन बनावलि तथा वृक्षों से आच्छादित है । वे वृक्ष उन्नत टीले की छाया के समान भासित हो रहे हैं । सायंकाल चन्द्र-शालाओं में युवतियाँ विहार कर रही हैं, उनकी मुखकान्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि नभस्तल में सैकड़ों चन्द्र विद्यमान है । अणहिल्लपत्तन सभी गुणों का आगर है । उसके सामने लङ्का, चम्पा, विदिशा, काशी मिथिला इत्यादि नगर शिथिल हो रहे हैं । कवि अनुप्रास एव यमकालङ्कार से युक्त युग्म श्लोकों के माध्यम से वर्णन करता है :—

लङ्का शङ्कावती चम्पा, साकम्पाविदिशा कृशा ।
काशिर्नाशितसम्पत्तिर्मिथिला शिथिलादरा ॥
त्रिपुरी विपरीतश्रीर्मथुरा मन्थराकृतिः
धाराऽप्यभून्निराधारा, यत्र जैत्रगुणे सति ॥
(वही, १/५७ तथा ५८)

कवि ने अणहिल्लपत्तन को श्री का निवास - स्थान बतलाया है। इसके उद्यान तथा किले में युवतियाँ क्रीणा के लिए आया करती थीं। इस नगर के ब्राह्मणों के वेदोच्चारण, रमणियों के गीत तथा चारणों की विरुदावलि अत्यन्त मनोमोहक थी। नगर से उठने वाला यमुना के समान यज्ञ-धूम्र आकाश-गङ्गा में जाकर मिलता था। जिस प्रकार मथुरा की यमुना, अयोध्या की सरयू तथा हस्तिनापुर[१०] की गङ्गा सेवा करती हैं, ठीक उसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार सरस्वती नदी अणहिल्लपत्तन नगर की सेवा करती है :—

यमुनेव मधूपघ्नं, साकेतं सरयूरिव ।
गजाह्वयं च गङ्गेव, सेवते यत् सरस्वती ॥

(कीर्तिकौमुदी, १/६०)

इसके अनन्तर कवि हिमालय तुल्य उन्नत पर्वत तथा पताकाओं का वर्णन करता है । नगर की ऊँची पताकाओं के द्वारा सूर्य के रथवाहक अरुण की रक्षा सूर्य की प्रचण्ड किरणों से होती हैं । राजमार्ग हाथी तथा घोड़ों से भरे रहते हैं । नगर में जहां जहां रमणियां विचरण करती हैं, विलासियों की दृष्टि उन पर पड़ती है, किन्तु उन व्यक्तियों पर जब रमणियों की दृष्टि पड़ जाती है तो वे सशरीर कामदेव के द्वारा मारे जाते हैं । ब्रह्मा ने अनुपमेय रमणियों को यहाँ पर जन्म दिया है । वे दीवालों में जड़े हुये रत्नों में प्रतिबिम्बित होती हैं । इन्हीं प्रतिबिम्बों से ही इन रमणियों की तुलना की जा सकती है :—

यत्र यत्र प्रसर्पन्ति, सलीलं यन्मृगीदृशः ।
दासीव दृष्टिरन्वेति, तत्र तत्र विलासिनाम् ॥
वीक्षिता वलितग्रीवं, तन्वीभिर्यत्र केऽपि ये ।
मन्ये व्यावर्तिताङ्गेन, तेऽनङ्गेनापि ताडिताः ॥
रूपेणाप्रतिमाः कान्ता, यत्र धात्रा कृताः किल ।
तथापि प्रतिमास्तासां, सञ्जाता रत्नभित्तिषु ॥

(वही, १/६८-७०)

इस प्रकार कवि के द्वारा किया गया राजधानी का यशोगान बड़ा ही मार्मिक है । यद्यपि यह वर्णन काव्यात्मक गुणों से युक्त है तथापि वास्तविकता को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । नगर के विविध वर्णनों में सिद्धसरोवर का प्रमुख स्थान हैं । सिद्धसरोवर के तट पर स्थित कीर्तिस्तम्भ अणहिल्लपुर नगर की कीर्ति को चारों दिशाओं में बिखेर रहा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धसर-वर्णन

प्राचीन काल से ही महाकाव्यों में सरोवर वर्णन की परम्परा प्राप्त होती है। कवि ने सिद्धसर[११] का रुचिर वर्णन प्रस्तुत किया है। सरोवर के गम्भीर जल में कमल खिले हुये हैं। सर के चारों ओर मन्दिर तथा शिवालय विद्यमान हैं। तट पर स्थित भवनों में दीपक जल रहे हैं, जिनका प्रतिबिम्ब सरोवर में दिखाई पड़ रहा है। सरोवर के दीप-प्रतिबिम्ब ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो पाताल लोक में शेषनाग की फण-मणियां प्रज्वलित हो रहीं हैं। सरोवर के तट पर स्थित रजत के समान उज्जवल कीर्तिस्तम्भ[१२] इतना ऊँचा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाश-गङ्गा पृथ्वी लोक पर उतर रही है :—

यस्यान्तर्गिरिशागारदीपकाः प्रतिबिम्बिताः ।
शोभन्ते निशि पातालव्यालमौलिमणिश्रियः ।।
यस्योच्चैः सरसस्तीरे, राजते रजतोज्ज्वलः ।
कीर्तिस्तम्भो नभोगङ्गाप्रवाहोऽवतरन्निव ।।
(कीर्तिकौमुदी, १/७४ तथा ७५)

शिवालयों के द्वारा नगर तथा राजहंसों के द्वारा तडाग की शोभा बढ़ रही है। सिद्धसरोवर कहीं कमल के पराग से पीला है और कहीं कामनियों के कुच कुङ्कुम से लाल बना डाला गया है। कहीं खिले हुए नील कमल की कान्ति से नीला प्रतीत होता है। अतः यह सिद्धसरोवर, जो कल्याण का सागर है, वर्णनातीत चित्रित कम्बल की शोभा को धारण कर रहा है :—

एकत्र स्फुटदब्जराजिरजसा बभ्रूकृतः सुभ्रुवां,
प्रश्च्यवत्कुचकुम्भकुङ्कुमरसैरन्यत्ररक्ती कृतः ।
अन्यत्र स्मितनीलनीरजदलच्छायेन नीलीकृतः,
श्रेयः सिन्धुरवर्णकम्बलधुरां धत्तेशरः शेखरः ।।
(वही, १/८१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि को महाकाव्यों में वर्णित मानसरोवर, रामायण में वर्णित पम्पा तथा कादम्बरी में वर्णित अच्छोदसरोवर भी इस जलाशय के सामने सार रहित मालूम होते हैं :—

ना मानसे माद्यति मानसं मे, पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम् ।
अच्छोदमच्छोदकमप्यसारं, सरोवरे राजति सिद्धभर्तुः ।।
(वही, १/७८)

निष्कर्ष यह है कि सिद्धसरोवर एक पवित्र एवं महत्वपूर्ण जलाशय था, जिसकी दैनिक-जीवन में बड़ी उपयोगिता थी ।

गिरि - वर्णन

महाकाव्यों में प्राकृतिक सुषमा का महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है । कवियों की गिरि-वर्णन के प्रसंग में भी प्रकृति के विभिन्न पक्षों को चित्रित करने का अवसर मिल जाता है । काव्यशास्त्र के मनीषियों ने महाकाव्य वर्णन में पर्वत के सौन्दर्य का चित्रण अपेक्षित बतलाया है । तेरहवीं शताब्दी के आस पास रचे गये महाकाव्यों में तो यह परम्परा अवश्य ही प्राप्त होती है । परम्परावश ही सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग में हिमालय का नयनाभिराम वर्णन प्राप्त होता है । सुरथोत्सव में पर्वतीय सुषमा का सूक्ष्म निरीक्षण काव्यात्मक ढंग से संजोया गया है । उस पर्वतीय प्रदेश में कोयल भी पञ्चमराग से युक्त होकर कूक रही है :—

तटे तटेऽस्तीह मनोहरं वनं
वने वने पल्लवशालिनो नगाः ।
नगे नगेऽनङ्गविधायिनः पिकाः
पिके पिके सूचितपञ्चमं वचः ।।
(सुरथोत्सव, ४/२९)

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि गिरि-वर्णन में कालिदास रचित कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग से प्रभावित है । क्योंकि कतिपय स्थलों पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों महाकाव्यों में विषय साम्य भी परिलक्षित होता है । हिमालय पर किन्नरों द्वारा किये जाने वाला मनोरञ्जन द्रष्टव्य है । महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में किन्नररमणियों के सम्बन्ध में कहा है कि 'हिमालय पर किन्नरों[११] की स्त्रियाँ हिमशैत्य के दुःख से अंगुली और एड़ियों में कष्ट होने पर भी नितम्ब और पयोधर के भार से अपनी स्वाभाविक मन्दगति को नहीं छोड़ती हैं :—

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्, मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताभिन्दन्तिमन्दांगतिमश्वमुख्यः ॥
(कुमारसम्भव, १/११)

कवि सोमेश्वरदेव की किन्नरी इस शालीनता से और आगे बढ़ जाती है । उसे हिमालय की गुफाओं में रतिक्रीडा करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता है :—

न मदनोकहशालिनिगह्वरे
न मदनोपमितेन न किन्नरी ।
विहरते दयितेन समं गिरा—
विह रतेषु रतिं दधती मुहुः ॥
(सुरथोत्सव, ४/२५)

इसी प्रकार सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग के कतिपय अन्य स्थल भी हैं जो कुमारसम्भव से प्रभावित है । उनका विस्तृत-विवेचन यहाँ पर अपेक्षित नहीं है ।

सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग के अधिकांश छन्द यमकालङ्कार से सुशोभित हैं । इस अलङ्कार की अधिकता ही नहीं है अपितु सुरथोत्सव तथा कीर्ति-कौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में सबसे अधिक यमकालङ्कार इसी सर्ग में प्राप्त होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने गिरि की कठोरता को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्त करने के लिए ही इस अलङ्कार का आश्रय लिया है :—

रमते वियतायमगः खचरा-
न्नव तानवतानवतानवता ।
यतिपंक्तिरियं च पुरो विरम-
द्गमना गमनागमनागमना ॥
(सुरथोत्सव, ४/३१)

हिमालय के शृङ्ग पर स्थित मेघ को देखकर कवि कहता है कि 'घनीभूत हिम से युक्त हिमालय पर्वत के शृङ्ग पर नवीन मेघ लटक रहे हैं। वास्तव में शृङ्ग स्थित ये मेघ शेषनाग की शय्या पर शयन करनेवाले विष्णु की शोभा को धारण कर रहे हैं'[४]। अन्त में कवि हिमालय की सर्वश्रेष्ठता बतला रहा है :—

तावल्लावण्यलक्ष्मीः कलयति मलयस्तावदाविष्करोति,
क्रौञ्चश्चेतोहरत्वं हरधरणिधरस्तावदभ्येत्यभिख्याम् ।
तावद्गर्वं सुपर्वक्षितिभृदपि दधात्युद्धतत्वं च विन्ध्य-
स्तावद्धत्ते धराणांपतिरतिरुचिरो दृश्यतेऽसौ न यावत् ॥

अर्थात् दक्षिणदेश में स्थित मलयपर्वत तब तक ही सुन्दरता धारण करता है, क्रौञ्च पर्वत तब तक ही चित्तहारी प्रतीत होता है, सुपर्व पर्वत तब तक ही गर्व को धारण करता है और विंध्यपर्वत तब तक ही धरापति कहलाता है, जब तक कि यह अति रुचिर हिमालय पर्वत देखा नहीं जाता है।

इस प्रकार हिमालय की चारुता एवं श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुये कवि ने गिरि-वर्णन नामक सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग को समाप्त किया है ।

सूर्यास्त वर्णन

सूर्यास्त का वर्णन कवि सम्प्रदाय सिद्ध प्रसिद्ध प्रतीकों सूर्य और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कमलिनी, भ्रमर और नलिनी एवं चक्रवाक और चक्रवाकी का आश्रय लेकर उत्प्रेक्षा, उपमा एवं रूपक आदि अलङ्कारों के माध्यम से किया गया है। वर्णन परम्परागत शैली में उपनिबद्ध होते हुए भी माघ और श्रीहर्ष की अतिरजितशास्त्रबहुज्ञता, पौराणिक व्युत्पत्ति, श्लेष और यमक की क्लिष्टता की न्यूनता होने के कारण सरल, स्वाभाविक एवं काव्यत्व से परिपूर्ण है। दिवस भर तपनत्व का विस्तार करने के पश्चात् सूर्य अस्ताचल की ओर गमनशील हो जाता है। इस सम्बन्ध में कवि ने एक अत्यन्त सरल कल्पना प्रस्तुत की है। 'चक्रवाकी अर्धदलित कमलाङ्कुर को अपने मुख में लिए हुए अश्रुपात कर रही है और अपने प्रिय चक्रवाक तथा सूर्य की ओर देख रही है क्योंकि अब वियोग होने वाला है :—

उज्झती झटिति बाष्पनिर्झरं सार्धमर्धदलितैर्बिसाङ्कुरैः ।
चक्रवाकदयिता दृशं ददौ रागिणि प्रियतमे च पूष्णि च ॥

(सुरथोत्सव, ६/३)

सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनो ही महाकाव्यों में सूर्यास्त- वर्णन के प्रसंग में प्रकृति सम्बन्धी उपमानों में अतिरिक्त कवि ने अनेक नवीन कल्पनायें प्रस्तुत की हैं। सुरथोत्सव महाकाव्य के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में भी सूर्यास्त के अनन्तर होने वाले चक्रवाकी के वियोग-व्यथा के सम्बन्ध में कवि ने एक अनूठी कल्पना प्रस्तुत की है :—

वियोगव्यथया वीक्ष्य, साक्रन्दां चक्रकामिनीम् ।
प्रम्लाना सहसंवासस्नेहेनेव सरोजिनी ॥

(कीर्तिकौमुदी, ७/५)

अर्थात् वियोग व्यथा के कारण रोती हुई चक्रवाकी को देखकर एक साथ रहने वाले स्नेह के कारण मानो कमलिनी म्लान हो उठी है। कवि इसी महाकाव्य में सूर्यास्त के अनन्तर होने वाले प्रकृति व्यापार का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। 'मित्र अर्थात् सूर्य के अस्त हो जाने से दुःखी एवं प्राण परित्याग की इच्छा रखने वाले कमल भौंरों के बहाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानो अपने हृदय पर शालग्राम शिला रख रहे हों :—

मित्रेऽस्तमागते दुःखादब्जैः प्राणान् जिहासुभिः ।
शालग्रामशिलेवालिव्याजादारोपिता हृदि ॥
(कीर्तिकौमुदी, ७/६)

भारवि की कल्पना में भी सूर्य केलिक्रीडा से निवृत्त सुरांगनाओं के मन को रमण करने की इच्छा से कलुषित सा जान कर उनका प्रिय सम्पादन की इच्छा से अस्तोन्मुखी हो जाता है :—

वीक्ष्यरन्तुमनसः सुरनारीरात्तचित्रपरिधानविभषाः ।
तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्तं भानुमानुपपयोधि ललम्बे ॥
(किरातार्जुनीय, ९/१)

अस्ताचलगामी सूर्य का वर्णन करते हुए कवि सोमेश्वरदेव आगे कहते हैं कि अस्ताचल पर गये सूर्य का कमल कोमल तेज वरुण के अञ्जलिस्थ जल को कुङ्कुमाविल अर्थात् कुङ्कुम युक्त सा बनाता हुआ सुशोभित हो रहा है । मूंगे के चूर्ण के समान मरीचि-मण्डल वाला सूर्य अस्ताचल के गेरुक समान शृङ्ग पर सुशोभित हो रहा है । चन्द्रोदय के समय भौंरे कमल को छोड़ कर कुमुद पर जा रहे हैं । इस संसार में ऐसे मित्र कम ही मिलते हैं जो विभव के अभाव में भी अपने मित्र का साथ नहीं छोड़ते हैं । सायंकाल जपा पुष्प के समान सूर्य की पीली किरणें जब पक्षियों पर पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि निर्दय भाव से कामदेव ने विरही पक्षियों पर बाण चलाया और मानो बाण लगने से निकले हुये रुधिर से ये पक्षी लाल हो गये हैं[15] । सूर्य यह सोचते हुए कि अब मेरे पास क्या बन रहा वह बेमन होकर दूसरे देश को चला गया :—

सांप्रतं गतवसोरसांप्रतं वस्तुमत्र मम वस्तु दर्शितः ।
चिन्तयंश्चिरमितीव दुर्मना देशमन्यमगमद्गभस्तिमान् ॥
(सुरथोत्सव, ६/२०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धकार–वर्णन

सूर्यास्त होते ही सर्पणशील अन्धकार शनैः शनैः आकाश-मण्डल को आच्छादित कर लेता है। कवि की कल्पना में यह अन्धकार सर्पों का निःश्वास है। अन्धकार की सघनता वस्तु-ज्ञान एवं दिशा-ज्ञान दोनों का सर्वथा विलुप्तीकरण कर देती है, अतएव तिमिराच्छन्न दिशाओं के सम्बन्ध में केवल कवि प्रतिभोत्थित संशय अथवा सम्भावना ही व्यक्त की जा सकती है। संस्कृत-कवियों ने प्रायः प्रगाढ़ान्धकार के लिए सन्देह और उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया है। कवि सोमेश्वरदेव के अन्धकार वर्णन में भी उत्प्रेक्षा एवं सन्देह जैसे उपयुक्त अलङ्कारों का प्राधान्य है। कवि दुःख प्रकट करता है कि हन्त ! पश्चिम दिशा अपने तिलक सूर्य को त्याग कर विवेक रहित स्त्री के समान अन्धकार का चुम्बन करती है:—

रागवन्तमपि हन्त वारुणी दिग्विहाय तिलकं विहायसः।
चुम्बति स्म बलिनं तमश्चयं निर्विवेकहृदया हि योषितः॥

(वही, ६/२१)

कवि का कथन है कि अन्धकार आने से पूर्व दिशा की परिस्थिति मानो परिव्राजक जैसी हो रही है क्योंकि उसके अम्बुज रूप लोचन अन्तस्तत्व आत्मा को देखने के लिए बन्द हो गये हैं और आकाश रूपी वस्त्र गेरू आदि चूर्ण से सुशोभित हो रहे हैं। कवि को कुछ क्षणों के लिए आकाश गुञ्जाफल के समान दिखाई दे रहा है और दूसरी ओर आकाश संध्याकालीन राग से लाल हो उठा है:—

तत्वमान्तरमिवावलोकितुं मीलिताम्बुजविलोचना मनाक्।
धातुचूर्णरुचिराम्बराः परिव्राजका इव चकाशिरे दिशः॥
एकतोऽवतमसैर्मलीमसं रज्यमानमपरत्रसंध्यया।
पाकपाटलितकृष्णलाफलप्रेक्षणीयमभवन्नभः क्षणम्॥

(वहीं, ६/२२ तथा २३)

अन्धकार के अतिरिक्त सूर्य के जाने और नक्षत्रों के आने के सम्बन्ध में कवि एक नवीन कल्पना प्रस्तुत कर रहा है। 'ऊँचे पर्वत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर से समुद्र के बीच में सूर्य के गिरने पर उछलते हुए जलकणों ने मानों आकाश को तारों से अलङ्कृत कर दिया है :—

उच्चकैश्चरमभूमिभृत्तटाद्गोपतौ पतति वार्धिमध्यतः ।
उच्छलद्भिरिव शीकरैस्ततस्तारकैरलमकारि पुष्करम् ॥

(वही, ६/२४)

संशयालङ्कार के माध्यम से कवि अन्धकार के उत्पत्ति - स्थान को खोज रहा है। क्रुद्ध शूकरों के झुण्ड के समान अन्धकार क्या पर्वतों की कन्दराओं से निकल आया है ? या वृक्षों के कोटरों से निकल पड़ा है ? या पाताल लोक से आया है (वही, ६/२५) । सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी में भी यह अन्धकार कहाँ से आ गया है, इस सम्बन्ध में कवि को जिज्ञासा बनी हुई है । आकाश तारों के माध्यम से विस्मित होकर देख रहा है कि यह सूर्य कहाँ चला गया और यह अँधेरा कहाँ से आ गया है ? कवि आगे बतला रहा है कि एक ओर दीपक जल रहे हैं और दूसरी ओर अन्धकार स्फुरित हो रहा है । इन दोनों के अन्दर एक ही प्रकार का स्वभाव है । ये न सजातीय को सहते हैं और न विजातीय को (कीर्तिकौमुदी ७/१९ तथा २०) । संध्या और दिन सहित सूर्य को देशान्तरगामी समझकर सारा संसार उसी प्रकार म्लान हो गया, जिस प्रकार सीता और लक्ष्मण से युक्त राम के वन चले जाने पर सभी दुःखी हुये थे :—

ससन्ध्या-वासरं सूर्य, मत्वा देशान्तरं गतम् ।
जायाऽनुजान्वितं राममिव म्लानमभूज्जगत् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ७/१८)

State Museum Library Lucknow 7623

कवि अन्धकार के उत्पत्ति स्थान के विषय को छोड़कर उसके प्रतिदिन आने और जाने की क्रिया पर विचार कर रहा है । सूर्य की किरणों के द्वारा यह अन्धकार प्रतिदिन भगाया जाता है और दूसरे दिन यह पुनः दौड़ आता है । कवि कहता है कि ऐसी परिस्थिति में क्या मैं सूर्य के उद्यम की स्तुति करूँ ? अथवा अन्धेरे की निर्लज्जता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की (सुरथोत्सव, ६/२६)। अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया है अतः घरों में दीपक जला दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में कवि की मार्मिक कल्पना यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। प्रत्येक भवन के अन्दर जलाये जाने वाले फणिमणि के समान जगमगाने वाले दीपक जाते हुये सूर्य के द्वारा अन्धकार के बाधनार्थ स्थापित किरणाङ्कुर जैसे प्रतीत होते हैं :—

रेजिरे प्रतिनिकेतनाजिरं दीपकाः फणिपुटामणिस्फुटाः।
बाधितुं तिमिरमीरिता यता भास्करेण किरणाङ्कुरा इव ॥
(सुरथोत्सव, ६/२७)

कवि सूचित कर रहा है कि अब अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया है। 'सूर्य के अस्त हो जाने पर अन्धकार रूपी चोरों की चोरी बढ़ चली है। जगत् को इस अराजकता को देखकर अग्निदेव तीव्र अस्त्र धारण कर दीपक के बहाने घर घर में उपस्थित हो गये हैं :—

अस्तमीयुषि दिनाधिनायके ध्वान्ततस्करतिरस्क्रियाकुलम्।
रक्षितं जगदराजक जवाद्वह्निना विवृततीव्रहेतिना ॥
(वही, ६/२८)

चन्द्रोदय-वर्णन

अन्धकार के पश्चात् यथाक्रम चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है। चन्द्रोदय के वर्णन में विशेषतः रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख एवं समासोक्ति अलङ्कार का आश्रय लिया गया है। सूर्य के तपनत्व-विस्तार रूप कार्य से वैराग्य लेने के अनन्तर ही जगत् अन्धकार रूपी सागर में निमग्न हो जाता है। किन्तु उसी समय शीघ्र ही चन्द्रमा अपने किरण रूपी करों से संसार का उद्धार करने के लिए आ पहुँचता है। वस्तुतः तेजस्वी व्यक्तियों के लिए कोई कार्य अशक्य नहीं होता है।

कवि सोमेश्वरदेव ने चन्द्रोदय का मनोमोहक वर्णन सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में किया है। चन्द्रोदय-वर्णन में सुरथोत्सब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की अपेक्षा कवि को कीर्तिमौमुदी महाकाव्य में अधिक सफलता प्राप्त हुई है । कीर्तिकौमुदी का प्रारम्भिक वर्णन इस प्रकार है—'घनान्धकार के द्वारा बन्दी किये गये आकाश रूपी द्वार को अब खोल डालने के लिए मानो कोई पूर्व दिशा में प्रवृत्त हो रहा है । राजा चन्द्र के द्वारा दिशाओं के समुदाय पर आक्रमण का उपक्रम प्राप्त करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो दम्भ से युक्त प्रभा रूपी सैन्यदल प्रस्फुरित हो रहा है । रोहिणी के पति' चन्द्रमा को अनुरागपूर्ण होकर निकट आये देखकर पूर्व दिशा उसके प्रकाश के बहाने सस्मित सी हो उठी है । पूर्व दिशा को नारी के रूप में वर्णित कर कवि ने यहाँ मानवीकरण का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है (कीर्ति-कौमुदी ७/२४ से २६) । कामदेव राजा के सामन्त चन्द्रमा, जो कि शृङ्गार के जयघोषकारी बन्दी हैं, आ गये हैं :—

अथोज्जगाम सामन्तः, कुसुमास्त्रमहीपतेः ।
शृङ्गारस्य जयोद्गारबन्दी कुमुदबान्धवः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ७/२७)

कवि आगे कहता है कि उदयाचल से उदित होने वाला चन्द्र पुंश्चलियों का तप-भंग, समुद्र का महोत्सव तथा कामदेव की रससिद्धि कहा जा सकता है । इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन में उल्लेखालङ्कार का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है । चन्द्र-प्रकाश अब चारोंओर फैल गया है । उस प्रकाश से सम्पूर्ण कुमुद-समुदाय खिल उठा है । इस खिले हुए कुमुद-समुदाय की उज्ज्वलता ने क्षीर-समुद्र के फेन-पटल की धवलिमा को भी जीत लिया है :—

पुंश्चलीनां तपश्छिद्रं, समुद्रस्य महोत्सवः ।
रससिद्धिरनङ्गस्य, दिवमिन्दुरगादगात् ॥
सान्द्रे चन्द्रातपे तत्र, स्फुरद्भिः कैरवाकरैः ।
क्षीरनीरधिडिण्डीरपिण्डानां पाण्डिमाजितः ॥
(वही, ७/३० तथा ४३)

खलों के द्वारा सज्जनों पर आरोपित मिथ्यादोष को जिस प्रकार से सज्जन स्वीकार नहीं करते हैं, उसी प्रकार चन्द्र ने अन्धकार को समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दिया है, अर्थात् उसे स्वीकार नहीं किया है । कवि चन्द्रकलङ्क के सम्बन्ध में एक नवीन कल्पना प्रस्तुत करते हुए कह रहा है कि चन्द्रमा में कस्तूरीतिलक की आकृति का यह कलङ्क नही है अपितु शिव द्वारा भस्म किया गया यह कामदेव का धनुष है (वही, ७/४१ तथा ४२) । इस चन्द्र-कौमुदी में कोई अभिसारिका काम–पण्डित की ताड़पत्र पर नीलरंग के पत्थर से लिखी गई वर्णवाली पुस्तक के समान मालूम पड़ रही है :—

ताडपत्रश्रिया न्यस्तनीलाश्मगणवर्णया ।
पुस्तकेव चकास्ति स्म, काचित् कामविपश्चितः ।।
(वही ७/५५)

कवि चन्द्र के वाह्य-सौन्दर्य की चर्चा करते हुए आगे कहता है कि इस चन्द्र-कौमुदी से नायक-नायिकाओं के चित्त मे विकार उत्पन्न हो गया है । प्रसंगतः कवि ने सुरत-क्रीडा का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है । युवती के कुचों का एक वर्णन यहां द्रष्टव्य है :—

निगदितुं विधिनाऽपि न शक्यते, सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम् ।
सुरतसंयति यौ प्रियपीडितावपि नतिं न गतौ च्युतकञ्चुकौ ।।
(वही, ७/७९)

अर्थात् तिरछे नेत्र वाली स्त्रियों के उन कुचों की वीरता का वर्णन विधाता भी नहीं कर सकता है जो कि सुरत-युद्ध में कवच रहित और प्रिय पीडित होने पर भी नत नहीं होते है ।

इस प्रकार कवि ने महाकाव्यों में प्राप्त चन्द्र-वर्णन की परम्परा को बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है । यही नहीं उसने नवीन कल्पनाओं की योजना सरस अलङ्कारों के माध्यम से किया है । कवि के चन्द्र-वर्णन में ही शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का चारु वर्णन प्राप्त होता है । शृङ्गार के दोनों पक्षों का विस्तृत-वर्णन हम रस-विवेचन के समय प्रस्तुत करेंगे । यहाँ पर कवि के काव्यों में प्राप्त चन्द्र-वर्णन का विवेचन ही अभीष्ट था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभात-वर्णन

प्रभात वर्णन की ओर कवि की विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है। सुरथोत्सव महाकाव्य में प्रभात-वर्णन के प्रसंग का विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है। यहाँ पर कवि की कल्पना का आधार प्रदीप, सूर्य, भ्रमर एवं कमल हैं जिनकी ओर कवि की दृष्टि गई है। किन्हीं-किन्हीं महाकाव्यों में सूर्योदय के अनन्तर चन्द्रोदय का चारु वर्णन प्राप्त होता है। सुरथोत्सव महाकाव्य में चन्द्रोदय के अनन्तर सूर्योदय का आगमन बतलाया गया है। सूर्योदय से पूर्व उदयाचल पर एक ललिमा प्रकट होती है। उस ललिमा का प्रकाश क्रौञ्च-पक्षी को आनन्दित करता हुआ और तिमिर को दबाता हुआ इस तरह सुशोभित हो रहा है जैसे कान्ता का रञ्जित ओष्ठ हो:—

पूर्वाचले च मिथुनानि रथाङ्गनाम्ना—

मानन्दयंश्च तिमिरं परिमन्दयंश्च।

प्राभाकरः सरसयावकरक्तकान्ता-

दन्तच्छदच्छविररोचत रोचिरोधः॥

(सुरथोत्सव, ७/१)

कवि सोमेश्वरदेव प्राची दिशा को युवती के समान मानकर उपमालङ्कार के माध्यम से अपने कथन की पुष्टि करते हैं। 'अंगूरीमदिरा के पान से प्राप्त होने वाली अरुणिमा को मुख में धारण करने वाली यह प्राची दिशा रूपी कामिनी, जिसका तारकमाला रूपी हार टूट गया है और अन्धकार रूपी नीले रंग की साड़ी भी गिर गई है, माला के समान किरणों सहित चन्द्रमा को भी त्याग दिया है :—

माध्वीकपानजमिवारुणजं दधाना

रागं मुखे गलिततारकहारयष्टिः।

भ्रश्यत्तमिस्रवसना हरिदिक्पुरंध्री

तत्याज माल्यमिव चन्द्रमरीचिजालम्॥

(वही, ७/·)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि को प्रभातकालीन लालिमा अत्यधिक आकर्षित करती है। इस सम्बन्ध में उसने एक नवीन कल्पना प्रस्तुत की है। उस पूर्व दिशा में उदीयमान सूर्य के घोड़ों के आने के कारण उनके खरों से उदयाचल विदीर्ण होने से गैरिक आदि धातु उड़ रहे हैं। परिणामत: लालिमा छा गई है। ऐसा मालूम होता है कि वह पूर्व दिशा, जिसे प्राची मुख भी कहा जाता है, पान खाने से प्राप्त होने वाली अरुणिमा को धारण कर रहा है :—

आविर्भवद्दशशतद्युतिपत्रपूगे

तद्दारितोदय धराधरधातुवर्णे।

प्राचीमुखे परिणतारुणिताम्रताम्र-

स्ताम्बूलसंभव इव स्फुरति स्म रागः॥

(वही, ७/३)

समासयुक्त पदों के माध्यम से कवि कह रहा है कि प्रभातकालीन अरुणिमा से ही अन्धकार समाप्त हो गया है। दौड़ते हुए घोड़ों के खुर से खण्डित होने वाले उदयाचल के शृङ्ग से उत्थित गैरिक-पराग की कान्ति से लाली प्राप्त करने वाले सूर्य के सारथी अरुण के द्वारा अन्धकार का लोप उसी समय कर दिया गया, जब कि कमल को अपनी विधुरता से उद्धार दिलाने वाले देव सूर्य उनके मन में आये अर्थात् सूर्य अभी प्रकाशमान नहीं हुए हैं और आकाश में केवल अरुणिमा आयी है। उस अरुणिमा के प्रकाश से ही अन्धकार नष्ट हो चला है :—

रङ्गतुरङ्गखुरखण्डितशक्रशैल-

शृङ्गोत्थगैरिकपरागरुचारुणेन।

देवेऽरविन्दविधुरोद्धरणैकबन्धौ,

बुद्धिस्थ एव विदधे तिमिरस्यलोपः॥

(सुरथोत्सव, ७/७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रातःकाल उदयाचल पर पक्षी कलरव कर रहे हैं। उदयाचल पर स्थित वृक्षसमुदाय भीतर से अन्धकारमय हैं किन्तु बाहर सूर्य की अरुण किरणों से मिश्रित नव पल्लवों के कारण लाल हो गये हैं। वृक्ष खलजन के समान पक्षियों के व्याज से उदीयमान सूर्य की स्तुति कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि खल-जन मन से मलिन किन्तु ऊपर से अनुराग दिखलाते हुए तेजस्वी व्यक्ति की स्तुति किया करते हैं। कवि ने यहाँ पर वृक्षों को खल के समान वर्णित किया है :—

अन्तर्वहन्मलिनतां तमसा बहिस्तु
रागं श्रयन्किशलयैररुणांशुमिश्रैः ।
पक्षिस्वनैः खल इवाचलवृक्षखण्ड—
श्चण्डद्युतेरुदयतः स्तुतिमाततान ।

(वही, ७/१३)

प्रभात वर्णन में कवि ने अनेक नवीन उत्प्रेक्षाओं की कल्पना की है। कवि की एक उत्प्रेक्षा यहाँ पर देखने योग्य है। 'उदयाचल के शृङ्ग पर आने वाले सूर्य को जलते हुए शव-शरीर के समान देखकर चन्द्रमा अपने करों को, जो कि कुमुदों के साथ क्रीड़ा-रत थे, जलने की आशंका से मानो संकुचित कर रहा है :—

आलोकयन्नुदयमूर्धनि दीप्तिदृप्त—
मुत्तप्तपारशवपिण्डमिवोष्णपादम् ।
दाहाभिशङ्कित इव स्वकरान्सुधांशु—
राकुञ्चति स्म कुमुदवलिकेलिकारान् ॥

(सुरथोत्सव, ७/२४)

कवि को बाल-सूर्य विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है। उनका कहना है कि अन्तरिक्ष में सूर्य की उठती हुई पीली किरणों की छटा जटा की शोभा को धारण कर रही है और तेजो रहित चन्द्रमा के व्याज से कपाल धारण करता हुआ सूर्य कापालिक के स्वभाव को धारण कर रहा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिङ्गाभिरुद्यदहिमांशुमहश्छटाभिः

शोभां जटाभिरिव दर्शयदन्तरिक्षम् ।

बिभ्रन्निरस्तरुचि चन्द्रमिषात्कपालं

कापालिकस्य करणिं कलयांचकार ॥

(वही, ७/१९)

सोमेश्वरदेव के पड़ोसी श्रीमालनिवासी महाकवि माघ को भी इस बाल सूर्य का प्रभाव विविध रूपों में दिखाई पड़ा है । सूर्य को देख कर कवि की सरस वाणी इस प्रकार प्रस्फुटित हुई है :—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं

त्यजतिमुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं

हतविधि ललितानां हा ! विचित्रो विपाकः ॥

(शिशुपालबध, ११/६४)

अर्थात् कुमुदबन श्री हीन हो रहा है, कमल-समूह शोभायुक्त हो रहा है । उलूक दिन में न देख सकने के कारण प्रसन्नता को छोड़ रहा है, दिन में प्रिया का अब सङ्ग हो जाने के कारण चकवा प्रसन्न हो रहा है। सूर्य उदित हो रहा है और चन्द्रमा अस्त हो रहा है, इनमें ऐसी विषमता इस कारण है कि दुर्दैव की चेष्टाओं का परिणाम विचित्र होता है, यह आश्चर्य है ।

महाकवि सोमेश्वरदेव के प्रभात-वर्णन का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :—

तीव्रैः शरैरिव करैः किरणाकरेण,

मत्वात्मजानि तिमिराणि तिरस्कृतानि ।

अस्तोकशोकविकलेव कलङ्कदम्भा—

दङ्के पपात रजनी रजनीश्वरस्य ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार कवि सोमेश्वरदेव ने अपने पूर्ववर्ती महाकवि माघ-तुल्य कवियों के समान ही प्रभात का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। यह द्रष्टव्य है कि बाल सूर्य को विभिन्न प्रकार के उपमानों के द्वारा सुशोभित किया गया है। इस प्रसंग में कवि की अनेक कल्पनायें नवीन एवं मौलिक हैं।

ऋतु-वर्णन

महाकाव्यों में प्राप्त षड्-ऋतु वर्णन की परम्परा का निर्वाह केवल सुरथोत्सव महाकाव्य में किया गया है। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में ऋतु-वर्णन यत्र-तत्र किया गया है। यद्यपि वर्षा ऋतु की हरीतिमा, शरद् की निर्मलता एवं वसन्त की मादकता ने कवि को अधिक प्रभावित एवं आकर्षित किया है, तथापि कवि ने सभी ऋतुओं को क्रमानुसार समुचित स्थान प्रदान किया है। यह कहा जा सकता है कि षड्-ऋतु का यह वर्णन मनोमोहक तथा हृदयग्राही है। यह सत्य है कि सुरथोत्सव एक पौराणिक महाकाव्य है। अत: हिमालय पर्वत पर देवाधिदेव की सेवा के लिए ऋतु-चक्र का आगमन हुआ है जैसे होनहार लोग फल-फूल आदि भेंट करते हुये ईश्वर की सेवा करते हैं:—

नगेऽथ तस्मिन्नृतुचक्रमागमन्निषेवितुं निर्जरचक्रवर्तिनम्।
फलप्रसूनैरुपपादितोपदाः सदा भजन्ते हि विभुं बुभूषवः॥
(सुरथोत्सव, ५/१)

१ वसन्त-वर्णन

संस्कृत साहित्य में वसन्त को ऋतुराज की संज्ञा दी गई है। सुरथोत्सव में भी इस ऋतुराज का वर्णन सर्वप्रथम किया गया है। कवि ने वसन्त वर्णन के द्वारा वसन्त श्री को चतुर्दिक बिखेरने का प्रयत्न किया है और उसे इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई है। वसन्त-वर्णन में कवि को 'वसन्तेऽग्निम् आदधीत' नामक श्रुति भी स्मरण हो आई है। 'वेदज्ञ द्विजों के द्वारा अग्न्याधान के लिए वसन्तकाल को विहित ठहराया गया है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि उज्ज्वल वेषधारी यज्ञ-पतियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने प्रवासियों की कान्ताओं के हृदय में इस वसन्तकाल में अग्न्याधान किया है :—

वसन्तकालः किल वेदवेदभिर्द्विजन्मनामग्निपरिग्रहे मतः ।
इतीव यज्वप्रभुरुज्ज्वलांशुकः प्रवासिकान्ताहृदयेऽग्निमादधे ।।

(सुरथोत्सव, ५/८)

गौड़ी रीति में लिखे गये सुरथोत्सव महाकाव्य में वसन्त से सम्बन्धित कतिपय सरस वर्णन भी प्राप्त होते हैं । माधवी लता पर भ्रमर मंडरा रहे हैं, जिसे देखकर कवि कहता है कि 'कतिपय कामी भौरों के द्वारा कटाक्षित और कतिपय भौरों के द्वारा चुम्बित एवं अन्य कुछ भौरों के द्वारा उपभोग की गई मधुक्षरणशील माधवी लता नयी वेश्या के समान प्रतीत हो रही है :—

कटाक्षिता कैरपि चुम्बिता परैः कृतोपभोगा मधुपैश्च कैश्चन ।
मधुक्षरन्ती विरराजमाधवी नवीनरूपा गणिकेव कामिभिः ।।

(वही, ५/१०)

जिस समय चारों ओर ऋतुराज का प्रभाव छाया हुआ था । अचानक ही जेष्ठ माह का आगमन हो जाता है । जेष्ठ के आगमन से वसन्त लक्ष्मी रूपी वधू कुम्हलाते हुये किंशुकों के व्याज से अवगुण्ठन करते हुये तथा कोकिल शब्द रूपी वाणी को आकुञ्चित करते हुये जाने को तैयार हैं :—

पुरः स्थितं ज्येष्ठमवेक्ष्य किंशुकप्रसूनकौसुम्भकृतावगुण्ठना ।
वधूरिवाकुञ्चितकोकिलस्वना वसन्तलक्ष्मीरपसर्तुमुद्यता ।।

(सुरथोत्सव, ५/१५)

२-ग्रीष्म - ऋतु

वसन्त ऋतु के अनन्तर ग्रीष्म-ऋतु का आगमन होता है । ग्रीष्म-ऋतु के आते ही सूर्य उग्र हो जाता है । सुरथोत्सव में वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वसन्त ऋतु के सहायक होने पर भी कामदेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के मदोन्नति को कम करते हुये विषपान करने में संलग्न वृषराशि-स्थित सूर्य ने उग्रता दिखलायी :—

मदप्रकर्षं मदनस्य मन्दयन्मधौ सहायेऽपि गृहीतकृत्तिकः ।
विषप्रपाणप्रवणः श्रितो वृषं प्रकाशयामास खरांशुरुग्रताम् ।।

(वही, ५/१६)

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गर्मी से स्त्रियों को वहुत कष्ट होता है, किन्तु चन्द्रमा उनको शीतलता प्रदान करता है । इस सम्बन्ध में कवि कहता है कि 'अत्यन्त कठोर तपते हुए सूर्य की किरणों से दिन में स्त्रियों के प्रति जो अपराध हुआ, चन्द्रमा ने रात्रि पाकर अमृत की किरणों को फैलाकर उस अपराध को एक साथ ही समाप्त कर डाला :—

दिवापराद्धं तुहिनेतरत्विषा मृगीदृशां यत्तपतातिकर्कशम् ।
निशाधिपेनैकपदेऽपि तन्निशामवाप्य लुप्तं किरतामृतच्छटाः ।।

(वही, ५/१९)

रात्रि में चन्द्रमा वधूओं को शीतलता प्रदान करता है किन्तु दिन में वधुयें शीतलता के लिए उपक्रम करती हैं । कवि कह रहा है कि 'मौलि श्री के पुष्प को कान में पहिने हुये तथा नवीन और लाल वर्ण की मल्लिका की माला धारण किये हुये एवं चन्दन से लेप किये हुये स्तन वाली वधूजन, ग्रीष्म ऋतु में कामदेव से सम्बन्धित शोक को तुरन्त मथ डाला :—

शिरीषपुष्पैरवसन्ति (तंसि) तश्रवा नवां वहन्पाटलिमल्लिकास्रजम् ।
वधूजनश्चन्दनचर्चितस्तनः शुचौ शुचं मङ्क्षु ममन्थ मान्मथीम् ।।

(सुरथोत्सव, ५/२०)

कवि का मन निदाघ की प्रचण्डता से ऊब रहा है, अतः उसने इस ऋतु का वर्णन कतिपय श्लोकों में ही किया है । कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में भी ग्रीष्म ऋतु का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है । ग्रीष्म ऋतु का संक्षिप्त वर्णन करते हुये कवि कहता है कि 'इसके अनन्तर ग्रीष्म-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋतु में होने वाली ऊष्मा से प्राणिमात्र के शरीर में अन्तर्दाह होने लगा, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शङ्का से युक्त सभी रस स्वेदाम्बु के व्याज से बाहर निकल पड़े :—

अथोष्मणि ग्रीष्मसमुत्थितेऽन्तर्देहं स्मारकन्दति देहभाजाम् ।
शङ्के समग्रोऽपि रसः सशङ्कः स्वेदाम्बुदम्भेन बहिर्बभूव ॥

(कीर्तिकौमुदी, ६/४१)

उपर्युक्त श्लोक में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुये कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से काव्य रसों को स्मरण किया है ।

ग्रीष्म ऋतु में दिन बहुत बड़े बड़े होते हैं, अतः कवि का कहना है कि ग्रीष्म-ऋतु के दीर्घ-दिनों में कामदेव को सम्यक् सफलता नहीं प्राप्त हो रही है । ग्रीष्म की प्रचण्डता के कारण, प्राणि मात्र को आश्रय देने वाली वृक्ष की छाया का वर्णन करते हुये, कवि कहता है कि अत्यन्त सघन वृक्षवाले उस बन की घोर छाया पुष्पों से तारकित हो रही है :—

दीर्घैर्निदाघस्य दिनैर्मनोभूरलब्धसिद्धिर्भजति स्म सम्यक् ।
वनस्य तस्यातिघनद्रुमस्य, च्छायातमीं तारकितां प्रसूनैः ॥

(वही, ६/४४)

इस प्रकार कवि का ग्रीष्म वर्णन स्वाभाविक एवं औचित्य पूर्ण प्रतीत होता है ।

३-वर्षा-ऋतु

वर्षा ऋतु का वर्णन करते समय कवि ने सर्व प्रथम निदाघ की प्रचण्डता से तप्त पृथ्वी को नवीन जीवन प्रदान करने वाली सुधा-स्यन्दनी जलधारा का वर्णन किया है । यह जलधारा सुनयनाओं के लिये प्रिय हो गयी है :—

कचेषु गृह्णन्कुचकुम्भयोर्लुठन्नितम्बबिम्बस्थितमम्बरं हरन् ।
तनूं च तन्वन्पुलकप्रसाधितां जलप्रवाहः सुदृशां प्रियोऽभवत् ॥

(सुरथोत्सव, ५/१८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आनन्द विभोर होकर कवि एक नवीन कल्पना की सृष्टि कर रहा है। उसे आश्चर्य भी हो रहा है कि दिशाओं में व्याप्त नील पर्वत, आकाश-मण्डल में स्थित नील मेघ और भूमण्डल पर फैले नीले अङ्कुरों के बीच अपने को देखने वाला व्यक्ति मानों विशालनीलमय पिजड़े के अन्तर्गत अनुभव करता हुआ सा विस्मित हो उठा है :—

नगैर्दिगन्ते जलदैर्नभस्तले नवाङ्कुरैर्भूवलये च मेचके ।
विशालनीलोपलपञ्जरोदरस्थितं जनः स्वं मनुते स्म विस्मितः ।।

(वही ५/२५)

पौराणिक उपाख्यान का सहारा लेकर कवि वर्षा ऋतु का वर्णन श्लेष लङ्कार के माध्यम से करता है। कवि का कहना है कि वर्षाकाल में अर्जुन वृक्ष आमोदित होते हैं, तथा लोक में वर्षा से रोगहरण वाली स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस समय सारे भुवनों में जल-वृष्टि होती है तथा हंस मानसरोवर का चले जाते हैं :—

कृतार्जुनामोदभरेण बिभृता सदागदावस्थितिहारिणीं दशाम् ।
अधार्तराष्ट्रं भुवनं वितन्वता पयोदकालेन वृकोदरायितम् ।।

(सुरथोत्सव, ५/२६)

संस्कृत के प्रायः अधिकांश कवियों ने वर्षा ऋतु के वर्णन प्रसंग में बादलों की उपमा हाथियों से दी है। किन्तु हमारे कवि ने इस परम्परा का निर्वाह नहीं किया है। बादलों से अमृततुल्य वृष्टि ही कवि के लिए सब कुछ है। कवि ने जलदवृष्टि से उत्पन्न प्राकृतिक सुषमा का मनोमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। निदाघ की प्रचण्डता समाप्त हुई है। वर्षा के कारण सारी सृष्टि को शान्ति मिली है। वर्षा-ऋतु के वर्णन में कवि का यही चरम लक्ष्य है।

४-शरद्-ऋतु

शरद्-ऋतु का चित्रण करने में कवि ने अपनी विशेष सहृदयता एवं सुरुचि का परिचय दिया है। वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद्-ऋतु का आगमन होता है। शरत्कालीन दृश्य को कवि ने अत्यन्त रसिकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ अनुप्रास, यमक तथा उपमालङ्कारों के माध्यम से चित्रित किया है। काव्यगत अलङ्कारों के अतिरिक्त हंसों के शब्दों में भी कवि को नूपुर की झन्कार सुनाई देती है। 'मानस-निवासी हंसो का चित्त कमलिनी से हट गया है। उनके मनोरम शब्द भूमण्डल पर पांव रखने वाली शरद् ऋतु के बजते हुए नूपुर की शोभा को प्राप्त कर रहे हैं :—

सरोजिनीसङ्गसमुक्तचेतसां, मनोरमामानसवासिनां स्वनाः ।
पदं दधत्याः शरदः शनैः शनैरशिश्रियन्नूपुरशिञ्जितश्रियम् ॥
(वही, ५/३६)

शरद्-ऋतु की शोभा चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों बढ़ा रहे हैं। कवि का कथन है कि ये चन्द्र तथा सूर्य भगवान् विष्णु के नेत्र हैं। 'मनीषियों का यह कथन सत्य हो गया है कि शरद्काल में विष्णु भगवान् जागृत रहते हैं क्योंकि चन्द्र तथा सूर्य रूपी उनके ये दोनों नेत्र अब विकसित हो रहे हैं :—

सुरारिशत्रुः शरदि प्रबोधिती—
त्यहो वचस्तथ्यमिदं मनीषिणाम् ।
तदक्षिणी चन्द्रदिवाकराविमौ
विकासमाजग्मतुरन्यथा कथम् ॥
(सुरथोत्सव, ५/३७)

विश्व पर शरद्-ऋतु का प्रभाव पड़ा है। अतः कवि कह रहा है कि इस ऋतु में मेघ चले जाते हैं तथा जल शुद्ध हो जाता है। मार्गों में अश्वारोही चलने लगते हैं। विष्णु भगवान् जागने लगते हैं तथा शरत्कालीन दिन निर्मल होते हैं :—

जलं प्रसन्नं जलदा निर्वातिताः
प्रवर्तिताश्चाध्वनि साधु सिन्धवः ।
गदाधरः स्वापपरः प्रबोधितः
शरद्दिनैर्निर्मलोतोचितम् कृतम् ॥
(वही, ५/३९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह शरद्-ऋतु धवल वस्त्र रूपी आकाश से सुशोभित है। उसके पास चामर रूपी काश विराजमान है तथा सुनयनों के रूप में कमल विकसित हो रहे हैं। इस प्रकार कवि को शरद्-ऋतु राजा की रानी के समान प्रतीत हो रही है :—

सुधांशुधामोज्ज्वलयाम्बरश्रिया
चकासती चामलकाश चामरैः।
विजृम्भिताम्भोरुहचारुलोचना,
नरेन्द्रनारीवशरद्व्यराजत ॥
(वही, ३४)

उपर्युक्त छन्द में यह ध्यान देने योग्य है कि शरद्-ऋतु को नारी के रूप में चित्रित किया गया है। शरद् की वधू रूप में कल्पना संस्कृत काव्य में कालिदास से ही चली आरही है। सर्व प्रथम कालिदास ने शरद् को वधू रूप में चित्रित किया है, यथा :– 'विकसित काश के परिधान धारण किये हुए, मस्त हंसों की बोली के सुन्दर नूपुर पहने हुए, पके हुए धान के मनोहर शरीरवाली एवं विकसित कमल रूप मुख वाली शरद् नवविवाहिता रूपवती वधू के समान आ पहुँची :—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ॥
(ऋतुसंहार,[१६] ३/१)

कालिदास के पश्चात् भारवि के काव्य में शरद् का चित्रण वधू रूप में प्राप्त होता है, यथा—'मृणालतन्तु रूप कुङ्कुम को, कुमदिनी के बन रूप वस्त्र को, एवं बाण के पुष्पों को धारण करती हुई शरद् रूपी वधू के कर कमलों का आलम्बन वर्षा ऋतु रूप वर ने किया:—

धृतबिसवलयावलिर्वहन्ती कुमुदवनैकदुकूलमात्तबाणा।
शरदमलतले सरोजपाणौ घनसमयेन वधूरिवाललम्बे ॥
(किरातार्जुनीय,[१७] १०/२४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माघ ने शिशुपालबध में शरद् की वधू अथवा अंगना रूप में कल्पना दो स्थलों पर की है, यथा –'जिनके कीर्तन से सम्पूर्ण पाप-पुञ्ज नष्ट हो जाते हैं, ऐसे भगवान् कृष्ण ने विकसित कमल रूपी नेत्रों वाली एवं नीचे गिरते हुए निर्मल वस्त्रों के समान श्वेत मेघों से युक्त शरद्-ऋतु को 'रैवतक' (राजा) के अङ्क में विराजमान स्त्री की भांति देखा:—

स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षत क्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव ।
शरदमच्छगलद्वसनोपमाक्षमधनामघनाशनकीर्तनः ॥

(शिशुपालबध,[१८] ६/४२)

अन्यत्र—'शरद्वधू ने वायु से उड़ाई हुई, नवीन कमलों की केसरो से उत्पन्न धूलि को परिहास की इच्छा से मानों कृष्ण की स्त्रियों के ऊपर विखेरने के लिए फेंक दिया :—

विलुलितामनिलैः शरदङ्गना नवसरोरुहकेशरसम्भवाम् ।
विकरितुं परिहासविधित्सया हरिवधूरिव धूलिमुदक्षिपत् ॥

(वही, ६/५२)

५-हेमन्त - ऋतु

कवि के ऋतु-वर्णन में वसन्त, ग्रीष्म तथा हेमन्त ऋतुओं का महत्वपूर्ण स्थान है । कवि ने हेमन्त ऋतु के वर्णन मे प्रमुख दो तथ्यों को प्रतिपादित किया है । सर्व प्रथम वह ऋतु की शीतलता पर दृष्टि-पात करते हुए, दूसरे ही क्षण हेमन्त ऋतु को कामियों के लिए उपादेय बताते हुए हमारे सामने उपस्थित होते हैं । हेमन्त में शीतल-जल का अनादर होता है । चन्दन-द्रव तो बिलकुल ही अच्छा नहीं लगता है । यद्यपि इस समय कौमुदी की छटा शरद्वत् नहीं रहती है तथापि ऋतु आनन्द दायक प्रतीत होती है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जलेषु शीतेषु मनागनादरो
न रोचते किंचन चन्दनद्रवः ।
निषेव्यते यत्र तथा न कौमुदी
मुदं ददाति स्म तदप्यसावृतुः ।।
(सुरथोत्सव, ५/४५)

कवि हेमन्तकालीन वैभव की प्रशंसा करते हुए आगे कहता है कि हेमन्त काल में बन्द कमरे में शयन, पास में धूमरहित अग्नि, काम के वशीभूत होकर श्यामा का आलिंगन, रक्त वस्त्रों का आच्छादन, मुख में कर्पूर तथा शरीर में अङ्गराग आदिक वस्तुएँ बड़े भाग्य से ही पुरुषों को प्राप्त होती हैं:—

गर्भागारे शयनमनलः सन्निधौ सन्नधूमः
श्यामाश्लेषः स्मरपरवशो रक्तवस्त्रावृत्तिश्च ।
कर्पूरश्रीर्वदनकमले कुङ्कुमैरङ्गरागो
भाग्यैरेतद्भवति भविनां हन्त हेमन्त काले ।।
(वही, ५/५०)

कवि ने हेमन्तकाल में होने वाले नायक-नायिकाओं के सम्भोग का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है । फलतः वर्णन में स्वाभाविक सरसता उत्पन्न हो गई है । हेमन्तकालीन शीतत्व का वर्णन इस सम्भोग वर्णन की अपेक्षा गौण हो गया है । हेमन्तकालीन सम्भोग वर्णन से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि हमारे कवि की दृष्टि में शृङ्गार रसराज है, जो ऋतु वर्णन के पथ पर अपनी तरंगों को आन्दोलित करते हुये सतत प्रवाहित हो रहा है ।

६-शिशिर-वर्णन

कवि के षड्-ऋतु वर्णन में शिशिर अन्तिम ऋतु है । उसने इस ऋतु को जड़ता का भाजन कहा है । इस काल में कमल अथवा कमला की उन्नति नहीं दिखाई देती है । यह ऋतु शीताधिक्य से प्राणियों को कंपाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। शीत के कारण इतनी अज्ञता बढ़ जाती है कि मानो यह शिशिर ऋतु पुष्प के स्थान पर सुगंधित द्रव्य के समान विद्वानों के स्थान पर अल्पज्ञों को प्रतिष्ठित करता है :—

ऋतुरुज्जगाम जडिमैकभाजनं
क्षममेतदत्र कमलोन्नतिर्न यत् ।
हृदयानि यस्तनुभृतां प्रकम्पय—
न्सुमनःपदेषु निदधाति बालकान् ॥
(सुरथोत्सव, ५/५१)

समग्र विश्व पर इस ऋतु का प्रभाव बतलाते हुये कवि कहता है कि शिशिर ऋतु में चन्द्र किरणें सौन्दर्य को प्राप्त करती हैं। कोयल धीरे-धीरे अमृत तुल्य शब्द करती है। आजकल चन्दनगिरि की हवायें चलती हैं। कामदेव का दक्षिण नेत्र शुभफल की सूचना देते हुये स्पन्दित हो रहा है :—

लभन्ते सौभाग्यं किमपि हरिणाङ्कस्य किरणाः
पिकाः शब्दायन्ते स्वगतममृतस्यन्दि च तदा।
चलत्यद्य श्वो वा पवनपृतना चन्दनगिरे—
रवामं कामस्य स्फुरति च शुभाशंसि नयनम् [६] ॥
(सुरथोत्सव, ५/५६)

शिशिर ऋतु का प्रभाव सामान्य जन पर भी पड़ता है। इस ऋतु में यात्रा करने वाला पथिक छोटे-छोटे दिनों को किसी प्रकार व्यतीत करता है और विरह के अत्यधिक ताप के कारण वह पथिक ग्रीष्म के समान शिशिर ऋतु को समझता है। विरह के कारण पथिक को शिशिर कालीन दिन ग्रीष्म के समान दीर्घ मालूम होते हैं। यद्यपि यह वास्तविकता नहीं है कि उस समय दिन दीर्घ होते हैं। पथिक की विरहावस्था का वर्णन अतिशयोक्ति अलङ्कार के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपि लघूनलघूनिव वासरान्—
गमयता पथिकेन कथंचन ।
विरहतापहतापघनश्रिया
शुचिसमः शिशिरर्तुरमन्यत ।।
(वही, ५/५३)

कवि सोमेश्वरदेव ऋतु-वर्णन को समाप्त करते हुये अन्तिम छन्द के माध्यम से कह रहे हैं कि अनन्त आकाश मार्ग में निरन्तर यात्रा करने वाले सूर्य के पांव पर वरुण देवता के नगर-वासियों द्वारा अर्घदान दिये जाने पर उनके पाद की गर्मी शान्त होती है। इसे देख कर कि अब ऋतु-चक्र की कल्याणमयी मूर्ति हो रही है, राजा के द्वारा भावी कार्य की सिद्धि समझी जाने लगी :—

अर्घाम्भोभिर्वरुणनगरीवासिनां वासरेन्द्रे,
पादोष्माणं शमयति वियद्वर्त्मखेदोपनीतम् ।
सर्वर्तूनां व्यवसितिमिति श्रेयसीं वीक्ष्य साक्षा—
त्सिद्धा मेने विबुधविभुना भाविनी कार्यसिद्धिः ।।
(वही, ५/५७)

इस प्रकार कवि सोमेश्वरदेव ने सुरथोत्सव महाकाव्य में षड्-ऋतु वर्णन का सामयिक चित्रण प्रस्तुत किया है। ऋतु-वर्णन में कवि प्रकृति से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। ऋतुओं का सम्बन्ध प्रकृति से होने के कारण यह प्रभाव स्वाभाविक ही है। उपर्युक्त विवेचन में कतिपय उदाहरण हृदयस्पर्शी हैं। महाकाव्यों की प्राचीन परम्परा को संजोते हुये कवि ने नवीनता को भी प्रश्रय दिया है। निश्चय ही कवि का यह बर्णन सरस एवं हृदयग्राही है।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि कवि सोमेश्वरदेव कृत वर्णन से उनके महाकाव्यों में सरसता एवं रोचकता का स्पन्दन हुआ है। भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष से प्रभावित होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुये भी उन्होंने वैदुष्य प्रदर्शनार्थ प्राकृतिक वस्तुओं के साथ अपनी बौद्धिक विशेषताओं अथवा अधीत विषयों की बहुज्ञता का परिचय नहीं दिया है। यद्यपि वस्तु-वर्णन के लिए महाकाव्य के कथानक में परिवर्तन किया गया है तथापि यह परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। वस्तु का अति विस्तार पूर्वक वर्णन न होने के कारण उसमें रोचकता एवं आकर्षण बना रहा है। **कीर्तिकौमुदी** के वस्तु-वर्णन में तो कालिदास का स्मरण सहज ही हो जाता है। भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसी क्लिष्टता और पौराणिक व्युत्पत्ति का स्पर्श होने पर भी सुरथोत्सव का वस्तु-वर्णन हृदय संवेद्य हैं। सूर्यास्त-चन्द्रोदय आदि के वर्णन में कवि की शक्ति अपने सुन्दरतम रूप में प्रस्फुटित हुई है। कवि सोमेश्वरदेव के वर्णन के सम्बन्ध में श्री ए० वी० काथवटे का मत उपयुक्त ही प्रतीत होता है :—

The author, Someshwardeva, possessed to a certain extent 'the vision and the faculty divine'. Whenever he has got anything new to say, and he frequently has it, his expression is happy and full of feeling. The dream of Virdhaval, containing the wail of the guardian deity of the kingdom of Gujarat for her past glory, is a splendid composition. The descriptions of the morning and evening and of the seasons are also remarkable.[20]

अभिप्राय यह है कि **कीर्तिकौमुदी** के कतिपय वर्णन बड़े ही मार्मिक तथा भावपूर्ण हैं। उनमें से राज्य-लक्ष्मी के द्वारा गुर्जर देश के पूर्व-वैभव का वर्णन बहुत ही मार्मिक है। इसके अतिरिक्त प्रातः, सायं तथा ऋतुओं के वर्णन भी हृदयहारी तथा सरस हैं।

वस्तु वर्णन में कवि ने प्रायः अभिधावृत्ति के द्वारा वाच्य रूप में भाव को व्यक्त किया है। कहीं-कहीं व्यञ्जनावृत्ति का वैचित्र्य भी प्रकट हुआ है। प्रस्तुत से अप्रस्तुत की योजना करते समय प्रस्तुत प्रधान रहा है और अप्रस्तुत गौण। वर्णन किसी पात्र के मुख से हुआ है अथवा स्वयं कवि ने किया है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ - सूची

1. नगरार्णवशैलर्त्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ।।
दण्डी, काव्यादर्श, १/१६ तथा १७, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८ ई० ।

2. क–भोजदेव शृङ्गारप्रकाश खण्ड २, पृष्ठ ४७९, मैसूर, १९६३ ई० ।
ख-विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३२२, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७ ई० ।

3. राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय नवम-पृष्ठ ४५, तृतीय संस्करण, बड़ौदा, १९३४ ई० ।

4. वही, पृष्ठ ११.

5. राजशेखर. काव्यमीमांसा, अध्याय नवम, पृष्ठ ४५.

6. कुकविर्विप्रलम्भेऽपि रसवत्तां निरस्यति ।
अस्तु वस्तुषु मा वा भूतकविवाचि रसः स्थितिः ।।
(वही, पृष्ठ ४६)

7. "यथा तथा वाऽस्तु वस्तुनो रूपं, वक्तृ प्रकृति-विशेषायत्ता तु रसवत्ता । तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति । मध्यस्थस्तु तत्रोदयास्ते ।" इति पाल्यकीर्तिः ।।
"विदग्धभणितिभङ्गिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं न नियतस्वभावम्"
इत्यवन्ति सुन्दरी । तदाह—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्र गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये ।
स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दस्तु दोषाकरमाह धूर्तः ।।'

'उभयमुपपन्नम्' इति इति यायावरीयः ।।

राजशेखर, काव्यमीमांसा, पृष्ठ ४६ .

8. वही, पृष्ठ ४५ व ४६ .

9. पुरोपवनराष्ट्रादिसमुद्राश्रमवर्णनैः ।
देशसम्पत्प्रबन्धस्य रसोत्कर्षाय कल्पते ।।
ऋतुरात्रिन्दिवार्केन्दूदयास्तमयवर्णनैः ।
कालः काव्येषु सम्पन्नो रसपुष्टिं नियच्छति ।।
राजकन्याकुमारस्त्री सेनासेनाङ्गभङ्गिभिः ।
पात्राणां वर्णनात्काव्ये रसस्रोतोऽधितिष्ठति ।।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवाः ।।
विप्रलम्भा विवाहाश्च चेष्टाः काव्ये रसावहाः ।।

भोजदेव, सरस्वती कण्ठाभरणम्, ५/१३०-१३३.

10. दिल्ली से उत्तर पूर्व और मेरठ से २२ मील के अन्तर पर गङ्गा के किनारे बसा हुआ हस्तिनापुर नगर राजाहस्तिन् के द्वारा स्थापित किया गया था, जो कालान्तर में कौरवों की राजधानी थी ।

11. चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह (१०९४-११४३ ई०) द्वारा सिद्धसर निर्मित करवाया गया था ।

12. सिद्धसर के तट पर स्थित कीर्तिस्तम्भ आजकल उपलब्ध नहीं है । सिद्धसर अब मिट्टी से भर गया है । फिर भी उसको देखने से मालूम होता है कि यह मीलों लम्बी झील थी । अनुमानतः कृषि एव उद्यान के लिए इससे जल लिया जाता था ।

13. किन्नर अर्धदैविक जाति है, जिसका मुख अश्व का तथा शरीर मनुष्य का होता है ।

14. घनतुहिनविशोभिशृङ्गमुच्चैरुपरि विवर्णनवाम्बुवाहमेतत् ।
भजति भुजगराजभोगशय्यासुखशयितासुरवैरिणो विलासम् ।।

(सुरथोत्सव, ४/३४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15. सुरथोत्सव, ६/१, २,१० तथा १२ ।
16. कालिदास, ऋतुसंहार भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ संवत् २०१९ ।
17. भारवि किरातार्जुनीय, शारदा भवन, काशी १९३१ ई० ।
18. माघ, शिशुपालवध, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१ ई० ।
19. सुरथोत्सव का यह श्लोक (५/५६) उल्लाघराघव के द्वितीय अङ्क (२/३२) में भी प्राप्त होता है ।
20. A. V. Kathvate's Introduction to the first edition of Kirtikaumudi, Bombay, 1883, Page 47.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ अध्याय

अलङ्कार-योजना

साहित्य में अलङ्कार-विधान

संस्कृत-साहित्य को विभूषित करने वाले अलङ्कारों की धारा भामह से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ पर्यन्त स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होती रही है। समय समय पर काव्य में अलङ्कारों के स्थान के सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों के दृष्टिकोण भी परिवर्तित होते रहे हैं। इस विचार-धारा के प्रबल एवं प्रथम समर्थक आलङ्कारिक भामह हैं। दण्डी, उद्भट, रुद्रट एवं प्रतिहारेन्दुराज भी इसी मत के अनुयायी हैं। दण्डी के मत काव्य को सुन्दर बनाने वाले धर्म अलङ्कार हैं। रुद्रट तथा प्रतिहारेन्दुराज ने भी अलङ्कारों को ही प्रधानता दी है। इस सम्प्रदाय के अनुसार अलङ्कार ही काव्य का जीवातु है। अग्नि की उष्णता के सदृश अलङ्कार काव्य का प्राणाधायक तत्व है। अग्नि को उष्णता रहित मानना जिस प्रकार उपहासास्पद है, उसी प्रकार अस्वाभाविक है काव्य को अलङ्कारहीन मानना। मम्मट के काव्य-लक्षण के खण्डन कर्ता जयदेव ने इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में कहा है कि जो विद्वान् अलङ्कार से हीन शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को भी अनुष्ण क्यों नहीं मानता? अलङ्कारहीन काव्य और अनुष्ण-अग्नि एक ही कोटि की वस्तुयें हैं, जिसे केवल प्रमादी ही सच्चा मान सकता है :—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थवनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

(चन्द्रालोक, १/८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि अलङ्कारिक भामह के मतानुसार अलङ्कार एवं उसकी प्राणभूत वक्रोक्ति ही काव्य-सौन्दर्य का सर्वस्व है । काव्य कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो, स्त्री मुख की भांति भूषण-सज्जा के अभाव में उसमें कमनीयता का आधान नहीं हो सकता है ।

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् ।

(काव्यालङ्कार[२], १/१३)

भामह की ही भांति दण्डी ने भी काव्य में अलङ्कारों का प्राधान्य स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में अलङ्कार काव्य के शोभाधायक धर्म हैं[३]। किन्तु भामह की अपेक्षा उनका दृष्टिकोण किञ्चित् व्यापक प्रतीत होता है, क्योंकि अलङ्कारों के प्राधान्य के साथ ही साथ गुण एवं रस का महत्व भी उन्हे मान्य है । उनकी दृष्टि में वाक्य तथा वस्तु (शब्द और अर्थ) में रस की स्थिति होती है और माधुर्य गुण रस युक्त काव्य को कहते है[४] । किन्तु युग की सीमाओं में दृढ़बद्ध दण्डी ने भी रसभावादि का अन्तर्भाव रसवत् प्रेय आदि अलङ्कारों में ही किया है[५] । भामह वक्रोति के अभाव में हेतु, सूक्ष्म एवं लेश जैसे अलङ्कारों को अलङ्कार संज्ञा से अभिहित करने के पक्ष में नहीं हैं, किन्तु दण्डी ने उन्हें 'वाचाममुत्तमभूषणम्' कह कर उनकी आलङ्कारिकता स्वीकार की है[६] । वक्रोक्ति को काव्य का आत्मभूत न मानकर वाङ्मय का एक प्रकार स्वीकार कर 'स्वभावोक्ति' अथवा 'जाति' को काव्य की 'आद्यालङ्कृति' के रूप में प्रतिष्ठित किया है[७] । वक्रोति, स्वभावोक्ति, गुण एवं रस के सम्बन्ध में भामह और दण्डी का पूर्वोक्त विचार वैभिन्न्य काव्यालोचना के विकास का सूचक है । किन्तु यह विकास काव्यालोचना की बहिर्मुखी चेतना की परिधि में है क्योंकि भामह की ही भांति दण्डी ने भी शब्दार्थ को ही अलङ्कार्य एवं काव्यालङ्कारों को काव्य-सौन्दर्य का कारण स्वीकार किया है । निष्कर्ष रूप में दण्डी के मत में भी काव्य की अमरता या कल्पान्तर स्थायिता सदलङ्कारता में ही पर्यवसित होती है :—

"काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति"[८]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलङ्कार के सम्बन्ध में वामन के विचार, दण्डी की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। उन्होंने सर्वप्रथम काव्य की आत्मा की चर्चा करते हुये काव्य में अलङ्कारों एवं गुणों के परस्पर आपेक्षिक महत्व पर विचार किया है। अलङ्कार शब्द वामन की परिभाषा में—'सौन्दर्यमलङ्कारः' अर्थात् अलङ्कार सौन्दर्य का पर्याय है।[९] स्वभावतः उसमें गुण एवं अलङ्कार दोनों का ही समावेश हो जाता है। वामन की विचारधारा में अलङ्कारों और गुणों का आपेक्षिक महत्व वही है जो चित्र में क्रमशः रंगों और रेखाओं का होता है। जिस प्रकार आकृति की रचना करने वाली रेखायें चित्र के सौन्दर्य का आधार होती हैं और रंग उसके सौन्दर्य के उद्बर्धक होते हैं उसी प्रकार काव्यकृति के सौन्दर्य का आधार रीतियों के आवश्यक तत्वस्वरूप काव्यगुण है और काव्यालङ्कार केवल उस सौन्दर्य के उपस्कारमात्र हैं। इस प्रकार वामन के मत में यद्यपि गुग तथा अलङ्कार दोनों ही सौन्दर्य-सृष्टि के माध्यम हैं तथापि गुण, यौवन की भाँति अन्तरंग, नित्य[१०] तथा शोभा धर्म हैं अर्थात्, उनकी स्थिति से सौन्दर्योत्पादन सम्भव है[११]। अलङ्कार अनित्य, वाह्य तथा अतिशायी धर्म हैं, उनकी स्थिति से सौन्दयोत्पादन सम्भव नहीं है[१२]। दूसरे शब्दों नें कहा जाता है कि काव्य के माधुर्यादि गुण रमणी के लावण्यादि गुण की भांति है, जिसके अभाव में अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कार वैसे ही निःश्रीक प्रतीत होते हैं जिस प्रकार लावण्यादि के अभाव में रमणी के कटक, कुण्डलादि अलङ्कार हतप्रभ प्रतीत होते हैं। अतः वामन की विचारधारा में सौन्दर्य विधान की दृष्टि से गुण की अपेक्षा अलङ्कार की कोटि हीन है। किन्तु वामन के उत्तरवर्ती उद्भट, रुद्रट, कुन्तक आदि अलङ्कारिकों ने रसादि को भामह की भाँति रसवदादि की शृङ्खला में उपनिबद्ध कर अलङ्कार सम्प्रदाय की मान्यता को पुनः स्थापित किया है। आचार्य रुय्यक के शब्दों में निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि "तदेवमलङ्कारा एवं काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्"[१३] अर्थात प्राचीन आलङ्कारिकों की दृष्टि में काव्य में अलङ्कार तत्व ही प्रधान है।

किन्तु कालक्रम से यह धारणा शनैः शनै विगलित होने लगी। साहित्य क्षेत्र में रसवाद व ध्वनिवाद का नवोन्मेष होते ही आलङ्कारिकों का अलङ्कार के प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो गया, साथ ही काव्य में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका एक निश्चित स्थान भी नियत हो गया । ध्वनिवादी आचार्यों ने अलङ्कार को काव्य का अस्थिर एवं गुणों को उस काव्य का स्थिर धर्म स्वीकार किया है । काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य है परन्तु अलङ्कार अपरिहार्य धर्म नहीं है । वे केवल अलङ्कार्य (रस) के उत्कर्षाधायक तत्व हैं, जीवनधायक तत्व नहीं । प्रमुख रसध्वनिवादी आचार्य मम्मट ने "अनलङ्कृती पुन: क्वापि" लिखकर अलङ्कार रहित को भी काव्य स्वीकार किया है । ध्वनिवादी आचार्यों ने अलङ्कारों का लक्षण पुर्वोक्त दृष्टिकोण से किया है[१४] ।

अलङ्कार बहुल्य से कहीं काव्य का आत्मतत्व रस उपेक्षित न हो जाये, इस सम्बन्ध में भी ध्वनिवादी आचार्य सचेष्ट हैं । काव्य में किस प्रकार की अलङ्कार-योजना रसोत्कर्ष में सहायक हो सकती है । इस सम्बन्ध में आनन्द-वर्धन ने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके मतानुसार रसानुभावक वस्तु को भाषा में प्रकट करते समय बहुधा परिश्रमसाध्य शब्दालङ्कारों का प्रयोग ध्वन्य को ध्वनित करने में सहायक नहीं होता है । विशेषत: शृङ्गार रस के अङ्गी होने पर एक रूपानुबन्ध वाला अनुप्रास तथा विप्रलम्भ में यमकादि का निबन्धन रस का प्रकाशक नहीं होता है[१५] क्योंकि ये अलङ्कार यत्नसाध्य हैं । अतएव सहृदय और कवि दोनों का अवधान खण्डित हो जाता है । यद्यपि स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त अलङ्कार से काव्य के वाह्यरूप की सौन्दर्य-वृद्धि हो जाती है तथापि यह कवि कर्तव्य है कि वे यमकादि के अन्य वैचित्र्य-मुरजबन्ध गौमूत्रिका, प्रतिलोमानुलोमपाद, श्लोकावृत्ति, संचुटक, सर्वतोभद्र तथा भगश्लेष आदि कष्ट साध्य शब्दालङ्कारों की उपेक्षा करें । क्योंकि यह अनुभव सिद्ध तथ्य है कि पूर्वोक्त शब्दालङ्कारों का प्रयोग बिना पृथक मानसिक श्रम सम्भव नहीं है। यह मानसिक श्रम कवि के मन से कवि प्रतिभा द्वारा साक्षात्कृत रसानुभावक वस्तु को हटा देता है[१६] । इसके विपरीत जो शब्दालङ्कार क्लिष्ट न हो, अपने कथारस की अपेक्षा अधिक ऊपर उठने की चेष्टा न कर रहे हों, अपितु रस-चर्वणा में सुन्दर सुखानुभूति प्रकट करने की शक्ति रखते हों उन अनुप्रास आदि का त्याग नहीं करना चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार आनन्दवर्धन केवल उन्हीं अलङ्कारों को ग्राह्य स्वीकार करते हैं जिनका प्रयोग रसाक्षिप्ततया बिना किसी पृथक् प्रयत्न के किया जाये[१७]। इस प्रकार के अलङ्कार रूपकादि अर्थालङ्कार हैं[१८]। विभाव इत्यादि की संघटना के अवसर पर ये अलङ्कार बिना पृथक् प्रयत्न के कवि के अन्तःकरण में स्फुरित हो जाते हैं। कवि के लिए उनकी उपेक्षा करना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार वे रसाभिव्यञ्जना के लिए अनिवार्य सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि रसानुभावक वस्तु में प्रधानतम तत्व केवल ध्वनि ही है तथा ध्वन्यार्थ विशेष प्रकार के उन वाच्यर्थों से ध्वनित होता है जिनको तदर्थक शब्दों से प्रकट किया जाता है। इस प्रकार के वाच्यार्थ ही अर्थालङ्कार हैं। अतएव इन अर्थालङ्कारों का प्रयोग आवश्यक है। किन्तु इन अर्थालङ्कारों का प्रयोग भी काव्य में अङ्ग रूप से अपेक्षित है, अङ्गी रूप में नही। अर्थात् रूपकादि की विवक्षा रस परत्वेन हो, समय पर उनका ग्रहण, अनवसर पर त्याग तथा कहीं भी उनका निर्वाह दूर तक नहीं किया जाना चाहिए[१९]। इस प्रकार स्पष्ट है कि आनन्दवर्धन की अलङ्कार-योजना में केवल वही अलङ्कार ग्राह्य है, जो रसाभिव्यञ्जक हैं। अतएव महाकवियों का कर्तव्य है कि वे शक्ति होने पर भी रसानुगुणता के अनुसार ही अलङ्कारों की योजना करें[२०]।

कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में अलङ्कार-योजना

यद्यपि सोमेश्वरदेव का अलङ्कार-विषयक कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है तथापि कीर्तिकौमुदी के आधार पर सैद्धान्तिक रूप में वह ध्वनिवादी विचार-धारा के समर्थक प्रतीत होते हैं। उन्होंने अलङ्कार, गुण, रीति एवं रस का वही महत्व स्वीकार किया है जो रसवादी आचार्यों को अभीष्ट है अर्थात् उन्होंने रस को काव्य की आत्मा एव अलङ्कार को उसके अलङ्करण रूप में स्वीकार किया है किन्तु कवि का सुरथोत्सव महाकाव्य विदग्धमण्डना नारी की भांति शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों से ही विभूषित है। इस प्रकार कवि सोमेश्वरदेव दोनों ही विचारधाराओं के पोषक प्रतीत होते हैं। यहां पर उनके अलङ्कारों का एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दालङ्कार

१-अनुप्रास

अनुप्रास सर्व रचना-सुलभ अलङ्कार है। सुरथोत्सव के तृतीय तथा चतुर्थ एवं कीर्तिकौमुदी के अष्टम सर्ग में कवि ने अनुप्रास का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अन्य सर्गों में इतस्ततः इसका प्रयोग स्फुट रूप से हुआ है। कवि की यह अनुप्रास-प्रियता कहीं भी रस-सिद्धि में बाधक नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि अनुप्रास का निर्वाह अत्यधिक दूर तक नहीं किया गया है, तथा उस अनुप्रास का वैचित्र्य शृङ्गार या करुण रस में स्फुरित नहीं हुआ है। वस्तु-वर्णन में अवश्य उससे सहायता ली गयी है। कीर्तिकौमुदी में नगर का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि अनहिलवाड़ के इस तडाग की दीर्घ लहरियों में मानो आकाश व्याप्त हो रहा है, क्योंकि वह विशाल तारा मण्डल जो कि तीव्र सूर्यताप से संतप्त हो कर चञ्चल हिमपिण्डों के समान, अत्यन्त स्वच्छ फेनपिण्डों के बहाने इस तडाग में विहार कर रहा है:—

अलघुलहरिलिप्तव्योमभागे तडागे,
तरलतुहिन पिण्डापाण्डुडिण्डीरदम्भात्।
तरुणतरणितापव्यापदापन्नमुच्चै-
रिह विहरति ताराचक्रवालं विशालम्॥
(कीर्तिकौमुदी, १/८०)

कीर्तिकौमुदी के अतिरिक्त सुरथोत्सव में राजा सुरथ की वीरता का वर्णन करते हुयें कवि कहता है कि 'राजा ने आक्रमणकारी राजाओं के देदीप्यमान मणि मण्डितमस्तकों को अपने बाण-दण्डों से दर्पीले फणियों के देदीप्यमान फणों के समान नत बनाया :—

प्रकुर्वतामाक्रमणं नृपाणां दर्पोल्वणानां फणिनामिवैषः।
शिरांसि राजन्मणिमण्डनानि निस्त्रिंशदण्डेन नतिं निनाय॥
(सुरथोत्सव, १/८५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत स्थल के प्रथम उद्धरण में सिद्धसरोवर तथा द्वितीय उद्धरण में राजा सुरथ की वीरता का वर्णन अनुप्रास के माध्यम से किया गया है। अनुप्रास की उपस्थिति से एक विचित्र स्वर-माधुर्य उत्पन्न हो गया है।

२-यमक

शब्दालङ्कार के अन्तर्गत कवि ने अनुप्रास के अनन्तर यमक को महत्वपूर्ण मान्यता प्रदान की है। दोनों ही महाकाव्यों के अनेक सर्गों में इस अलङ्कार को चित्रित किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस अलङ्कार की योजना से विषय-वर्णन में चारुता उत्पन्न हुई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दोनों ही महाकाव्यों का ऐसा कोई सर्ग नहीं है, जहाँ यमक की योजना न की गई हो। कीर्तिकौमुदी की अपेक्षा सुरथोत्सव में यमक के अधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं तथापि कीर्तिकौमुदी के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैः—

न मानसे माद्यति मानसं मे, पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम् ।

अच्छोदमच्छोदकमप्यसारं, सरोवरे राजति सिद्धभर्त्तुः ।।

(कीर्तिकौमुदी,१/७८)

अर्थात् अणहिल्लपत्तन में सिद्धराज निर्मित सिद्धसर सुशोभित रहा है, जिसके कारण मानसरोवर में मेरा मन मतवाला नहीं होता, पम्पा सरोवर भी प्रमोद नहीं देता है और अच्छोद सरोवर तो सार रहित प्रतीत होता है। कीर्तिकौमुदी का ही एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत हैः—

कृतविश्वमुदाऽनेन दानेन प्रतिवासरम् ।।

सुतेन जनता तेन, तातेन च समृध्यते ।।

(वही, २/७९)

अर्थात् उन पिता एवं पुत्रों के द्वारा जनता समृद्ध बनाई जा रही है, जिन्होंने प्रतिदिन दिये जाने वाले दान के द्वारा समस्त संसार को (मु)दित किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत प्रथम उदाहरण में 'मानसे' 'पम्पा' तथा 'अच्छोद' शब्दों के द्वारा यमक की प्रतीति करायी गयी है। यमक से उत्पन्न ध्वनि अह्लादकारी प्रतीत होती हैं। दूसरे उदाहरण में 'दानेन' तथा 'तेन' शब्दों के द्वारा सौन्दर्य की वृद्धि हुई है।

सुरथोत्सव के तृतीय, चतुर्थ तथा दशम सर्गों में यमक की सर्वाधिक योजना की गई है। इन्हीं सर्गों में से एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

सरससारससारमवेक्ष्यतामिह वराहवराहवराजिते ।
सकपि कङ्कपिकं कपिलैर्वृषैर्वनमही न मही न महीयसी ।।

(सुरथोत्सव, ४/१८)

यहां पर 'ससार' 'वराह' 'कपि' तथा 'मही' पदों द्वारा यमक की सृष्टि सुन्दरता पूर्वक हुई है। इसी प्रकार अन्यत्र भी इसके सुव्यस्थित एवं उपयुक्त उदाहरण प्राप्त होते हैं।

३-श्लेष

श्लेष अलङ्कार का प्रयोग कवि सोमेश्वरदेव ने दोनों ही महाकाव्यों में निपुणता पूर्वक किया है। कई स्थलों पर श्लेष के माध्यम से सुन्दर दृश्यों की सृष्टि हुई है :—

सशङ्ख-चक्रः प्रथितप्रसूतावतारशाली कमलाभिरामः ।
स एष कासारशिरोवतंसः,कंसप्रहर्तुः प्रतिमां बिभर्ति ।।

(कीर्तिकौमुदी, १/७७)

सरस्वतीं शश्वदुपासते ये गुह्णन्ति नार्थानपि ये परेषाम् ।
वृत्ताश्च वृत्तैर्यतिसेवितैर्यैः किं मेध्यमेध्योऽप्यपरं कविभ्यः ।।

(सुरथोत्सव,१/३७)

प्रस्तुत स्थल के प्रथम उदाहरण से ज्ञात होता है कि सिद्धसरोवर कंस को मारनेवाले कृष्ण के समान प्रतीत होता है। इस छन्द के अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद द्वयर्थक है। इस प्रकार श्लिष्ट पदों के माध्यम से कृष्ण के सौन्दर्य का आधान सिद्ध सरोवर में किया गया है। दूसरे उदाहरण में 'नार्थानपि' पद के द्वारा श्लेष का प्रयोग किया गयाहै। इस प्रकार श्लिष्ट प्रयोगों से अर्थ दुर्बोध नहीं हुआ है, अपितु सौन्दर्य की सृष्टि हुई है।

'चित्रालङ्कार'

चित्रकाव्य अवरकोटि का काव्य है फिर भी संस्कृत महाकाव्यों में इसे स्थान मिला है। कवि सोमेश्वर देव ने सुरथोत्सव में इस काव्य को प्रस्तुत किया है। वास्तव में वैदर्भी रीति में रचित कवि का कीर्तिकौमुदी महाकाव्य कालिदास द्वारा रचित काव्य परम्परा में तथा कालिदास के काव्य से भिन्न सुरथोत्सव महाकाव्य गौडी रीति में रचित किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध की कोटि में आता है। भारवि तथा माघ ने जिस पाडित्य का प्रदर्शन अपने अपने महाकाव्यों में किया है, ठीक इसी प्रकार का प्रयत्न कवि सोमेश्वरदेव ने भी सुरथोत्सव महाकाव्य से किया है। क्योंकि महाकाव्य का सामान्य कथानक भी भाषागत दुरुहता से अछूता नहीं है। सुरथोत्सव की भाषा किरातार्जुनीय तथा शिशुपाल बध महाकाव्यों की अपेक्षा सरल है तथापि प्राय: श्लेष एव अप्रचलित शब्दावली का प्रयोग किया गया है। सुरथोत्सव शब्दालङ्कार से ओतप्रोत है, जिसके दशम सर्ग में भवानी तथा दैत्य का युद्ध-वर्णन विभिन्न प्रकार के चित्रालङ्कारों के माध्यम से चित्रित किया गया है। किरातार्जुनीय तथा शिशुपाल बध के युद्ध वर्णन भी चित्रालङ्कारों के द्वारा वर्णित किये गये हैं। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन परम्पराओं से प्रभावित होकर कवि ने चित्रकाव्य का आश्रय युद्ध-वर्णन के लिए किया है और उस शब्द वैचित्र्य में युद्ध-वैचित्र्य को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। सुरथोत्सव के दशम सर्ग के चित्रालङ्कार इस प्रकार हैं:—

सुरथोत्सव के चित्रालङ्कार (दशम सर्ग)

द्वयक्षर श्लोक

नूतनोन्नतिनानन्तनतेनानीतनीतिना।
नितान्तं तेन तातेन ततनूतनुतानुता।। २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोकिलालककोलाल्लिकुलकालाः किलाललुः ।
काकाः कङ्कालकीलालं कलाकलकुलाकुले ॥ ७४ ॥

प्रतिलोमानुलोमार्ध

वारणाक्षतभूरीभे भेरी भूतक्षणारवा ।
वादिता परमे ग्रासं संग्रामे रपता दिवा ॥ ५५ ॥

अतालव्य

मार्गणैर्मार्गिणा एव भग्ना न तु भटैर्भटाः ।
पताकास्वेव नो तेषामाकम्पो मानसेष्वभूः ॥ ५९ ॥

सर्वतोभद्र

रङ्गादाममदागारं गात्रमाक्षक्षमात्रगाः ।
दा मासाररसामादामक्षरक्ष क्षर क्षम[21] : ॥ ७२ ॥

प्रतिलोमानुलोमश्लोक

सामगा जयभावेन राकाभाशु रता महे ।
हेमतारशुभाकारा न वेभाय जगाम सा ॥ ८० ॥

अर्थचतुष्टयवाची

चण्डतुण्डभिदादक्षः कृतपुष्करसंगतिः ।
सदारामरुचिर्देव्याः खड्गः शुक इवाबभौ ॥८२ ॥

असंयोग

दिशो दशापि निशितैरपिधाय शिलीमुखैः ।
स चचाल दुराचारो गिरिराजसुतामभि ॥ ८५ ॥

प्रतिलोम्येनार्थन्तरश्लोक

नादबन्तमहीरावा धावंधावमराक्षसा ।
भामहेतनतायासा माया सार ततागसम् ॥ ८८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोमूत्रिकाबन्ध

अजरोरगराजोरः कम्पिभिः सगणं शरैः ।
प्रजहार दुराकारः सोऽपि केसरिणं खरैः ॥ ९१ ॥

एकाक्षर

रेरे रुरोरुरूरुरोररेररिराररौ ।
रैरी रीरारररारीरारूरीरीरौऽरुरार रुक् ॥ ९५ ॥

युग्म

अस्त्रघातानियं दैत्यै तदेन वित्त पातिनन् ।
इत्याचचक्षिरेऽन्योन्यं रणे लब्धक्षणा गणाः ॥ ९६ ॥

इति संतोषयामास पार्वतीविक्रमं वदन् ।
विकासिवदनेन्दु श्रीमैंनाको नगनायकम् ॥ १०८ ॥

गूढचतुर्थपाद

सैन्यं तदिति पार्वत्याः परिताप्य भुजोष्मणा ।
विखण्डितशिरः शीघ्रं पपात दितिजो भुवि ॥ ९९ ॥

निरोष्ठय

चिराधिगतकालेन नीतः कालेन निश्चितम् ।
सोऽरण्यानीं यथा चण्डीं चण्डकेसरिकेतनाम् ॥ १०३ ॥

अर्धभ्रमः

द्वन्द्वे बलानि सा भेजे द्वेधा भूतान्विताशुभे ।
वभूववधपातासा तालावगतधन्विभि(नि) ॥ १०५ ॥

संमुद्गकबन्ध

नर्यैविना शितं नेत्रा सकलंवैरभावितैः ।
नर्यैविनाशितं नेत्रा सकलम्वैरभावि तैः ॥ ११० ॥

संपुटयमक

नागान्निरापत्परमं विकारं नागान्निरापत्परमं विकारम् ।
सहस्रनेत्रो रुरुचे हतेन सहस्रनेत्रोऽरुरुचेह तेन ॥ ११४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार उपर्युक्त १६ प्रकार के चित्रालङ्कार सुरथोत्सव के दशम सर्ग में प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इसी सर्ग में ही तीन बार कुलकों का भी प्रयोग हुआ है[२२]। इसी प्रकार किरातार्जुनीय महाकाव्य का १५ वाँ सर्ग भी चित्रकाव्य के माध्यम से ही लिखा गया है और उसका कथानक किरात तथा अर्जुन से होने वाले युद्ध- वर्णन से सम्बन्धित है। भारवि ने इस सर्ग में चित्रालङ्कारों के माध्यम से अपना पाण्डित्य प्रदर्शन किया है। भारवि के ही समान श्रीमाल निवासी माघ के शिशुपालबध का १९ वाँ सर्ग भी चित्रालङ्कारों से युक्त है। युद्ध-वर्णन परक इस उन्नीसवें सर्ग में शिशुपाल क्रोधित होकर श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न पर आक्रमण करने के लिए चलता है और शिशुपाल की वह विकट शस्त्रसज्जित सेना चित्रकाव्य के समान ही दुर्जेय दिखाई दे रही है :—

सकारनानारकास, कायसाददसायका।
रसाहवावाहसार, नादवाददवादना।। (सर्वतोभद्रः)
सासेनागमनारम्भे, रसेनासीदनारता।
तारनादजनामत्त, धीरनागमनामया।। [२३] (मुरजबन्धः)

माघ ने क्रमशः सर्वतोभद्र तथा मुरजबन्ध के द्वारा शिशुपाल की सेना का वर्णन किया है।

तत्कालीन गुर्जर प्रदेश में किरातार्जुनीय तथा शिशुपालबध महाकाव्यों का व्यापक प्रचार था और इसमें संदेह नहीं कि महाकवि सोमेश्वर-देव को इन्हीं महाकाव्यों से, विशेष रूप से शिशुपालबध[२४] से प्रेरणा मिली होगी। क्योंकि चित्रकाव्य के प्रायः उन्हीं प्रकारों को सोमेश्वरदेव ने अपनाया है जिन्हें हम शिशुपालबध के १९ वें सर्ग में देखते हैं। किरातार्जुनीय, शिशुपालबध तथा सुरथोत्सव के युद्ध-वर्णन के तुलनात्मक अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सोमेश्वरदेव चित्रालङ्कारों को प्रस्तुत करने में भारवि तथा माघ की अपेक्षा अधिक सफल हुए हैं। चित्रकाव्य की इस परम्परा को देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि यद्यपि इस प्रकार की रचना युद्ध की भीषणता एवं शीघ्रता की वास्तविकता को चित्रित कर पाने में अवरोध उत्पन्न करती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है तथापि महाकाव्यकार युद्ध-वर्णन, विविध प्रकार के चित्रालङ्कारों के माध्यम से ही करते थे। ऐसा स्थिति में भी रसादि की प्रतीति हो तो वह दुर्बल होती है अतः उसे नीरस समझकर ही चित्रकाव्य का विषय मान्य होता है।

चित्रालङ्कारों की योजना निश्चय ही रसानुभव में बाधक प्रतीत होती है। यत्नसाध्य चित्रालङ्कारों की योजना करते समय कवि की रससमाहित चित्तवृत्ति भी खण्डित हो जाती है। अतः आनन्दवर्धन ने इस प्रकार के अलङ्कारों का प्रयोग काव्य में करने के लिए निषेध किया है[२५]। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के अलङ्कारों को उन्होंने काव्य-दोष के रूप में भी स्वीकार किया है। किन्तु ध्वन्यालोककार के कथन के आधार पर कवि सोमेश्वरदेव कृत चित्रालङ्कार की पूर्वोक्त योजना को उनके काव्य-दोष के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि पूर्ववर्ती कवियों की तथा तत्कालीन मान्यता ही ऐसी थी जिसमें इन दुःसाध्य-बन्धों को भी स्पष्ट रूप से 'सहृदयहृदयावर्जक, स्वीकार किया गया है। कादम्बरी एवं हर्षचरित जैसे सरस काव्यों में श्लेष एवं यमक के बीहड़ कानन, भारवि, माघ, श्रीहर्ष एवं कुमारदास जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ महाकावियों के काव्य में एकाक्षर, द्वयक्षर, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्रादि बन्धो का प्रयोग इस तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यही नहीं राज सभाओं और विद्वत् सभाओं में पाण्डित्य प्रदर्शनार्थ न्याय शास्त्र एवं वेदान्त दर्शन की भाषा को भी दुरूह किया गया था। स्वयं आनन्द-वर्धन ने देवीशतकम् काव्य में चित्रालङ्कार की योजना की है। दण्डी ने दशकुमार-चरितम् में कठिन समासों का प्रयोग किया है। ऐसी परिस्थिति में १३ हवीं शताब्दी के कवि सोमेश्वरदेव पूर्वोक्त प्रभाव से किस प्रकार विमुक्त रह सकते थे? प्राचीन मान्यताओं के निर्वाहार्थ उन्होंने सुरथोत्सव में चित्रालङ्कारों का यथाशक्ति प्रयोग किया है। अतः यह उनकी अलङ्कार-योजना का दोष नहीं कहा जा सकता है।

अर्थालङ्कार

उपमा

एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्यरहित वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं[२६]। उपमा प्राचीनतम एवं अन्य सदृश्यमूलक अलङ्कारों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उपजीव्य है । कालिदास प्रभृति कवियों की भांति उपमा कवि सोमेश्वरदेव का भी प्रिय अलङ्कार है । उनके दोनों ही महाकाव्य उपमा के वाच्यवैचित्र्य से विभूषित है । कवि सोमेश्वरदेव प्रयुक्त उपमा की निसर्गरम्यता, रसानुगुणता, व्यङ्ग्यार्थसम्भृतता, सरलता आदि विशेषतायें हैं । स्पष्टीकरण के लिए कुछ स्थल प्रस्तुत हैं :—

पूर्णोपमा

सामान्य धर्म, औपम्यवाची (उपमावाचक) उपमेय और उपमान ये चारों यदि वाच्य हों अर्थात् किसी शब्द से प्रतिपादित हों, व्यङ्ग्य या आक्षेप्य न हो, तो उसे पूर्णोपमा कहते हैं[२७] । सुरथोत्सव महाकाव्य में पूर्णोमा के अनेक स्थल महत्व पूर्ण हैं। काव्य-सूक्ति के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि रसयुक्त, वक्र, रम्य तथा काञ्चन-कान्ति के समान किसी किसी कवि की ही सूक्ति वराह के दाँत के समान सुशोभित होती है :—

रसाश्रया वक्रतया च रम्या व्याकुर्वतीकाञ्चनकान्तिमुच्चैः।
सूक्तिः कवेः कस्यचिदेव वक्त्रे विभाति दंष्ट्रेव किरीश्वरस्य ।।
(सुरथोत्सव,१/४२)

प्रस्तुत श्लोक में सूक्ति उपमेय तथा वराह का दाँत उपमान है। विभाति साधारण धर्म तथा इव वाचक शब्द है, अतः पूर्णोपमा अलङ्कार है ।

सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी में भी पूर्णोपमा के उदाहरण प्राप्त होते हैं । कवि चालुक्य राजा जयसिंह के सम्बन्ध में बतलाता है कि श्रीकर्ण से जगज्जयी पुत्र श्री जयसिंहँ उत्पन्न हुये, जो दशरथ-पुत्र राम के समान अभिराम गुणों वाले थे :—

अभिरामगुणग्रामो, रामोदशरथादिव ।
सूनुः श्रीजयसिंहोऽस्माज्जायते स्म जगज्जयी ।।
(कीर्तिकौमुदी,२/२३)

यहाँ पर जयसिंह उपमेय तथा राम उपमान हैं । अभिराम गुण साधारण धर्म तथा इव वाचक शब्द है अतः पूर्णोपमा अलङ्कार है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२—मालोपमा

मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते अर्थात् जहाँ एक उपमेय के अनेक उपमान हों वहाँ मालोपमा होती है। कवि के काव्यों में मालोपमा के उदाहरण भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। वस्तु वर्णन में मालोपमा का विशेष योगदान है। अणहिल्लपत्तन नगर के वर्णन में कवि कहता है कि मथुरा की यमुना. अयोध्या की सरयू तथा हस्तिनापुर की गङ्गा के समान इस नगर की सरस्वती सेवा करती हैं :—

यमुनेव मधूपघ्नं साकेतं सरयूरिव।
गजाह्वयं च गङ्गेव, सेवते यत् सरस्वती ॥
(कीर्तिकौमुदी, १/६०)

यहाँ पर सरस्वती उपमेय के अनेक उपमान वर्णित हैं अतः मालोपमा अलङ्कार है। इसी प्रकार महाकाव्य के कतिपय अन्य स्थल भी महत्वपूर्ण है।

इसी महाकाव्य में कवि मंत्री के सम्बन्ध में कहता है कि जिस प्रकार धान्य से क्षेत्र धन्य होते हैं, फलों से घन वन तथा जल से पूर्ण जलाशय सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मंत्री के द्वारा वह नगर स्तम्भतीर्थ सुशोभित हो रहा था :-

धान्यैर्धन्यमिव क्षेत्रं, फलैरिव घनं वनम्।
सरः पूर्णमिवार्णोभिस्तेनाऽभूच्चारु तत् पुरम् ॥
(कीर्तिकौमुदी, ४/९)

प्रस्तुत श्लोक में मंत्री वस्तुपाल के अनेक उपमान वर्णित हैं, अतः मालोपमा अलङ्कार है। मालोपमा का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है—

आकाशमिव चन्द्रेण, पारीन्द्रेणेव काननम्।
रम्यं तथाऽनतिक्रम्य, कुलं येन बभूव तत् ॥
(कीर्तिकौमुदी, २/६८)

यहाँ पर लावण्यप्रसाद के लिए चन्द्र तथा सिंह नामक उपमान वर्णित हैं, अतः मालोपमा अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३–लुप्तोपमा

उपमान, उपमेय, उपमावाचक और साधारण धर्म में से सामान्य धर्म आदि किसी एक के अथवा दो तीन के न होने पर लुप्तोपमा होती है[२८]। सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों के लगभग सभी सर्गों में लुप्तोपमा के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कवि ने अपने वर्णनों में लुप्तोपमा का सर्वाधिक सहारा लिया है। यहाँ पर एक स्थल द्रष्टव्य है –'लवण प्रसाद कहते हैं कि पूजा समाप्त करने के अनन्तर जब तक कि मैं समाधि मुद्रा को धारण करूँ, उसके पहले ही राका तुल्य आकारवाली किसी सुनयना को मैंने अपने समक्ष देखा:—

विसृज्यपूजामथमन्मथारेः, समाधिमुद्रां विदधामि यावत् ।
तावत् पुरः कामपि वामनेत्रां राकामिवाऽऽकारवतीमपश्यम् ॥

(वही, २/८९)

यहाँ पर उपमेय, उपमान एवं वाचक शब्द वर्तमान है परन्तु साधारण धर्म नहीं है, अतः लुप्तोपमा अलङ्कार है।

कीर्तिकौमुदी में युद्ध-वर्णन के प्रसंग में लुप्तोपमा का प्रयोग बार-बार किया गया है। एक स्थल में कवि कहता है कि इसके अनन्तर राजा वीरधवल युद्ध के लिए उन्मुख होने वाले मंत्री को युद्ध के लिए अभिमुख जानकर बन में व्याप्त अग्नि के पास जाने वाले पवन के समान, चल पड़ेः—

अथ सचिवमवश्यमाहवाय, प्रवणमतिं मतिमानयं विदित्वा ।
पवन इव वनोन्मुखं कृशानुं, विभुममिषेणनवाम्बुमभ्यगच्छत् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ४/९१)

अपि च

रुषा स्मितमुखः शङ्खः, शङ्खपाणिसमच्छविः ।
नाभवद् भीतये कस्य, सितविद्युदिवाम्बुदः ॥

(वही, ५/४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय उदाहरण से ज्ञात होता है कि क्रोध से ईषत्-हास युक्त मुख वाले शङ्खपाणि भगवान् विष्णु के समान कान्तिमान हैं। स्वच्छ विद्युत् युक्त मेघ के समान व-, किसके लिए भयप्रद न हुये ? यहाँ पर दोनों ही उदाहरणों में उपमेय, उपमान एवं वाचक शब्द वर्तमान हैं परन्तु साधारण धर्म नहीं है, अत: लुप्तोपमा अलङ्कार है।

४ – श्लेषमूलक उपमा

कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में उपमा के अन्य वैचित्र्य भी यथा-स्थान दृष्टिगोचर होते हैं यथा:–

स्फुरत्तुरगमण्डलीखुरमुखाभिघातोच्छल-

त्परागपटलच्छलादुपरिभूतभूमण्डपम्।

बलं बलिनिवासवत्समणिनागरौद्रं रवि-

त्विषामविषयं जनो ददृशिवान्नगेन्द्रस्थित: ॥

(सुरथोत्सव, ९/९२)

भवानी से युद्ध करने के लिए सेना सहित दैत्य प्रयाण करता है, उसकी सेना के चञ्चल तुरगमण्डली के खुरों के अभिघात से उड़ने वाली रेणुओं के कारण ऊपर भूमण्डप सा दिखाई देने लगा है। धूल के कारण सूर्य की किरणों से असम्पृक्त सेना को पर्वतस्थित जन मणिधारी सर्पों (हथियारों) से युक्त भयानक बलि निवास अर्थात् पाताल (वीरों का निवास) के समान देख रहे हैं। यहाँ पर नागरौद्र (सर्प, हाथी) तथा बलिनिवास (पाताल, वीरों का निवास) शब्दों में श्लेष के द्वारा उपमालङ्कार की सृष्टि की गयी है।

रूपक

उपमा की भांति रूपक भी भरत परिगणित प्राचीनतम अलङ्कार है। रूपक अलङ्कार में अत्यन्त सादृश्य के कारण प्रसिद्ध भेद वाले उपमान और उपमेय का अभेद वर्णित रहता है। 'चन्द्र इव मुखम्' में जिस सादृश्य की प्रतीति होती है, उसमें मुख और चन्द्र दोनों की प्रतीति की प्रधानता रहती है। मुख चन्द्र से भिन्न है और अभिन्न भी। यह भेदाभेद प्रतीति आगे चलकर अभेद प्रतीति या तादूरूप्य में परिणत हो जाती है। रूपक की प्रतीति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को अभेद प्रतीति भी कहा जा सकता है और तादरूप्य प्रतीति भी[२८]। उपमागत प्रतीति से इसका भेद सिद्ध करने के लिए अभेद प्रतीति कहना श्रेष्ठ है और अध्यवसाय मूलक प्रतीति से भेद स्थापित करने के हेतु तादरूप्य प्रतीति कहना समीचीन है। 'मुख चन्द्र:' में सहृदय को मुख और चन्द्र दोनों की एकता का भान होता है। इसका आधार आरोप है। (विषयी) चन्द्र का (विषय) मुख पर आरोप है। इस आरोप में कवि अथवा सहृदय को प्राप्त होने वाली अभेद प्रतीति को भ्रान्ति नहीं कहा जा सकता है। कवि मुख तथा चन्द्र के सौन्दर्य में अभेद प्रतीति या अतिसाम्य बनाने के प्रयोजन से ही आरोप करता है।

कवि सोमेश्वरदेव की अलङ्कार-योजना में रूपक का महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्यों में रूपक के अनेक स्थल वर्णन में सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं:—

प्रतिनृपतिभिर्भग्नोत्साहैर्निमग्नमिव क्वचित्,
स च नरपतिर्वीरस्तीरं जगाममृधाम्बुधे:।
दिशिदिशि यशःस्तोमान् सोमान्वयो समचारय-
च्चतुरकुरली चाणक्योऽयं प्रियङ्करणैर्गुणै:॥
(कीर्तिकौमुदी, ५/६८)

पुनश्च—

अथोदयति निर्दोषे, सचिवेन्दौ नवे रवौ।
कोक-कोकनदानन्दि, मन्दिमानमगान्महः॥
(वही, ७/१)

प्रथम उदाहरण में उपमेय लवण प्रसाद (अयम्) की उपमान चाणक्य से एवं दूसरे उदाहरण में सचिव तथा इन्दु में एकरूपता स्थापित की गई है, अतः दोनों ही छन्दों में रूपकालङ्कार है। इसी प्रकार अन्य स्थलों में भी कवि ने अपनी वाणी को इस अलङ्कार से अनेक वार सुसज्जित किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्प्रेक्षा

उपमा की भांति उत्प्रेक्षा के वाच्य-सौन्दर्य को स्फुरित करने में कवि सोमेश्वरदेव ने अपनी विशेष प्रतिभा, मौलिकता एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। अणहिल्लपत्तन नगर की रमणियों के वर्णन में उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है :—

जहाँ पर वधुयें कन्दर्प नृप के राजमुद्राङ्कित कोश जैसी मालूम पड़ती है, जिनके स्वच्छ कपोल मण्डल पर चन्द्रमा प्रतिबिम्बित हो रहा है :—

भाति यत्र कपोलान्तः सङ्क्रान्तेन्दुर्वधू जनः।
राजमुद्राङ्कित कोशः कन्दर्पनृपतेरिव ॥

(वही, १/८७)

यहाँ पर उत्प्रेक्षा के माध्यम से नगर की रमणियों का सौन्दर्य वर्णित है। कीर्तिकौमुदी के अतिरिक्त सुरथोत्सव में भी उत्प्रेक्षा की छटा उपलब्ध होती है :—

पूर्वाचले च मिथुनानि रथाङ्गनाम्ना—
मानन्दयंश्च तिमिरं परिमन्दयंश्च।
प्राभाकरः सरसयावकरक्तकान्ता—
दन्तच्छदच्छविररोचत रोचिरोघः ॥

(सुरथोत्सव, ७/१)

'उदयाचल पर विराजमान प्रकाशपुञ्ज पत्नी सहित क्रौञ्च नामक पक्षी को आनन्दित करता हुआ और अन्धकार को दबाता हुआ इस तरह सुशोभित हो रहा है मानो वह रंगा हुआ कान्ता का ओष्ठ हो'। यहाँ पर उत्प्रेक्षा के माध्यम से कान्ता के ओष्ठ रंगने की बात कही गई है। कान्ता के ओष्ठ रंगने की यह सूचना संस्कृत-साहित्य के प्राचीनतम वर्णनों में से एक है। अलङ्कार विवेचन के प्रसंग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कान्ता को अलङ्कृत करने वाली ओष्ठ पर रञ्जित की जाने वाली इस लालिमा का वर्णन महत्वपूर्ण ही है।

संदेह अलङ्कार

सादृश्य प्रधान अलङ्कारों में सन्देह का प्रमुख स्थान है। सर्व प्रथम भामह ने 'संदेहालङ्कार' नाम से इसको निरूपित किया है[१०]। इसे ही रुद्रट[११] एवं भोज[१२] ने 'संशयालङ्कार' की संज्ञा से अभिहित किया है। परवर्ती आलङ्कारिक मम्मट[१३] के अतिरिक्त अन्य सभी आलङ्कारिक कुन्तक[१४], रुय्यक[१५], विश्वनाथ[१६], जयदेव[१७], अप्पय दीक्षित[१८] आदि ने इसे सदेहालङ्कार' की संज्ञा से अभिहित किया है। संदेह अलङ्कार का आधार अनिश्चयात्मक ज्ञान का एक भेद संशय है। संशय में न एक पक्ष शिथिल रहता है और न दूसरा दृढ। किन्तु यह संशय कवि प्रतिभो-त्थ पित होता है। संदेहालङ्कार में प्रकृत पर अप्रकृत का आरोप होता है। साथ ही अध्यवसाय साध्यावस्था में विद्यमान रहता है। कवि सोमे-श्वरदेव ने सदेहालङ्कार की योजना में विशेष निपुणता का परिचय दिया है। वर्ण्य-विषय के औचित्य को ध्यान में रखते हुए उन्होने संदेहालङ्कार के माध्यम से अंधकार का कैसा ही मनोरम वर्णन किया है :—

'क्रुद्ध शूकरों के झुण्ड के समान अन्धकार क्या पर्वतों की कन्दराओं से निकल पड़ा है? या वृक्षों के कोटरों से निकल आया है? या पताल लोक से निकल पड़ा है?

कि महीधरमहागुहागृहाद्भूरुहां किमुत कोटरोदरात्।
उज्जगाम जगतीतलादथ क्रुद्धकोलकुलकश्मलं तमः॥

(सुरथोत्सव, ६/२५)

प्रस्तुत वर्णन में सूर्यास्त के अनन्तर अन्धकार कहाँ से आ गया है? इस विषय में संशय उत्पन्न हो रहा है अतः यहाँ संदेहालङ्कार है।

विरोधालङ्कार

विरोधमूलक अलङ्कारों में विरोधालङ्कार का प्रमुख स्थान है। विरोध अलङ्कार वास्तव में विरोध न होने पर भी (विरोध की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीति कराने वाले) विरुद्ध रूप से वर्णन किया जाता है। अविरोध में विरोध की प्रतीति कराना ही इस अलङ्कार का वैचित्र्य है। कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में विरोधालङ्कार की स्फुट झलक मिलती है। कई स्थलों पर इसका प्रयोग कुशलता पूर्वक किया गया है यथा:—

कीर्तिकौमुदी में मिलता है कि अणहिल्लपत्तन में ब्रह्मा ने अप्रतिम रूपवाली रमणियों को उत्पन्न किया था, केवल दीवाल में स्थित रत्नों में प्रतिबिम्बत उन्हीं के चित्रों से ही उन रमणियों की तुलना की जा सकती थी :—

रूपेणाप्रतिमा: कान्ता, यत्र धात्रा कृता: किल।
तथापि प्रतिमास्तासां, सञ्जाता रत्नभित्तिषु ॥

(कौर्तिकौमुदी, १/७०)

यहाँ पर विरोधालङ्कार का बहुत ही सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि नगर की रमणियाँ सौन्दर्य मे अद्वितीय थीं। रमणियाँ ही नहीं अपितु घर भी सुन्दर थे जिनके भित्तियों में रत्न जड़े हुए थे। रमणियों को अप्रतिम कह पुन: भित्तियों में उनके रूप का उल्लेख कर कवि ने विरोध उपस्थित कर दिया है। अत: विरोधालङ्कार स्पष्ट है।

पुनश्च:–

न चौरास्तस्य सौराज्ये, दौरात्म्यं कुर्वते क्वचित्।
स्वयमेव पुन: कीर्ति, हरति प्रतिभूभुजाम् ॥

(वही, २/७०)

गुर्जर राजा लवण प्रसाद के राज्य में चोर चोरी नहीं करते थे अपितु स्वयं राजा विपक्षियों की कीर्ति को हरता था। यहाँ विरोधालङ्कार के माध्यम से राजा की विजय-कीर्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार अनेक वर्णनों में विरोधालङ्कार की चारुता दिखाई देती है[३६]।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहोक्ति

सहोक्ति अलङ्कार में सह (शब्द) के अर्थ के सामार्थ्य से एक पद दो अर्थों का वाचक होता है[४०]। सहोक्ति अलङ्कार का वैचित्र्य कवि सोमेश्वर देव के दोनों महाकाव्यों में विद्यमान है, यथा :–

व्याहृत्य कृत्यमिति सा सहसा च कण्ठ-
पीठे निवेश्य विशदामिह पुष्पमालाम् ।
कुत्रापि तत्र भवती सह निद्रया मे,
याताऽथ यूयमिह जल्पत नः किमेतत् ।।
(कीर्तिकौमुदी, २/१०७)

राजा लवण प्रसाद सोमेश्वरदेव से कहते हैं कि राजलक्ष्मी ने इस प्रकार कहकर, अचानक मेरे कण्ठ में पुष्पमाला को डाल दिया और पुनः मेरी निद्रा के साथ कहीं चली गयी। आप बतायें यह क्या है ? यहाँ पर 'याता' शब्द का अर्थ राजलक्ष्मी के लिए तिरोहित होना तथा निद्रा के लिए समाप्त होना है । सह शब्द के सामार्थ्य से ये दो अर्थ निकलते हैं । इस अलङ्कार के द्वारा वर्णन में अत्यधिक सजीवता उत्पन्न हो गई है।

पुनश्च :–

कान्ते सितत्विषि समीयुषि देशमन्यं
दीनां दशां कुवलयावलिरुद्वहन्ती ।
हासं जहौ मधुकरैः सह न व्यहार्षी
न्नाप्ययंमोदयमहोत्सवमालुलोके ।।
(सुरथोत्सव, ७/२५)

'सूर्य के दूसरे देश चले जाने पर मधुकरों सहित कुवलयावलि ने हास का परित्याग कर दिया और वे पुनः सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे । यहाँ पर कमलों के लिए 'हासं जहौ' का अर्थ मुकलित होना तथा भ्रमरों लिए गुञ्जार का बन्द होना है । सह शब्द के सामर्थ्य से ये दो अर्थ निकल रहे हैं अतः सहोक्ति अलङ्कार है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेषोक्ति

यह भी कारण-कार्य भावमूलक अलङ्कार है। विशेषोक्ति अलङ्कार में कारण के सद्भाव में कार्य का अभाव वर्णित किया जाता है। यह विशेषोक्ति दो प्रकार की होती है–उक्तनिमित्त एवं अनुक्तनिमित्त[४१]। कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में अनुक्तनिमित्त विशेषोक्ति के ही अधिकांश उदाहरण उपलब्ध होते हैं, यथा :– तीर्थ यात्रा में बहुत से यात्रियों ने महामात्य वस्तुपाल से अनेक वस्तुओं कीं याचना की। पथिकों को अत्यधिक वस्तुयें दान स्वरूप प्रदान करते हुए वस्तुपाल न अहङ्कार करते थे और न क्रोधित होते थे :–

अभ्यर्थमानः पथिकैरनेकैर्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः ।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छन् नाहङ्करोति स्म न कुप्यति स्म ।।

(कीर्तिकौमुदी, ९/१५)

बहुत से याचकों को प्रचुर दान देते हुए वस्तुपाल क्रोध तथा अहङ्कार से युक्त हो सकते थे परन्तु ऐसा नहीं हुआ। यहाँ हेतु होने पर भी कार्य नहीं हो रहा है अतः विशेषोक्ति अलङ्कार है।

पुनश्चः-

अनुक्तनिमित्त विशेषोक्ति का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है– 'रैवतक पर्वत पर विकसित कमलों से युक्त बहुत से तडाग विद्यमान थे, जिनमें हंस विहार करते थे। वे हंस नव घन-गर्जन को सुनकर भी मान सरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होते हैं :—

यस्मिन् सदा स्मेरसरोजराजिविराजितासङ्ख्यसरः परीते ।
आकर्णयन्तोऽपि नवाब्दशब्दान्, न मानसाय स्पृहयन्ति हंसाः ।।२।।

(वही, ९/५७)

घन-गर्जन के पश्चात् वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में हंस मानसरोवर को चल देते हैं परन्तु यहाँ घन-गर्जन रूप कारण के सद्भाव में हंसों का गमन रूप कार्य नहीं हो रहा है अतः विशेषोक्ति अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभावना अलङ्कार

कारण कार्यमूलक अलङ्कारों मे विभावना अलङ्कार का विशिष्ट स्थान है । विभावना में कारण के अभाव में भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है । विभावना का सौन्दर्य दो प्रकार से परिलक्षित होता है । प्रथम, जिसमें कारणभाव में कार्योत्पत्ति का निमित्त प्रतिपादित हो अर्थात् विभावना उक्त निमित्त हो । द्वितीय, कारणाभाव में कार्योत्पत्ति के निमित्त का प्रतिपादन न किया जाये अर्थात् विभावना अनुक्त-निमित्त हो । कवि सोमेश्वरदेव ने विभावना अलङ्कार की योजना कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में बड़ी ही चारुता के साथ किया है:–

शैलोपकण्ठेऽयमकुण्ठबुद्धिः, सरः सरस्वत्सदृशं चकार ।
उष्णेऽपि नोष्णानि भवन्ति यस्य, वारिणि रीणाध्वगजीवितानि ।।

(कीर्तिकौमुदी, ९/३६)

वस्तुपाल ने पर्वतों के निकट ऐसे सरोवरों को निर्मित कराया जिसके जल पथिकों के लिए जीवन थे और वे सरोवर ग्रीष्म काल में भी उष्ण नहीं होते थे । यहाँ पर शीत समय न होते हुए भी तालाब का जल शीतल हो रहा है अतः विभावना अलङ्कार है ।

समासोक्ति

जिस वाक्य में 'सम' अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रुप से अन्वित होने वाले कार्य, लिङ्ग और विशेषणों से प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाय वहां समासोक्ति अलङ्कार होता है[४२]। समासोक्ति की कल्पना विशेषण वैचित्र्य के अनुसन्धान का परिणाम है । कवि जन अपने काव्यों में ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया करते हैं, जिनसे अप्रस्तुत की अभिव्यञ्जना हुआ करती है और उनसे प्रस्तुत का सौन्दर्य और द्विगुणित हो जाता है । कवि सोमेश्वरदेव के दोनों ही महाकाव्यों में समासोक्ति की योजना दर्शनीय है यथाः–

तीव्रैः शरैरिव करैः किरणाकरेण मत्वात्मजानि तिमिराणि तिरस्कृतानि ।
अस्तोकशोकविकलेव कलङ्कदम्भादङ्के पपात रजनी रजनीश्वरस्य ।।

(सुरथोत्सव,७/२१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत उदाहरण के अन्तिम चरण 'अङ्के पपात रजनी रजनी श्वरस्य' के द्वारा नायक और नायिका का प्रेम विषयक व्यवहार मन में स्वतः उत्पन्न हो जाता है जो कि अप्रस्तुत है अतः यहाँ समासोक्ति अलङ्कार है ।

अतिशयोक्ति अलङ्कार

भामह काल से ही अतिशयोक्ति अलङ्कार की मान्यता स्वीकृत है। अतिशयोक्ति अलङ्कार की योजना कवि सोमेश्वर के दोनों ही महकाव्यों में की गई है यथा :—

दिङ्‌मुखेषु ददतो स्मितश्रियं पुष्णती तरुषु पुष्पसंपदम् ।
इन्दुदीधितिरदर्शयद्भुवि क्षीरनीरधितरङ्ग संगतिम् ।।

(सुरथोत्सव, ९/५०)

कवि का प्रस्तुत चन्द्रोदय वर्णन इस प्रकार है—'चन्द्र-किरणें दिशाओं को ईषत् हास दे रही हैं, वृक्षों में पुष्प-सम्पत्ति की वृष्टि कर रही है तथा पृथ्वी पर क्षीर-समुद्र बहा रही हैं । यहाँ पर उपमेय चन्द्रकिरणों का वर्णन लोक-सीमा को लांघ रहा है अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

अपि च

वाहिन्योस्तत्र सम्भेदे, स कोऽपि तुमुलोऽभवत् ।
यस्याग्रे मन्द्रतामेति, सामुद्रोऽपि महाध्वनिः ।।

(कीर्तिकौमुदी, ५/२५)

'वस्तुपाल तथा शङ्ख की वाहिनियों के परस्पर भिड़ने पर इतनी अधिक ध्वनि हुई कि उसके समक्ष समुद्र की महाध्वनि भी मन्द प्रतीत होती थी । यहाँ पर युद्ध करती हुई सेनाओं का वर्णन अतिशयोक्ति के द्वारा किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

अर्थान्तरन्यास कवि सोमेश्वरदेव का प्रिय अलङ्कार है। इस अलङ्कार के माध्यम से कवि ने सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है। इन स्थलों में कवि की नवीन कल्पना भी देखने योग्य है। प्रथमत: सुरथोत्सव से एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

ध्वान्ते समुन्मिषति मेचकरोचिरासी—
त्पीयूषरोचिषि वलक्षरुचिर्बभूव ।
दीप्तद्युतावरुणिमानमगच्छदुर्वी
सर्वोऽपि हि व्यवहरत्युदितानुरूपम् ॥

(सुरथोत्सव, ७/५)

अंधेरा के आने पर पृथ्वी काली पड़ गई, वही चन्द्रोदय के होते हुए धवल बन गई और अब सूर्योदय होने पर लाल हो गई है, सत्य है, सभी लोग उदय के अनुरूप व्यवहार किया करते हैं। यहाँ पर विशेष की सामान्य से पुष्टि हो रही है अत: अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

पुनश्च:—

सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में पर्वतप्रदेशीय सूर्योदयकालीन अन्धकार का वर्णन अर्थान्तरन्यास अलङ्कार से किया गया है, पूर्व दिशा में उदित सूर्य के द्वारा भगाया हुआ एवं अस्ताचल पर अवस्थित चन्द्रमा को देखकर डरा हुआ अन्धकार, पर्वत की कन्दराओं को अपना आश्रय बनाता है। महान व्यक्ति दुर्गतों को यत: स्थान देते ही हैं:—

दिनाधिनाथेन पुरोनिरस्तमस्तस्थिताच्चन्द्रमसश्च बिभ्यत् ।
यत्कन्दरा: संश्रयते तमिस्रं दत्ते हि दु:स्थस्य पदं महात्मा ॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/५८)

यहाँ पर 'दत्ते हि दु:स्थस्य पदं महात्मा' इस सामान्य वाक्य के द्वारा पूर्व कथित प्रस्तुत विशेष की पुष्टि हो रही है अत: अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिणाम अलङ्कार

परिणाम अलङ्कार आचार्य रुय्यक की सूक्ष्मगवेषणात्मक प्रतिभा का परिणाम है । उनके मतानुसार 'परिणाम का अभिप्राय आरोप्यमाण अथवा उपमान की प्रकृतोपयोगिता है[४३]। अर्थात् जिसमें उपमेय से उपमान का अभेदारोप ऐसा हुआ करता है कि उपमान प्रकृतार्थोपयोगी हुआ करता है, वहाँ पर परिणाम की सिद्धि होती है । रूपक में जो आरोप्यमाण अथवा उपमान हुआ करता है, वह प्रकृतोपयोगी न होकर अपितु प्रकृतोपरञ्जक हुआ करता है किन्तु परिणाम में आरोप्यमाण प्रकृत का अङ्ग बन कर प्रकृतोपयोगी हा जाया करता है । एक वर्णन में एक नवीन कल्पना के द्वारा कवि सोमेश्वरदेव ने परिणाम अलङ्कार को प्रस्तुत किया है :— 'लताओं के उन खिले हुए फूलों के द्वारा, जिन पर भौरे विराजमान थे, वनदेवियाँ वस्तुपाल को जाते हुए देख सी रही थीं । वर्णन से ज्ञात होता है कि वनदेवियों के नेत्र, भ्रमर बैठे हुए मुकलित पुष्प थे :—

विकासवद्भिर्व्रततिप्रसूनैरन्तःप्रसुप्तभ्रमरैर्यदीया: ।

वनाधिदेव्यस्तमिवोपयान्तं, विलोकयन्ति स्म मिलोचनाभैः ।।

(कीर्तिकौमुदी, ९/४७)

यहाँ पर भ्रमरों से युक्त खिले हुए फूलों को आँख के रूप में परिणत करके अर्थात् वन देवियों के द्वारा देखने की बात कही गई है, अत: परिणाम अलङ्कार है ।

स्वभावोक्ति

स्वभावोक्ति प्राचीन अलङ्कारिक मर्यादा का एक अलङ्कार है । सर्व प्रथम दण्डी ने इसकी उद्भावना की एवं 'आद्या अलङ्कृति' कह कर इसे गौरवान्वित किया[४४]। आचार्य रुद्रट ने स्वभावोक्ति को जाति नाम से अभिहित किया है[४५]। जाति का अभिप्राय है 'वस्तुस्वभाव' । वस्तुस्वभाव का वह उनमीलन, जिसमें कवि प्रतिभा का हाथ रहा करता है, जाति अलङ्कार है । लोक जीवन की वस्तुओं के सूक्ष्मधर्मों के चित्रण में सहृदय पाठक का जो हृदय-संवाद हुआ करता है, वही स्वभावोक्ति की कल्पना का मूल कारण हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वाभावोक्ति के वैचित्र्य से प्रभावित सहृदय यही अनुभव किया करता है कि कवि ने जिस वस्तु का चित्रण किया है, वह वस्तुत: वैसा ही है। कवि सोमेश्वर देव की अलङ्कार-योजना में स्वभावोक्ति को स्थान मिला है:—

आकर्ण्य कुक्कुटरुतानि रतैकसख्या
रात्रैः प्रयाणपटहत्वमुपेहि(यि) वांसि।
प्रवल्ह्वप्रियप्रणयजर्जरितानि मान—
विस्फूर्जितानि परितप्त(त्य) जरञ्जनेत्राः॥

(सुरथोत्सव७/६)

सम्भोग से ही मैत्री रखने वाली कमलनयनियों ने प्रात: कालीन रात्र्यन्त सूचक कुक्कुट के शब्द को सुनकर प्रेमी के अभिमुख होने के कारण जर्जरता प्राप्तमान को त्याग दिया। यहाँ पर मान-त्याग का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है अत: स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

पुनश्च:—

पूर्वाचले च मिथुनानि रथाङ्गनाम्ना—
मानन्दयंश्च तिमिरं परिमन्दयंश्च।
प्राभाकरः सरस यावकरक्तकान्ता—
दन्तच्छदच्छविररोचत रोचिरोघः॥

(वही, ७/१)

कवि के महाकाव्यों में स्वभावोक्ति के अनेक स्वतन्त्र-छन्द प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वभावोक्ति अलङ्कार, छन्द के पूर्वांश अथवा उत्तरांश में भी प्राप्त है। उपर्युक्त उदाहरण के पूर्वांश में स्वभावोक्ति स्पष्ट है। यह अलङ्कार महाकाव्यों में बार-बार आया है जिससे प्रतीत होता है कि कवि का यह प्रिय अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथासंख्यालङ्कार

कवि के महाकाव्यों में यथासंख्यालङ्कार स्फुट रूप व्यवहृत किया गया है। वस्तु-वर्णन में इस अलङ्कार के द्वारा सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। दुर्जन का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि विधाता ने वृश्चिक, सर्प तथा दुर्जनों के क्रमानुसार पुच्छ, मुख तथा हृदय में विष को स्थापित किया है:—

वृश्चिकानां भुजङ्गानां दुर्जनानां च वेधसा।
विभज्य नियतं न्यस्तं, विषं पुच्छे मुखे हृदि ॥

(कीर्तिकौमुदी, १/३५)

हेतु तथा व्याजोक्ति

महाकाव्यों में हेतु तथा व्याजोक्ति अलङ्कार स्फुट रूप से प्राप्त होते हैं। कभी-कभी ये अलङ्कार एक ही श्लोक में पाये जाते हैं। इन अलङ्कारों के द्वारा नगर का मनोरम चित्रण किया गया है:— क्रीड़ाशील नगर रमणियों के मुख की सत्ता के कारण जहाँ सरोवरों में सर्वदा सरोज खिले रहते थे, वे सरोवर आज अनाथ होने के कारण हवा के झोंकों में उड़ने वाले जल-कणों के व्याज से अश्रुपात कर रहे हैं:—

क्रीडावतीनां नगराङ्गनानां, वक्त्रैः सदा यत्र सरोजसत्ता।
सरस्तदश्रूणि किरत्यनाथं, वातास्तपाथः कणकैतवेन ॥

(वही, २/१०३)

नगर रमणियों के मुख कमलवत् हैं अतः सरोवरों में कमल का अस्तित्व रमणियों के मुख के कारण है। इस प्रकार पूर्वांश में हेतु अलङ्कार है। उत्तरांश में व्याजोक्ति है जिसके द्वारा राजलक्ष्मी अपनी दयनीय स्थिति को राजा लवणप्रसाद के सामने व्यक्त कर रही है।

पुनश्च:—

पिङ्गाभिरुद्यदहिमांशुमहच्छटाभिः शोभां जटाभिरिव दर्शयदन्तरिक्षम्।
बिभ्रन्निरस्तरुचि चन्द्रमिषात्कपालं कापालिकस्य करणिं कलयांचकार ॥

(सुरथोत्सव ७/१९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य की उठती हुई पीली किरणों के द्वारा अन्तरिक्ष मानों जटा की शोभा को धारण कर रहा है । अथ च तेजोरहित चन्द्रमा के व्याज से कपाल को धारण कर रहा है।

यहां पर चन्द्रमा के व्याज से अन्तरिक्ष को कापलिक होने की बात कही गई है, अतः व्याजोक्ति अलङ्कार है । इसके अतिरिक्त व्याजोक्ति के अन्य स्थल भी दर्शनीय हैं[४६] ।

अपह्नुति

कवि के महाकाव्यों में अपह्नुति अलङ्कार सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होता है । सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी के अनेक सर्गों में इस अलङ्कार की योजना की गई है। सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय के वर्णन में अपह्नुति दर्शनीय है । चन्द्रोदय का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

न मृगाङ्के कलङ्कोऽयं, कस्तूरीतिलकाकृतिः ।
निर्दग्धो नीलकण्ठेन, तिष्ठत्येष झषध्वजः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ७/३३)

प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रस्थित उपमेय कलङ्क में उपमान झषध्वज की स्थापना की गई है। महाकाव्यों के चन्द्रोदय वर्णन हृदयहारी है । इस अलङ्कार से युक्त वर्णन काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि में भी सहायक होते हैं ।

परिकर

काव्य में विशेषण का एक विशिष्ट महत्व है। विशेषण से वर्णन का सौन्दर्य बढ़ जाता है। काव्य में साभिप्राय विशेषण के प्रयुक्त होने पर परिकर अलङ्कार की सृष्टि होती है[४७]। महाकवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में यत्र-तत्र परिकर की छटा द्रष्टव्य है । कीर्तिकौमुदी के नायक महामात्य वस्तुपाल तीर्थयात्रा के लिए जा रहे हैं । उस समय अनेक यात्रियों ने वस्तुपाल से याचना की और उसने उन्हें प्रभूत वस्तुयें प्रदान की । इस परिस्थिति में वस्तुपाल ने न अहङ्कार किया और न क्रोधित हुआ :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभ्यर्थमानः पथिकैरनेकैर्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः ।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छन्, नाहङ्करोति स्म न कुप्यति स्म ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/१५)

यहाँ पर 'अनेक' तथा 'प्रभूत' विशेषणों के द्वारा वस्तुपाल की दानशीलता का ज्ञान होता है। इन विशेषणों के साभिप्राय प्रयोग से परिकर अलङ्कार स्पष्ट है

तुल्ययोगिता

महाकाव्यों में तुल्ययोगिता अलङ्कार प्रायः प्रयुक्त हुआ है। कवि के महाकाव्यों में इस अलङ्कार के दर्शन अनेक बार हुए हैं। केवल प्रकृत या केवल अप्रकृत पदार्थों में एक धर्म का नाम 'तुल्ययोगिता' है। यह धर्म कहीं गुण रूप होता है और कहीं क्रिया रूप४८। (कीर्तिकौमुदी, महाकाव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है:— 'पर्याप्त फूलों, नवीनवस्त्रों, पवित्रपल्लवों, श्रेष्ठ भोजनों, वधुओं के चित्तग्राही गीतों तथा नृत्यों के द्वारा प्रभूत दान देते हुए वस्तुपाल ने पूजा की :—

घनैः प्रसूनैर्वसनैरनूनैः, पत्रैः पवित्रैरशनैः प्रधानैः ।
नृत्तैर्वधूनां च गृहीतचित्तैर्गानैः सदानैर्वितनान पूजाम् ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/६६)

यहाँ पर पुष्प इत्यादि अनेक सामाग्रियों के द्वारा पूजा रुपी धर्म का बोध होता है अतः तुल्ययोगिता है।

अपि च

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में रैवतक पर्वत पर की गई तीर्थयात्रा का वर्णन प्राप्त होता है। पर्वत के मनोरम स्थलों का वर्णन तुल्योगिता अलङ्कार से ही किया गया है:— 'रैवतक पर्वत कहीं स्वर्णकान्ति को धारण करता, कहीं नदियों में उन्मत्त-राजहंस विराजमान हैं, कहीं वृक्ष कोमल फलों एवं पत्तों को धारण करते हैं और कहीं पर्वत प्रदेश विविध वस्तुओं को धारण करता है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वचित् तटीः काञ्चनकान्तिजुष्टाः, क्वचिन्नदीरुन्मदराजहंसाः ।।
क्वचिद् द्रुमानार्द्रफल - प्रवालान्, क्वचिच्च धातून् विविधान् दधानम् ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/४५)

प्रस्तुत स्थल में काञ्चन कान्ति, राजहंस, फल-पल्लव तथा विविध धातुओं के लिए 'धारण' रूप एक ही क्रिया प्रयुक्त हुई है अतः तुल्य-योगिता अलङ्कार है ।

दीपक

आचार्य विश्वनाथ ने दीपक अलङ्कार के सम्बन्ध में कहा है कि 'जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुत पदार्थों में एक धर्म का सम्बन्ध हो अथवा अनेक क्रियाओं का एक हीं, कारक हो वहाँ दीपक अलङ्कार होता है[४८] । कवि सोमेश्वरदेव के दोनों ही महाकाव्यों में दीपक अलङ्कार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । इस अलङ्कार के माध्यम से प्रकृति का वर्णन विशेष रूप से किया गया है । प्रकृति वर्णन में सूर्यास्त-सूर्योदय, वन तथा गिरि वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है । रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि— 'रैवतक का उच्च-शिखर मानो आकाश में कुछ लिख रहा है, वह अपने विशाल चरणों के द्वारा दिशाओं को छू रहा है, पर्वत का अधोभाग पृथवीतल को स्पर्श कर रहा है तथा वह पर्वत अपनी कान्ति के द्वारा अन्तःकरणों को हर रहा है :—

शृङ्गैरुदग्रैर्दिवमुल्लिखन्तं, दिशः स्पृशन्तं पृथुभिश्च पादैः ।
तलेन धात्री तलमाप्नुवन्तं, हरन्तमन्तः करणानि कान्त्या ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/४४)

यहाँ पर आकाश में लिखने, दिशा छूने, पृथ्वी तल को छूने तथा अन्तःकरण को हरने में एक ही कारक रैवतक पर्वत कार्य कर रहा है अतः दीपक अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाकवि माघ भी लगभग इसी प्रकार का वर्णन शिशुपालवध में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि सहस्रों शिखरों से आकाश में तथा सहस्रों पादों से पृथ्वी में फैलकर स्थित तथा सूर्य और चन्द्रमा को दोनो नेत्र रूप में धारण किये हुए रैवतक पर्वत को, सहस्रों मस्तकों से आकाश में तथा सहस्रों चरणों से पृथ्वी में व्याप्त होकर स्थित और सूर्य-चन्द्र जिसके नेत्र हैं ऐसे हिरण्यगर्भा ब्रह्मा के समान उस रैवतक पर्वत को 'श्रीकृष्ण ने देखा:—

सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ॥

(शिशुपालबध, ४/४)

माघ ने एक अन्य श्लोक में रैवतक के वर्णन में इस प्रकार कहा है :— 'विशाल दिशाओं तथा आकाश को आच्छादित कर स्थित, विस्तृत पृथ्वी में व्याप्त एवं ऊँचे तथा बड़े शिखरों वाले शिखर से चमकते हुये चन्द्रप्रान्त वाले इस पर्वतराज रैवतक को पृथ्वी पर देखकर कौन आश्चर्य चकित नहीं होगा ? अर्थात् सभी आश्चर्य चकित होंगेः—

आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा—
माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालशृङ्गम्।
मूर्ध्निस्खलत्तुहिनदी धितिकोटिमेन—
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम् ॥

(शिशुपालबध ४/१९)

माघ के प्रथम उदाहरण में उत्प्रेक्षालङ्कार तथा दूसरा श्लोक ध्वनिकाव्य का उदाहरण है। सोमेश्वरदेव के उदाहरण से यद्यपि अलङ्कार-वैभिन्न्य है परन्तु विषय साम्य तो स्पष्टतः ही प्रतीत होता है ।

संकर और संसृष्टि अलङ्कार

संकर और संसृष्टि अलङ्कार की कल्पना का आधार लोक प्रसिद्ध अलङ्कारों की परस्पर संघटन सम्भूत एक विचित्र सौन्दर्य का दर्शन एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्लेषण है । जिस प्रकार स्वर्ण एवं मणि के अलङ्कारों का अपना-अपना पृथक सौन्दर्य हुआ करता है किन्तु परस्पर संश्लिष्ट होने पर एक विचित्र सौन्दर्य की सृष्टि किया करते हैं । उसी प्रकार शब्द और अर्थ के अलङ्कार भी पृथक्-पृथक् सौन्दर्य के उत्पादक होते हैं किन्तु परस्पर संश्लेष में एक अन्य ही विचित्र सौन्दर्य की झलक दिखाया करते हैं। विचित्र सौन्दर्य अथवा वैचित्र्य स्व संवेदन सिद्ध है। अलङ्कारों का परस्पर संश्लेष दो प्रकार का हो सकता है । प्रथम, जिसमें परस्पर सापेक्ष अलङ्कारों का संश्लेष 'नीरक्षीरवत्' होने के कारण संकर कहलाता है । द्वितीय, जिसमें परस्पर निरपेक्ष अलङ्कारों का संश्लेष 'तिलतण्डुलवत्' होने के कारण संसृष्टि कहलाता है । कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में संकर और संसृष्टि दोनों ही अलङ्कारों की सुन्दर योजना हुई है :—

अभ्यर्थमानः पथिकैरनेकैर्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छन्, नाहङ्करोति स्म न कुप्यति स्म ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/१५)

प्रस्तुत श्लोक में परिकर तथा विशेषोक्ति अलङ्कार विद्यमान है। चूंकि दोनों अलङ्कारों में अङ्गाङ्गिभाव नहीं है, वे तिलतण्डुलवत् स्पष्ट प्रतीत हो रहे हैं अतः संसृष्टि अलङ्कार है ।

महाकाव्यों में संकर अलङ्कार भी विभिन्न स्थलों पर देखने को मिलता है। मन्त्री के अर्घ्यदान का वर्णन संकर अलङ्कार से ही किया गया है:—

विरच्यमाने सचिवेन तेन, पूजाविधौ पूज्यतमस्य तस्य।
सकुङ्कुमस्नानजलच्छलेन, गलन्निवाऽऽलोक्यत भोगरागः ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/२७)

यहाँ पर व्याजोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार अङ्गाङ्गिभाव रूप में उपस्थित हुए हैं। इस छन्द में ये दोनों अलङ्कार नीरक्षीरवत् विद्यमान है। अतः यहाँ पर संकर अलङ्कार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि कवि सोमेश्वरदेव की अलङ्कार-योजना में अनुप्रास, यमक, श्लेष, चित्रालङ्कार के लगभग समस्त भेद, पूर्णोपमा, मालोपमा, लुप्तोपमा, श्लेषोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, विरोध, सहोक्ति, विशेषोक्ति, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास परिणाम स्वभावोक्ति , यथासंख्या, हेतु, व्याजोक्ति, अपह्नुति, परिकर, तुल्ययोगिता, दीपक, संकर, संसृष्टि आदि अलङ्कारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। कीर्ति-कौमुदी की अपेक्षा **सुरथोत्सव** महाकाव्य में शब्दालङ्कारों का बाहुल्य है। **सुरथोत्सव** के दशम सर्ग में प्रयुक्त होने वाले चित्रालङ्कार रसानुभव में अवरोधक हैं किन्तु अन्यत्र उनकी अलङ्कार-योजना रसानुगुण है। किसी भी अलङ्कार का निरन्तर एक रूप से अनुप्रवेश नहीं किया गया है। ये अलङ्कार काव्य में प्रयासपूर्वक भी नहीं लाये गये हैं। कई स्थलों पर अलङ्कार रसाभिव्यञ्जक भी है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि सोमेश्वर-देव की कविता अनावश्यक अलङ्कारों के भार से आक्रान्त रमणी की भाँति मन्द-मन्द गति से गमन करने वाली नहीं है, अपितु अपने सहज-सौन्दर्य से सहृदयों को आह्लादित करने वाली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. चन्द्रालोक, जयदेव, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६६ ई० ।

2. भामह, काव्यालङ्कार, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२८ ई० ।

3. काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते । काव्यादर्श, २/१

4. मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः । वही, १/५१

5. प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम् ।
   ऊर्जास्विरूढाङ्कारं युक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम् ।। वही, २/२७५

6. दण्डी, काव्यादर्श २/२३५

7. स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा ।। वही, २/८

8. दण्डी, काव्यादर्श १/१९

   सम्पादक, रामचन्द्रमिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८ ई० ।

9. वामन, काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १/ १/२,
   ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना १९५७ ई० ।

10. वही, ३/ १/३

11. वही, ३/ १/१

12. वही, ३/ १/२

13. रुय्यक, अलङ्कारसर्वस्व, पृष्ठ ९, काव्यमाला-३५, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय संस्करण, १९३९ ई० ।

14. (क) तमर्थमवलम्बते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।
    अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत् ।।
    आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक २/ पृष्ठ २१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ख) उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेणजातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।—मम्मट, काव्यप्रकाश, ८/६७
डा० सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९६० ई० ।
शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् । — साहित्य दर्पण, १०/१
श्री शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७ई० ।

15. शृङ्गारस्याङ्गिनो यत्नादेकरूपानुबन्धवान् ।
सर्वष्वेव प्रभेदेषु नानुप्रासः प्रकाशकः ।।
ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे यमकादिनिबन्धनम् ।
शक्तावपि प्रमादित्वं विप्रलम्भे विशेषतः ।
आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक', २/१४,१५
सम्पादक—जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ई० ।

16. यमकादिनिबन्धे तु पृथग्यत्नोऽस्य जायते ।
शक्तस्यापि रसेऽङ्गत्वं तस्मादेषां न विद्यते ।। वही,२/१६ (संग्रहश्लोक)

17. रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।। वही, २/१६

18. ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे समीक्ष्य विनिवेशितः ।
रूपकादिरलङ्कारवर्ग एति यथार्थताम् ।। वही २/१७

19. विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन ।
काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ।।
निर्व्यूढावपि चाङ्गत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणम् ।
रूपकादिरलङ्कारवर्गस्याङ्गत्वसाधनम् ।। वही, २/१८,१९

20. अलङ्कृतीनां शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम् ।
प्रबन्धस्य रसादीनां व्यञ्जकत्वे निबन्धनम् ।। वही, ३/१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

21. सुरथोत्सव का निम्नलिखित सर्वतोभद्र चित्रालङ्कार आठ प्रकार से पढ़ा जा सकता है :—

र	ङ्गा	दा	म	म	दा	गा	रं
गा	त्र	मा	क्ष	क्ष	मा	त्र	गा:
दा	मा	सा	र	र	सा	मा	दा
म	क्ष	र	क्ष	क्ष	र	क्ष	म:
म	क्ष	र	क्ष	क्ष	र	क्ष	म:
दा	मा	सा	र	र	सा	मा	दा
गा	त्र	मा	क्ष	क्ष	मा	त्र	गा:
रं	मा	दा	म	म	द	ङ्ग	र

22. सुरथोत्सव, १०/ (अ) १३, १४, १५, १६, १७ पञ्चभिः कुलकम् ।
(ब) २३, २४, २५ त्रिभिः कुलकम् ।
(स) ७१, ७२, ७३ त्रिभिः कुलकम् ।

23. शिशुपालवध, १९/२७ तथा २९

24. शिशुपालवध के रचियता महाकवि माघ श्रीमाल के रहने वाले थे । श्रीमाल राजस्थान तथा गुजरात की सीमा पर स्थित एक नगर था जो तत्कालीन गुजरात का एक प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था ।

25. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, उद्योत तृतीय, पृष्ठ ३७४-३७५

26. साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः । साहित्य दर्पण, १०/१४

27. सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।
उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम् इयं पुनः ।। वही, १०/१५

28. लुप्ता सामान्यदेरेकस्य यदि वा द्वयोः ।। साहित्य दर्पण, १०/१७

29. ताद्रूप्य प्रतिपत्तिरारोपस्तभेद प्रतिपत्तिरध्वसाय इति तयोर्भेदः.........
इति चेत् न नैवरीत्यस्यापि वक्तुं शक्यत्वेति ।।
अप्यय दीक्षित, चित्रमीमांसा, पृष्ठ ५६, काशी, संवत् १९४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

30. भामह, काव्यालङ्कार ३/४३, चौखम्भा संस्कृत सीरोज वाराणसी १९२८ ई० ।

31. रुद्रट, काव्यालङ्कार, ८/५९, काव्यमाला २, निर्णयसागर प्रेस वम्बई, द्वितीय संस्करण १९०९ ई० ।

32. भोजदेव, शृङ्गार प्रकाश, भाग द्वितीय, पृष्ठ ४१७, मैसूर, १९६३ ई० ।

33. मम्मट, काव्यप्रकाश, १०/९२

34. वक्रोक्तिजीवितम् ३/४१, कुन्तक, कलकत्ता, तृतीय संस्करण, १९६१ ई० ।

35. रुय्यक, अलङ्कार सर्वस्वम्, पृष्ठ ५३

36. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, १०/३३

37. जयदेव, चन्द्रालोक, ५, ३१, ३२,
मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६६ ई० ।

38. अप्पय दीक्षित, कुवलयानन्द, पृष्ठ २३, निर्णयसागर प्रेस, [illegible]
संस्करण, १९१७ ई० ।

39. कीर्तिकौमुदी, ९/२९

40. सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वचकं द्वयो : ।
सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत् ।। (साहित्य दर्पण, १०/५४)

41. सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ।।
... ... तथेत्युक्तानुक्तनिमित्तत्वात् । (साहित्य दर्पण, १०[illegible]

42. समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः ।।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः । — साहित्य दर्पण, १०/५६

43. आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः ।।
रुय्यक, अलङ्कारसर्वस्वम्, पृष्ठ ५१

44. नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती ।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा ।। दण्डी, काव्यादर्श, २/८

45. रुद्रट, काव्यालङ्कार - सूत्रवृत्ति, ७/३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

46. कीर्तिकौमुदी, ९/२७ तथा सुरथोत्सव, ७/२६

47. उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः ।। साहित्य दर्पण, १०/५७, कविराज विश्वनाथ, संपादक-शालग्राम शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७ ई० ।

48. पदार्थनां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एक धर्माभिसंबन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ।। साहित्यदर्पण, १०/४८

49. अप्रस्तुत प्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते ।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ।। साहित्य दर्पण १०/४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पञ्चम अध्याय

छन्दोविधान

मन्दश्छन्दसि कोऽपि कोऽपि विकलः सालंकृतिर्व्याकृता—
वर्थे कोऽपि वृथाश्रमो रसनिधावन्धः स कोऽप्यध्वनिः ।
वक्रान्तर्विहरद्भिरञ्चितनयामञ्जीरमञ्जुस्वर—
स्पर्धा बन्धुभिरेक एव कवते काव्यैः कुमारात्मजः ।।

सोमेश्वरस्य

छन्द शब्द की निष्पत्ति "छदि संवरणे" इस चुरादि धातु में असुन् प्रत्यय के योग से होती है । इसका व्यवहार सामान्यतः कामना, अभिलाषा, स्वेच्छाचार आदि के रूप में होता है । इनमें भी स्वेच्छाचार शब्द अधिक प्रचलित है । छन्दसाकृतम्, छन्दस्यंस्वच्छन्दः आदि प्रयोग उदाहरण स्वरूप उद्धृत किये जा सकते हैं । यह शब्द पद्य और वेद के लिए भी रुढ़ हो गया है । वास्तव में पाणिनीय सूत्र छन्द के वेदार्थक होने को ध्वनित करते हैं, जैसे छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति, छन्दसि दृष्टानुविधिः, छन्दसि बहुलम् इत्यादि । आज की भाषा संस्कृत की अपेक्षा वैदिक भाषा स्वतंत्र है । यह उसकी तरह व्याकरण का भी अनुरोध नहीं करती । इसकी सिद्धि के लिए इसके व्याकरण को ही समय-समय पर अपनी व्याख्या बदलनी पड़ी है । महामुनि पाणिनि जैसा सिद्ध वैयाकरण भी वैदिक शब्दावली को नियंत्रित करने के लिए कोई ठोस उपाय नहीं बता सके, अधिकतर 'छन्दसिबहुलम्' कह कर ही निर्वाह किया है इससे सिद्ध है कि वेद के नामकरण की पृष्ठभूमि में उसका भाषागत स्वेच्छाचार ही काम कर रहा है । परन्तु पद्य में उसकी गति-स्वच्छन्दता के साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि छन्द नाना वर्ण्य-विषयों को अपने में समेटे रहता है । छन्द का महत्व इसी से जाना जा सकता है कि इसकी गणना वेद के छः प्रसिद्ध अङ्गों में की जाती है । महामुनि पाणिनि ने अपनी शिक्षा में इसे वेद का पाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माना है[1], अर्थात् उनकी दृष्टि में छन्द वेद-पुरुष के खड़े होने का मुख्य आधार है। इस मान्यता के पीछे सम्भवत: वाङ्मय जगत् की तीन प्रवृत्तियों में से पद्य और गीति इन दोनों प्रवृत्तियों से छन्दों का घनिष्ठ सम्पर्क ही काम कर रहा है। शब्द प्रयोग का दो तिहाई भाग छन्दों के द्वारा ही अपनी सत्ता स्थिर किये हुए है इसलिए छन्द सर्वाधिक स्पृहणीय, पठनीय और मननीय है इसमें कोई सन्देह नहीं।

छन्द की उपयोगिता और महत्व

साहित्य रचना को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है — गद्य और पद्य। गद्य शब्द की उत्पत्ति 'गद्' धातु से हुई है और उसका सम्बन्ध साधारण बोलचाल की भाषा से है। साहित्य का यह अंग ज्ञान के विस्तार के लिए अनुकूल है, क्योंकि इसमें बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है। गद्य को देखते हुए उसमें संगीतात्मकता का भी अपेक्षाकृत अभाव रहता है। पद्य का सम्बन्ध पद से है जिसका अर्थ है चरण। वह रचना जो नियमबद्ध और सुव्यवस्थित पदों के आधार पर खड़ी हो, पद्य कहलाती है। इसमें नृत्य की सी गति रहती है जो भाव की शक्ति और गति के साथ ही साथ बढ़ती चलती है। साथ ही इसमें बुद्धितत्व के स्थान पर भावतत्व की प्रधानता रहती है, जिसके फलस्वरूप गद्य की अपेक्षा संगीतात्मकता भी अधिक रहती है। यद्यपि हम कह सकते हैं कि अनेक स्थलों पर गद्य भी ताल, लय व अलङ्कारादि सामग्री से युक्त होकर अत्यन्त चित्ताकर्षक और रसपूर्ण दशा में उत्कृष्ट पद्य के सदृश बन जाता है और अनेक स्थलों पर छन्द और ताल से युक्त ऐसे पद्य भी मिल जाते हैं जो भाव तथा रसहीनता के कारण गद्यवत् प्रतीत होते हैं। बाण की कादम्बरी गद्य में होते हुए भी लय, ताल तथा अलङ्कारादि सामग्री से युक्त होकर पद्य गुणों की दृष्टि से उत्कृष्ट पद्य को भी पीछे छोड़ जाती है तथापि इस अपवाद की उपस्थिति में भी पद्य संगीतात्मक ताल तथा लय से युक्त होकर गद्य से स्पष्ट रूप में पृथक जा पड़ता है। कवित्वपूर्ण गद्य एवं पद्य के बीच की भेदभित्ति इस लयादि को उत्पन्न करने वाली छन्दोयोजना ही है। इस प्रकार के गद्य से पार्थक्य प्रदर्शन करने के हेतु कविता में कल्पना तथा भाव के साथ ही साथ छन्दोयोजना से उत्पन्न संगीत, एवं उस संगीत से उत्पन्न लय भी होनी चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाव तथा कल्पना का छन्दोबद्ध वर्णन ही दूसरे शब्दों में पद्य कहला सकता है। लय गद्य में भी प्राप्त हो सकती है, परन्तु यह लय, प्रवाह अथवा शब्दों की विशिष्ट गति का ही परिणाम है—संगीतात्मकता या छन्दोमयता का नहीं। छन्द के अस्तित्व से ही काव्य में वह संगीतात्मकता प्रादुर्भूत होती है जिससे कविता को आकर्षक सौन्दर्य प्राप्त होता है। काव्य से छन्द को पृथक् कर देने पर उसका एक मनोहर रूप, उसका एक विशेष महत्व तथा उसका अमिट प्रभाव कम हो जाता है।

कतिपय लोगों का यह भी विचार है कि छन्दोबद्ध रचना कवि के लिए इसलिए भी बन्धन है कि वह संगीत का प्रेमी है। 'उसका गान प्रवाह में बंधी हुई प्रणाली में बहकर संकुचित क्यों हो? परन्तु सोचने की बात तो यह है कि कविता और संगीत का जब स्वाभाविक सम्बन्ध है तब संगीत का उत्कर्ष कविता में उत्तरोत्तर साधक होगा या बाधक। संगीत की सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। क्या लय अथवा ध्वनि का अनुगमन पराधीनता नहीं है। जब तक संगीततत्व कविता के लिए उपयोगी समझा जायेगा तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि छन्द उसके लिए व्यर्थ है क्योंकि इनके द्वारा संगीत तत्व का उत्तरोत्तर उत्कर्ष ही देखा जाता है, अपकर्ष नहीं।

पद्य में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनके कारण वह अन्य पद्धतियों से विशेष मान्य समझा जाता रहा है। इन विशेषताओं में छन्दोयोजना अत्यन्त प्रमुख है। साहित्य में पद्य की प्राचीनता सभी स्वीकार करते हैं। कदाचित् आदि मानव ने भी इस विश्व के प्रति अपनी सरल और सहज भावानुभूति को गुनगुनाकर संगीत के रूप में ही प्रकट किया होगा। यही कारण है कि विश्व की सम्पूर्ण जातियों का प्रारम्भिक साहित्य पद्य में उपलब्ध है। पद्य मानव के अधिक निकट है और वह उसके सरल जीवन की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। जीवन की जटिलता के साथ ही या कहिए कि सभ्यता की वृद्धि के साथ गद्य का विकास हुआ होगा। ज्यों-ज्यों हमारे विचारों की सूक्ष्मता बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे हमारे भावाभिव्यक्ति के साधन परिमार्जित होते जाते हैं। सभ्यता की वृद्धि मानव जीवन में अनेक जटिलताओं को उत्पन्न करती है, भाव के स्थान पर तर्क और बौद्धिकता का आधिक्य होता है और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक प्रकार की यान्त्रिकता उत्पन्न हो जाती है। जिसमें मानवीय सम्बन्धों में सानिध्य का अभाव हो जाता है और गौण सम्बन्धों की प्रधानता हो जाती है। ऐसी स्थिति में ही गद्य की प्रधानता हो जाती है। संसार के सभी देशों में गद्य की प्रधानता ही ने अपने वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, व्याकरण सम्बन्धी, औषधि सम्बन्धी, ज्योतिष् सम्बन्धी; तथा नीति सम्बन्धी विचारों के लिए गद्य का ही आश्रय लिया होगा परन्तु यह भारत की ही विशेषता है कि उसने उपर्युक्त सभी विषयों में भी छन्दोबद्ध पद्य को ही ग्रहण किया है।

वे जानते थे कि पद्य में पदयोजना सम्पूर्ण होने के कारण श्रुति मधुर एवं मनोहर हो जाती है तथा इसमें संक्षेप में बहुत सी बातों का समावेश किया जा सकता है। उक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त उन्हें इस बात का भी ज्ञान था कि पद्यबद्ध रचना के पढ़ने में मन अधिक लगता है और किसी भी विषय को कंठस्थ करने में अधिक सरलता रहती है। इसी कारण श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, इतिहास, व्याकरण, कोष, वैद्यक, ज्योतिष् आदि सभी विषयों के ग्रन्थ पद्य में ही उपलब्ध होते हैं। छन्दों के सम्पुट में बन्द रहने के कारण ही ये कवितायें जनता के जिह्वाग्र में सुरक्षित रह सकीं। हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियाँ नष्ट हो गयीं, समय के प्रवाह में बह गयीं, छीन ली गयी, भस्म कर दी गयी। किन्तु कर्ण परम्परागत काव्य रचना अभी तक ज्यों की त्यों चली आ रही है। इसीलिए हमारे प्राचीन साहित्य में गद्य रचना की इतनी कमी है। गद्य का शुद्ध वैज्ञानिक रूप संस्कृत में इसी कारण निखर नहीं सका। निःसन्देह संस्कृत साहित्य का गद्य रूप पर्याप्त उन्नत और समृद्ध है, परन्तु वह पद्य के प्रभाव से सर्वथा स्वतंत्र नही है जैसा कि बाण, दण्डी आदि की कृतियों से स्पष्ट हो जाता है।

सोमेश्वरदेव द्वारा प्रयुक्त छन्द

महाकवि सोमेश्वर देव ने अपने महाकाव्यों की रचना प्रमुख लौकिक-छन्दों के द्वारा की है। कवि के पौराणिक महाकाव्य **सुरथोत्सव** तथा ऐतिहासिक महाकाव्य **कीर्तिकौमुदी**, में अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, रथोद्धता, तोटक, स्वागता भुजंगप्रयात द्रुतविलम्बित,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसन्ततिलका, मालिनी, शालिनी, हरिणी, शिखरणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित तथा स्रग्धरा आदि छन्दों का विधान कुशलता से किया गया है। यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि कवि के इन महाकाव्यों के पूर्ववर्ती महाकाव्यों में एक परम्परा प्राप्त होती है कि महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग एक ही प्रकार के छन्द से रचित हो, परन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तित कर दिया जाय। परन्तु कीर्तिकौमुदी, तथा सुरथोत्सव में इस प्रकार का निर्वाह कतिपय गिने चुने सर्गों मे ही किया गया है। अधिकांश सर्गों में एक सर्ग के अन्तंगत विभिन्न छन्दों का समावेश किया गया है। महाकाव्य में अनेक छन्दों की योजना कवि के छन्द-ज्ञान को द्योतित करती है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वरदेव सामान्य विषय के वर्णन में भी छन्दशास्त्र को नहीं भूलते हैं :—

तेजपालः पुनस्तेषु, सोदरेषु लघुः किल।
निजप्रभुप्रसादेन, गुरुणाऽपि न लङ्घ्यते ॥
छन्दः शास्त्रे श्रुताऽस्माभिर्लघुताऽपि क्वचिद् गुरोः।
तस्मिन् बन्धुजने दृष्टा, गुरुताऽस्य लघोरपि ॥
(कीर्तिकौमुदी, ३/३९ तथा ४०)

कवि सोमेश्वर देव का स्वतः कथन है कि वह स्वयं छन्द, अलङ्कार तथा रस के प्रतिपादन में सिद्धहस्त हैं। इस गणना में भी वह छन्द को प्राथमिकता प्रदान करते हैं :—

मन्दश्छन्दसि कोऽपि कोऽपि विकलः सालंकृतिर्व्याकृता—
वर्थे कोऽपि वृथाश्रमो रसनिधावन्धः स कोऽप्यध्वनिः।
वक्रान्तर्विहरद्भिरञ्चितनयामञ्जीरमञ्जुस्वर—
स्पर्धाबन्धुभिरेक एव कवते काव्यैः कुमारात्मजः ॥
(सुरथोत्सव १५/५१)

उपर्युक्त वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का छन्द के प्रति विशेष लगाव था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि के ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी में ७२२ तथा पौराणिक महाकाव्य सुरथोत्सव में ११८२ छन्द हैं। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य का प्रधान छन्द अनुष्टुप् तथा दूसरा स्थान उपजाति छन्द को प्राप्त है। सुरथोत्सव में प्रधान छन्द उपजाति तथा द्वितीय स्थान अनुष्टुप् को प्राप्त है। प्रसगत: महाकाव्यों के छंदों का एक विवेचन प्रस्तुत है :–

अनुष्टुप्

समस्त इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में अनुष्टुप् छंद की प्रधानता है। कालान्तर में रचे गये ऐतिहासिक तथा पौराणिक महाकाव्यों में भी इसी छंद की प्रधानता दिखलाई पड़ती है। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्त-तिलक में कहा है:—

शास्त्रं कुर्यात्प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टभा।
येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्टसेतुताम्॥
पुराण प्रतिबिम्बेषु प्रसन्नोपायवर्त्मसु।
उपदेशप्रधानेषु कुर्यात्सर्वेष्वनुष्टभम्॥
आरम्भे सर्गबन्धस्य कथा विस्तरसंग्रहे।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्तः शंसन्त्यनुष्टभम्[२]॥

क्षेमेन्द्र ने उपर्युक्त विचार ऐतिहासिक, पौराणिक, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि में अनुष्टुप् की सफलता को अनुभव करके ही निर्धारित किये होगें। वास्तव में इन विषयों में जैसी सफलता इस प्राचीन छन्द को मिली है वैसी अन्य किसी को नहीं मिल सकती थी। छन्दों की भी अपनी विशेषता होती है। कुछ छन्द गद्यात्मक अधिक होते हैं और कुछ पद्यात्मक। इतिवृत्तात्मक वृत्तान्तों में गद्यात्मक छन्द अच्छे लगते हैं एवं सरस मधुर काव्यात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के हेतु संगीत प्रधान छन्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। अनुष्टुप् में संगीत की मात्रा कम है, अत: घटना प्रधान अथवा अन्य विवरण प्रधान स्थलों में जहां संगीत अपेक्षित नहीं होता अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक सफल सिद्ध होता है। सम्भवत: इसीलिए घटना प्रधान ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी में कवि ने सबसे अधिक अनुष्टुप् छन्दों की योजना की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास पुराण में प्रयुक्त होने वाले इस अनुष्टुप् का रूप हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के प्रायः १५००० मन्त्र अनुष्टुप् में ही मिलते हैं। ऋग्वेद में अनुष्टुप् के चारों चरण चार पंक्तियों में अलग-अलग लिखे हुए मिलते हैं। इनके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण होते हैं। पुराणों में आकर अनुष्टुप् का रूप पूर्णरूपेण सुनिश्चित हो चुका था। यहाँ यदि किसी प्रकार का छन्दोंभंग मिलता है तो वह पाठ की भ्रष्टता के ही कारण से। अब इस लौकिक अनुष्टुप् में पंचम वर्ण सर्वत्र ह्रस्व मिलता है, छठा वर्ण गुरु मिलता है, सातवां वर्ण समपादों में ह्रस्व व विषम-पादों में दीर्घ मिलता है। शेष वर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ कुछ भी हो सकते हैं।

पुराणों के अनन्तर महाकाव्यों में अनुष्टुप् का शुद्ध रूप दिखलाई देता है। महाकवि सोमेश्वर देव के **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य का प्रधान छंद अनुष्टुप् ही है। इस महाकाव्य के सम्पूर्ण ७२२ छन्दों में लगभग ४२० छन्द अनुष्टुप् के ही हैं। **सुरथोत्सव** में अनुष्टुप् छन्द का द्वितीय स्थान है। **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य का मंगलाचरण भी इसी छन्द में किया गया है। महाकाव्य के छठे और नवे सर्ग को छोड़कर सभी सर्गों का अधिकांश भाग अनुष्टुप् छन्द में ही रचा गया है। **कीर्तिकौमुदी** के प्रथम सर्ग में अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से कवि सोमेश्वर देव विष्णु की चारों भुजाओं की वन्दना करते हैं जो कि धर्म के प्रहरी के रूप में विद्यमान हैं। तदनन्तर कवि 'शिव' तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। कवि के द्वारा इसी छन्द के माध्यम से वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, बाण, धनपाल, विल्हण हेमचन्द्र, नीलकण्ठ तथा प्रह्लादन आदि कवियों की प्रशंसा की गयी है। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन वस्तुपाल के साहित्यिक कवि मण्डल के कवियों की भी अनुष्टप् छन्द के माध्यम से ही प्रशंसा की गयी है। इसके अनन्तर सज्जन की प्रशंसा करते हुये कवि कहता है :—

ह्रदा यावःपरित्यक्ता, निर्व्याला मलयद्रुमाः ।
अमालिन्यकृतो दीपाः, श्रीपात्रं सन्तु साधवः ।।
(कीर्तिकौमुदी, १/३०)

सज्जनों की प्रशंसा कर चुकने के अनन्तर वह दुर्जनों की निन्दा करता है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्रुप्रवर्तकैर्धूमैरिव किं तैरसाधुभिः ? ।
रसवत्यां कवेरुक्तौ, मालिन्यं जनयन्ति ये ।।

(वही, १/३४)

इसके अतिरिक्त वस्तुपाल के चरित्र चित्रण का कारण, गुंजर प्रदेश की राजधानी अनहिल्लवाड़ का यशोगान तथा सिद्धसरोवर के तट पर स्थित कीर्तिस्तम्भ का वर्णन अनुष्टुप् छन्द के ही माध्यम से किया गया है ४।

क्षेमेन्द्र का कथन है कि सर्ग का प्रारम्भ अनुष्टुप् छंद के द्वारा ही होना चाहिए। कवि के कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के छठे तथा नवे सर्ग को छोड़कर शेष सभी सर्गों का प्रारम्भ अनुष्टुप् छंद में ही किया गया है। कीर्तिकौमुदी के द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ भी अनुष्टुप् छन्द से किया गया है:—

अथ चौलुक्यभूपालः, पालयामास तत् पुरम् ।
जितराजसमाजः श्रीमूलराज इति श्रुतः ।।

इसी सर्ग में गुर्जर राजधानी अनह्लिवाड़ के चालुक्य वंशीय राजा अरणोराज से वीसल देव तक का वर्णन प्राप्त होता है। वस्तुपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति, लवण प्रसाद की नड्डूल-नृपति पर विजय[5] तथा लवण प्रसाद का अपने पिता तुल्य शौर्य का वर्णन अनुष्टुप् छंद के माध्यम से किया गया है:—

आत्मानमात्मजे तस्मिनशेषगुणभूषणम् ।
स पिता दर्पणप्राये, सङ्क्रान्तमिव पश्यति ।।

(कीर्तिकौमुदी, २/७७)

द्वितीय सर्ग के समान ही तृतीय सर्ग में भी कवि ने अनुष्टुप् छंद के माध्यम से वंश-वर्णन प्रस्तुत किया है:—

रसालङ्कारणे तस्मिन्नालवालानुकारिणि ।
प्रांशुः प्राग्वाट वंशोऽभूत्, पुरे गूर्जरभूभुजाम् ।।

(वही, ३/१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी सर्ग में वस्तुपाल के पूर्वज चण्डप से लेकर वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह तथा तेजपाल के पुत्र लावण्यसिंह का वंश क्रमानुसार वर्णन किया गया है [६]। ऐसा प्रतीत होता है कि इन वंशावलियोंके प्रत्येक वंशज के व्यक्तित्व का निखार जितना अनुष्टुप्-छन्द के माध्यम से सम्भव था, उतना अन्य किसी छन्द से सम्भव नहीं हो सकता है। वंश-वर्णन समाप्त होते ही कवि सोमेश्वरदेव अनुष्टुप् छन्द के छोड़कर अन्य छन्द के माध्यम से नवीन वर्णन प्रस्तुत कर देते हैं। चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ भी अनुष्टुप् छन्द से किया गया है। वस्तुपाल की मन्त्रि पद पर नियुक्ति हो जाने के अनन्तर वह स्तम्भतीर्थ भेजे गये। वहाँ पर पहुँचकर उन्होंने शासन प्रवन्ध में परिवर्तन कर शान्ति-व्यवस्था स्थापित की। सम्पूर्ण शासन-प्रबन्ध की सार्थकता कवि ने अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से व्यक्त की है [७]। वस्तुपाल ने तक्र-विक्रय के लिए वेदिकाएँ निर्मित करायी :-

स्पृष्टा-ऽस्पृष्टनिषेधाय, विधायावधिवेदिकाम्।
पुरेऽस्मिन् वारितस्तेन, तक्रविक्रयविप्लवः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ४/१७)

शासन प्रबन्ध के अतिरिक्त इसी सर्ग के शेष वर्णन में अन्य प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

पञ्चम सर्ग में भृगुकच्छ के नृपति शङ्ख तथा वस्तुपाल के भीषण युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें दोनों दलों के सैनिक युद्ध क्षेत्र में मारे गये। अन्त में शङ्ख को अपनी बची हुई सेना के साथ संधि करनी पड़ी। इस सम्पूर्ण वर्णन में भी अनुष्टुप् द्रष्टव्य है [८]। सुरथोत्सव महाकाव्य के दशम सर्ग में भी भवानी एवं दैत्य का युद्ध-वर्णन अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से किया गया है। यद्यपि यह सर्ग चित्रकाव्य होने के कारण युद्ध की भीषणता को चित्रित कर पाने में असमर्थ है तथापि छन्द अनुष्टुप् होने के कारण वह वर्णन सजीव ही प्रतीत होता है। **कीर्तिकौमुदी** के सप्तम सर्ग में परम्परा से प्राप्त चन्द्रोदय तथा रतिक्रीड़ा का काव्यात्मक वर्णन प्राप्त होता है [९], प्रसंगतः एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथोज्जगाम सामन्तः, कुसुमास्त्रमहीपतेः ।
शृङ्गारस्य जयोद्गारबन्दी कुमुदबान्धवः ।।

(वही, ७/२७)

अष्टम सर्ग में धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। प्रातः कालीन स्नान के अनन्तर मन्त्री ने तीर्थङ्कर की अर्चना की तथा ध्यानावस्था में लीन हो गये । इसके अनन्तर ही मन्त्री ने तीर्थयात्रा के लिये निर्णय लिया । मन्त्री के इस दैनिक कार्य-कलाप का वर्णन अनुष्टूप्-छन्द के द्वारा ही किया गया है[१०] । इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी का अधिकांश विषय अनुष्टुप्-छन्द से अच्छादित है । यह सत्य है कि कवि ने विषयानुरूप ही इस छन्द को अपनाया है ।

कवि ने सुरथोत्सव महाकाव्य के तृतीय सर्ग में अनुष्टुप् छन्दों के द्वारा शुम्भ और निशुम्भ दैत्यों के पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है:—

दैत्यों से दुःखी होकर देवगण ब्रह्मा के पास गये तथा इन दैत्यों के द्वारा दिये जाने वाले कष्ट के सम्बन्ध में उलाहना सहित निवेदन किया । ब्रह्मा ने दैत्यों को दिये गये बरदान के सम्बन्ध में देवगणों से बतलाया कि उन्हें किस प्रकार का वरदान मिला है । उन्होंने पुनः कहा कि आप लोग भवानी के पास जाकर, जो कि दैवी स्त्री जाति की है, अपने कष्ट को कह सुनाये । निश्चय ही वह शुम्भ को मारने में सुक्षम है[११] । वह आप लोगों की कामना की पूर्ति अवश्य करेगी:—

पूरयिष्यति यौष्माकान्कामान्कामारिकामिनी ।
नैसर्गिकं हि वात्सल्यमपत्ये मातुरातुरे ।।

(सुरथोत्सव, ३/६९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरथोत्सव महाकाव्य में सर्वाधिक-अनुष्टुप् छन्द दशम सर्ग में प्राप्त होते हैं । इस सर्ग के युद्ध-वर्णन की सफलता इसी अनुष्टुप् छन्द में ही हुई है [१२]।

सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी में केवल सुरथोत्सव का १५ वाँ सर्ग ही ऐसा है, जहाँ पर यह छन्द प्रकीर्ण रूप में विद्यमान है । इस आत्मकथनात्मक सर्ग में कवि ने अनुष्टुप् के द्वारा चालुक्य-वंशीय राजाओं के कार्यों का वर्णन किया है । यहाँ पर एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसके द्वारा ज्ञात होता है कि चालुक्य राजा ने कलिकाल में वाजपेय याग सम्पादित किये थे :—

विधिवद्वाजपेयं यः कलिकालेऽप्यकल्पयत् ।
कियतीं वा जपेयं तच्चरिताद्भुतसंहिताम् ।।
(सुरथोत्सव, ५/१०)

पुनश्च

कुशोपशोभितैर्यागैस्तडागैश्च परः शतैः ।
दृष्टं पूतं च यश्चक्रे चक्रवर्तिपुरोहितः ।।
(वही, १५/२३)

कवि अपने पूर्वज कुमार का वर्णन उपर्युक्त अनुष्टुप् छन्द के द्वारा करते हुये कहते हैं कि पुरोहित कुमार ने अनेक याग किये तथा सैकड़ों तडाग खुदवाये । पुनः कवि ने अपने पूर्वज सर्वदेव के कार्यों का वर्णन भी अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से इस प्रकार किया है :—

'सर्वदेव ने स्थान-स्थान पर सरोवर खुदवाये, प्रतिदिन शिव पूजा करते थे, प्रत्येक ब्राह्मण का सत्कार करते थे, अतएव प्रत्येक घर में उनकी प्रशंसा होती थी। सर्वदेव के अनुज कुमार के आज्ञाकारिणी पत्नी लक्ष्मी थी जो कि वास्तव में लक्ष्मी ही थी ।' यह सभी वर्णन अनुष्टुप्-छन्द में ही किये गये हैं[१३] । निःसन्देह कवि का यह प्रिय छन्द है । सोमेश्वरदेव के समान ही उनके पूर्ववर्ती भारवि तथा माघ ने भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौराणिक महाकाव्यों की रचना की है । इन पौराणिक कथानकों को प्रस्तुत करने में प्रायः छन्द-विधान में भी साम्य दृष्टिगोचर होता है । भारवि तथा माघ ने अपने महाकाव्यों के युद्ध-वर्णन अनुष्टुप्-छन्द के द्वारा प्रस्तुत किये हैं । उसी प्रकार सोमेश्वरदेव ने सुरथोत्सव के दशम सर्ग में भवानी तथा दैत्य का युद्ध अनुष्टुप् - छन्द के माध्यम से प्रस्तुत किया है । तीनों महाकाव्यों के चित्रालङ्कारों में भी समानता है । अनुष्टुप्-छन्द में भारवि का एकाक्षर-श्लोक प्रस्तुत है :—

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो, नानेन नुन्ननुन्ननुत् ॥
(किरातार्जुनीय, १५/१४)

भारवि के समान ही माघ का एकाक्षर श्लोक अनुष्टुप्-छन्द में प्रस्तुत है :—

दाददो दुद्ददुद्दादी,दादादी दूददीददोः ।
दुद्दादं दददे दुद्दे, ददाददददोऽददः ॥
(शिशुपालबध, १९/११४)

भारवि तथा माघ की परम्परा को स्वीकार करते हुये सोमेश्वरदेव ने भी अनुष्टुप् छन्द में एकाक्षर श्लोक प्रस्तुत किया है :—

रेरे रुरोरुरूरोररेररिरिरा ररौ ।
रैरी रीरारराररीराररूरीरीरोऽरुरार रुक् ॥
(सुरथोत्सव, १०/९५)

इस प्रकार चित्रालङ्कारों के साम्य के अतिरिक्त भारवि तथा माघ के समान ही सोमेश्वरदेव ने युद्ध-वर्णन के लिए अनुष्टुप्-छन्द को ही स्वीकार किया है । इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास ने रघुवंश[४] में वंश-वर्णन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुष्टुप्-छन्द के माध्यम से ही प्रारम्भ किया है। वर्णन करते हुये कवि कालिदास का कथन है कि 'सत्पात्र को दान देने के लिए ही धन इकट्ठा करने वाले, सत्य बोलने के लिए ही कम बोलने वाले, और सन्तान के लिए ही गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करता हूँ:—

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्यायमितभाषिणाम्।
यशसे विजगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥
(रघुवंश, १/६)

महाकवि कालिदास के समान ही सोमेश्वरदेव ने भी **कीर्तिकौमुदी** में चौलुक्य वंश वर्णन अनुष्टुप् छन्द में ही प्रस्तुत किया है। प्रथम चालुक्य राजा मूलराज का वर्णन करते हुये कवि कहता हैं कि दान के द्वारा दरिद्रता को दूर करने वाले, शौर्य के द्वारा दुर्जनों को जीतने वाले तथा सूर्यवंश की कीर्ति को भी स्थगित करने वाले राजा मूलराज ने चिरकाल तक शासन किया :—

दानोपद्रुतदारिद्रयं शौर्यनिर्जितदुर्जनम्।
कीर्तिस्थगितकाकुत्स्थं, यो राज्यमकरोच्चिरम् ॥
(कीर्तिकुमौदी, २/५)

वंश-वर्णन तथा युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त अनुष्टुप् छन्दों को देखने से पता चलता है कि कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित है।

इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति

वैदिक छंद त्रिष्टुभ् से ही लौकिक छन्द इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति की सृष्टि होती है। जिस छन्द में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों के चरण हो, उसे उपजाति छन्द कहते हैं। उपजाति कवि के महाकाव्यों का अत्यधिक व्यापक छन्द है। कदाचित् इसकी गेयता और सरलता के कारण ही **सुरथोत्सव** तथा **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्यों में इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्यधिक प्रयोग हुआ है । कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में अनुष्टुप् का प्रथम तथा इस छंद का दूसरा स्थान है । सुरथोत्सव में लगभग २८६ तथा कीर्तिकौमुदी में लगभग १५५ बार इस छन्द की आवृत्ति हुई है । इस प्रकार पौराणिक महाकाव्य सुरथोत्सव में इस छंद की संख्या अधिक है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने प्रायः रचना के प्रवाह में इन्द्रवज्रा क और उपेन्द्रवज्रा के चरणों को एक ही छंद में संजोया है और अपने भावों को व्यक्त करने के लिए इस प्रकार के छंदों की अनेक बार पुनरावृत्ति की है। अतः उपजाति की संख्या इन्द्रवज्रा की अपेक्षा अधिक हो गई है । कवि के महत्वपूर्ण इस उपजाति छंद के प्रयोग के विषय में महाकवि क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक[15] में इस प्रकार कहा है:—

> शृङ्गारलम्बनोदारनायिकारूपवर्णनम् ।
> वसन्तादि तदङ्गञ्च सच्छायमुपजातिभिः ।।
> (सुवृत्ततिलक,३/१७)

'अर्थात् शृङ्गार रस के आलम्बनभूत उदात्त नायिकाओं के रूपों का, वसन्तादि षड्ऋतुओं का और उसी के अनुकरण पर उसके (ऋतुओं के) अंगों का वर्णन उपजाति छंद के द्वारा करना चाहिए'

उपर्युक्त कथनानुसार ही कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में उपजाति छंद का प्रयोग सर्वप्रथम सिद्धसर के वर्णन में होता है । ऋतु से प्रभावित कमल युक्त तड़ाग अत्यन्त ही मनोरम प्रतीत होता है । पम्पा सरोवर भी इस तडाग की तुलना करने में असमर्थ है । इस सरोवर के सौन्दर्य का वर्णन उपजाति छन्द के द्वारा ही प्रस्तुत किया गया है :—

> सशङ्खचक्रः प्रथितप्रभूतावतारशाली कमलाभिरामः ।
> स एष कासारशिरोवतंसः, कंसप्रहर्तुः प्रतिमां बिभर्ति ।।
> न मानसे माद्यति मानसं मे, पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम् ।
> अच्छोदमच्छोदकमप्यसारं, सरोवरे राजति सिद्धभर्तुः ।।
> (कीर्तिकौमुदी, ९/७७, ७८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के ही द्वितीय सर्ग में इस छन्द के द्वारा गुर्जर राज्यलक्ष्मी का बहुत ही मार्मिक चित्रण उपस्थित किया गया है। गुर्जर राज्यलक्ष्मी स्वप्न में आकर राजा लवण प्रसाद से कहती हैं कि मैं आपको वरण करती हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये और मेरी रक्षा कीजिये। राज्यलक्ष्मी का यह निवेदन कीर्तिकौमुदी के प्रमुख वर्णनों में से एक है[१६]। गुर्जर राज्यलक्ष्मी के इस मार्मिक निवेदन में प्रथम छन्द को छोड़कर सभी छन्द उपजाति में ही रचे गये हैं। प्रथम छन्द इन्द्रवज्रा है जिसके द्वारा राज्यलक्ष्मी लवणप्रसाद से अपना परिचय प्रस्तुत करती है:—

हे वीर ! वैरिध्वजिनीगजेन्द्रगण्डस्थलीखण्डनखड्गचण्ड ! ।
प्रत्यर्थिसार्थेन कदर्थ्यमानां, जानीहि मां गूर्जरराज्यलक्ष्मीम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, २/९२)

कीर्तिकौमुदी के छठे सर्ग में वस्तुपाल की विजय के उपलक्ष्य में स्तम्भतीर्थ वासियों द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव का वर्णन अधिकांशत: उपजाति छन्द में ही किया गया है। उत्सव की सरसता का स्पष्ट वर्णन जितना इन छन्दों के द्वारा हुआ है, उतना अन्य किसी छंद के द्वारा सम्भव नहीं है। छठे सर्ग के अकेले उपेन्द्रवज्रा छंद के द्वारा ज्ञात होता है कि स्तम्भतीर्थ के प्रत्येक गृह लेप के द्वारा स्वच्छ बनाये गये थे, जिनमें स्वस्तिक अङ्कित था। गृहों में वाद्य के अनुकूल ही कुलाङ्गनाओं के गीत हो रहे थे:—

गृहे गृहे धातुरसानुलेपाः, समन्ततः स्वस्तिकपङ्क्तिमन्तः ।
विरेजिरे तूर्यरवानुकूलाः कुलाङ्गनामङ्गलगीतयश्च ॥

(वही, ६/२)

मन्दिरों में विशेष रूप से पूजा हो रही थी। राजमार्ग की विशेष शोभा तथा स्त्रियों की वेशभूषा देखने योग्य थी। सम्पूर्ण नगर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी थी। इसी वर्णन के प्रसंग में एक इन्द्रवज्रा छंद के द्वारा ज्ञात होता है कि जिन स्तम्भतीर्थ-निवासियों के रात्रि में रिपु-भय से निद्रा नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आती थी, परन्तु मंत्री के द्वारा व्यवस्था किये जाने के कारण वे नगर-निवासी सम्प्रति अत्यधिक प्रसन्न थे :—

येषां निमेषार्द्धमपि क्षपायामायान्न निद्रा रिपुविद्रवेण ।
सुस्थीकृतानां सचिवोत्तमेन, तेषां च हर्षान्तरितेयमासीत् ॥
(कीर्तिकौमुदी ६/४)

इन्द्रवज्रा-छन्द के द्वारा कवि पुनः बतलाता है कि:—

आमात्यमालोक्य चुलुक्यभर्तुः, कर्तुं स्थितं शस्त्रभृतो निरस्त्रान् ।
मन्ये मनोभूरपि मन्द मन्दं, चापक्रिया चापलमाचचार ॥
दिङ्मण्डली पाटलिपुष्पगन्ध सम्बन्धसोन्मेषमरुन्मिषेण ।
शान्तोपतापा सचिवेन तेन, सन्तोषतः श्वासमिव व्यमुञ्चत् ॥
(वही ६/७ तथा ८)

देवी एकल्लवीरा के मन्दिर में उत्सव था। मंत्री कतिपय परिजनों के साथ देवी की अर्चना करने गये। देवी की अर्चना के उपरान्त मध्यान्ह काल में कवि समुदाय के साथ वस्तुपाल एक लतामण्डप में बैठ गये। कतिपय कवियों ने मन्त्री के परिवार की प्रशंसा की तथा कतिपय ने उनके कुल की प्रशंसा की। कर्णसदृश वस्तुपाल के कर्णकुहर कवि-वाणी से पूत हो गये। उसने भी कवियों को उदारता पूर्वक दान दिया। इस प्रकार अमृतोपम काव्यवृष्टि से सिक्त वस्तुपाल ने कवि गोष्ठी करते हुये मध्याह्न काल उद्यान में ही व्यतीत किया तथा सायंकाल अपने राजभवन को वापस गये :—

तस्मिन् वने सत्कविवक्त्रयन्त्रविनिर्गतेन श्रवणामृतेन ।
संसिच्यमानः सचिवः प्रधानमह्लाय मध्याह्नमयं निनाय ॥
(वही, ६/५५)

स्रोता वस्तुपाल को जिस परमानन्द की प्राप्ति हुई, उसका सरस वर्णन उपजाति छंद के द्वारा ही किया गया है। यह उपजाति छन्द विषयानुसार ही उपयुक्त है। इस सम्पूर्ण सर्ग में केवल अन्तिम छंद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोड़कर अधिकांशत: छन्दों में उपजाति का ही प्रयोग हुआ है[१७]। इन्द्रवज्रा छंद केवल चार बार प्रयुक्त हुआ है।

कीर्तिकौमुदी के सप्तम सर्ग में केवल एक ही बार उपजाति छंद का प्रयोग हुआ है। सर्ग के मध्य में स्थित यह छंद मानो सर्ग का केन्द्र-विन्दु ही है:—

मैरेयपानच्युतचेतनानां, तासामसाधारणविभ्रमाणाम्।

नखाङ्कुशैरप्यनवाप्तसंज्ञो, गम्भीरवेदी मदनद्विपोऽभूत्॥

(कीर्तिकौमुदी, ७/७७)

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य का अन्तिम सर्ग भी उपजाति छन्द में ही रचा गया है। इस सर्ग का मुख्य-विषय वस्तुपाल की संघ-यात्रा है जिसका वर्णन इस प्रकार है :—

'संघ यात्रा में हाथी, घोड़ा, बैल, ऊँट तथा प्रतिदिन उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुयें थीं। संघ यात्रा के लिए जिन्हें वाहन की आवश्यकता थी उन्हें वाहन दिया गया, जिन्हें धन की आवश्यकता थी, उन्हें धन दिया गया, जिन्हें वस्त्र की आवश्यकता थी, उन्हें वस्त्र दिया गया :—

न वाहनं यस्य स तस्य यानं, नासीद् धनं यस्य स तस्य वित्तम्।

न चीवरं यस्य स तस्य वस्त्रं, कल्पद्रुकल्पः प्रददौ पदव्याम्॥

(वही, ९/११)

कवि आगे बतलाता है कि शुभ दिन विचार कर यात्रा प्रारम्भ हुई। महामात्य वस्तुपाल प्रमुख तीर्थों की यात्रा करते हुये पुन: अपने नगर को वापस आये, जिनको देखने के लिए सैकड़ों स्त्रियाँ एकत्रित हो गईं। इस प्रकार विविध वर्णनों को अपने में समाहित करने वाला यह उपजाति-छन्द उपर्युक्त वर्णन में भी सफल सिद्ध हुआ है।

सुरथोत्सव महाकाव्य के प्रथम, द्वितीय तथा त्रयोदश सर्ग के अधिकांश श्लोक उपजाति छन्द में ही रचे गये हैं। इन सर्गों का प्रारम्भ भी उपजाति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छन्द के द्वारा किया गया है। प्रथम सर्ग में कवि ने मंगलाचरण, प्राचीन तथा तत्कालीन कवियों की प्रशंसा, इसके अतिरिक्त सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्जन-निन्दा भी मार्मिक शब्दों में उपजाति के माध्यम से वर्णित किया है [१८]। इस वर्णन से एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

जयन्ति ते सज्जनवारिवाहाः सर्वप्रमोदाय कृतोद्यमैर्यैः ।
यवासकानामिव दुर्जनानां, देहेषु दाहः परमुज्जिहीते ॥
(सुरथोत्सव, १/४४)

द्वितीय सर्ग में महाकाव्य के नायक राजा सुरथ के मन्त्रियों का असंतुष्ट होना, पुनः मन्त्रियों की विपक्ष से मुलाकात, फलतः राजा को लक्ष्मी से हाथ धोने की कथा आदि मार्मिक शब्दों में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति छन्दों के माध्यम से ही चित्रित की गयी है। राजा सुरथ वन को चले जाते हैं और वहाँ एक तपस्वी से भेट होती है, जिससे राजा सुरथ अपनी सारी व्यथा कह सुनाते हैं :—

इत्थं मुनीन्द्रेण मनोज्ञवाचा कृतानुयोगो युगदीर्घबाहुः ।
नृपस्त्रपाकुण्ठितकण्ठपीठः पूर्वानुभूतं निजगाद खेदम् ॥
(वही, २/३७)

शुम्भ निशुम्भ के बध की घटना को लेकर ही उपजाति-छन्द का अन्त होता है। एक ओर जहां इन तीनों छन्दों में दैत्यों के बध की घटना चित्रित है, वहीं दूसरी ओर दुर्गा का माहात्म्य भी मुनि द्वारा वर्णित किया गया है। त्रयोदशसर्ग में पार्वती सुरथ की परीक्षा लेती हैं। अतः वह एक सुन्दर स्त्री को राजा के पास भेजती हैं, जिससे उनकी तपस्या भंग हो जाय परन्तु राजा अपनी तपस्या में रत रहे। उन पर उस युवती का कोई प्रभाव नहीं हुआ। जिस प्रकार राजा सुरथ परीक्षा में सफल हुए हैं उसी प्रकार कवि इस सर्ग में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति छंदों को प्रयुक्त कर सफल हुआ है [१९]। चतुर्थ [२०], नवम [२१], दशम [२२], तथा पञ्चदश [२३] सर्गों में विभिन्न विषयों को प्रतिपादित करते हुए, प्रायः उपजाति, इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को प्रयुक्त किया गया है । आत्मकथनात्मक अन्तिम सर्ग का प्रारम्भ भी उपजाति छन्द से होता है, जहां कवि अपने पूर्वजों का परिचय प्रस्तुत करता है :—

अस्ति प्रस्ताचरणप्रधानं स्थानं द्विजानां नगराभिधानम् ।
कर्तुं न शक्नोति कदापि यस्य त्रेतापवित्रस्य कलिः कलङ्कम् ।।

कवि के दोनों ही महाकाव्यों के इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति छंदों का यही संक्षिप्त परिचय है । कवि ने वर्णन में अधिकाशत: उपजाति छन्दों को प्रयुक्त किया है, द्वितीय स्थान इन्द्रवज्रा तथा तृतीय स्थान उपेन्द्रवज्रा को प्राप्त है ।

सोमेश्वर देव ने सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग में हिमालय का चारु वर्णन प्रस्तुत किया है और कीर्तिकौमुदी के नवे सर्ग में रैवतक पर्वत का मनोहारी वर्णन किया है । कवि ने उपजाति छन्द के द्वारा ही रैवतक का वर्णन किया है । उदाहरण के लिए एक श्लोक प्रस्तुत है :—

शृङ्गैरुदग्रैर्दिवमुल्लिखन्तं, दिशः स्पृशन्तं पृथुभिश्च पादैः ।
तलेन धात्री तलमाप्नुवन्तं, हरन्तमन्तःकरणानि कान्त्या ।।
(कीर्तिकौमुदी, ९/४४)

सोमेश्वरदेव के पूर्ववर्ती माघ ने भी उपजाति छन्द के द्वारा रैवतक का वर्णन प्रस्तुत किया है ।

सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ।।
(शिशुपालबध, ४/४)

इस प्रकार छंदोविधान में कवि सोमेश्वरदेव अपने पूर्ववर्ती माघ से प्रभावित प्रतीत होते हैं । उपर्युक्त उदाहरणों में विषय साम्य भी परिलक्षित होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रथोद्धता तथा स्वागता

वैदिक छंद त्रिष्टुप् से रथोद्धता तथा स्वागता छंदों की उत्पत्ति होती है। इन छंदों के प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। रथोद्धता[२४] में नवम वर्ण दीर्घ तथा दशम ह्रस्व होता है। स्वागता[२५] में दशम वर्ण दीर्घ और नवम ह्रस्व होता है। दोनों छंदों में केवल इतना ही अन्तर है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने सुवृत्त-तिलक[२६] में चन्द्रोदय और उद्दीपन विभावों के वर्णन में रथोद्धता छंद को उपयुक्त बतलाया है :—

रथोद्धता विभावेषु भव्यां चन्द्रोदयादिषु ।

(सुवृत्ततिलक, ३/१८)

सोमेश्वरदेव ने क्षेमेन्द्र के मतानुसार ही अपने सुरथोत्सव महाकाव्य के छठे सर्ग में चन्द्रोदय-वर्णन इसी छंद के माध्यम से उपस्थित किया है[२७]। कवि का यह वर्णन महाकाव्यों में प्राप्त चन्द्रोदय वर्णन की परम्परा में आता है। कवि छठे सर्ग का प्रारम्भ सूर्यास्त के मनोरम वर्णन से कर रहा है।

'अस्ताचलगामी सूर्य की रंगीन किरणें अञ्जलि-स्थित जल में पड़ रही हैं तो प्रतीत होता है कि उस जल में कुङ्कुम घोल दिया गया है। कवि आगे कहता है कि अस्ताचल को जाने वाले सूर्यमण्डल की किरणें मूंगे के चूर्ण के समान प्रतीत हो रही हैं। यह सूर्य अस्ताचल के गेरु समान शृङ्ग पर सुशोभित हो रहा है :—

कुङ्कुमाविलमिवाञ्जलौ जलं कुर्वदर्जिहिषितः प्रचेतसः ।
अस्तशैलशिखरे खरद्युतेर्दिद्युते कमलकोमलं महः ॥

पुनश्च

पद्मराग इव सान्द्रविद्रुमक्षोदसोदरमरीचिमण्डलः ।
चण्डरोचिरचकासयल्लसद्गैरिकं कटकमस्तभूभृतः

(सुरथोत्सव, ६/१ तथा २)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्ताचलगामी सूर्य के कारण अब अर्धदलित मृणालदण्ड के साथ ही चक्रवाकी विलाप कर रही है और रागी सूर्य तथा प्रिय की ओर देख रही है :-

उज्झती झटिति वाष्पनिर्झरं सार्धमर्धदलितैर्विसाङ्कुरैः ।
चक्रवाकदयिता दृशं ददौ रागिणि प्रियतमे च पूष्णि च ।।
(सुरथोत्सव, ६/३)

कवि ने सूर्यास्त की रमणीयता, चक्रवाकी का वियोग तथा अ य हृदयग्राही वर्णन इस सर्ग में प्रस्तुत किये हैं। सूर्यास्त काल में भ्रमर-कमलों के पास से चल पड़े हैं। जिस प्रकार कोई कोई ही सुहृद आपत्ति काल में अपने मित्र का साथ नहीं छोड़ते हैं, अधिकांश तो छोड़ ही देते हैं :—

अश्रितश्रि विरहय्य वारिजं षट्पदः कुमुदमुन्मदं ययौ ।
तेऽन्य एव सुहृदः सदान्तिकं न त्यजन्ति विभवात्ययेऽपि ये ।।
(वही ६/१०)

यह देखने योग्य है कि कवि की अनेक नवीन कल्पनायें इस छंद के के माध्यम से प्रस्फुटित हुई हैं :— "जपापुष्प के समान सूर्य की लाल किरणें जब पक्षियों पर पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव के बाणों से आहत होने के कारण ये पक्षी रक्त से संसिक्त हो गये हैं। अस्ताचलगामी सूर्य यह सोचते हुए कि अब मेरे पास क्या शेष रहा ? वह दूसरे देश को चला गया :—

रेजुरर्ककिरणैर्जपारुणैः पिञ्जरा विरहिणः पतत्त्रिणः
निर्दयस्मरशिलीमुखार्दनादुच्छलद्बहलशोणिता इव ।।

अपि च

सांप्रतं गतवसोरसांप्रतं वस्तुमत्र मम वस्तु दर्शितः ।
चिन्तयंश्चिरमितीव दुर्मना देशमन्यमगमद्गभस्तिमान् ।।
(वही, ६/१,२ तथा २०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार सूर्यास्त का वर्णन समाप्त करते हुए इन्हीं छन्दों के माध्यम से कवि चन्द्रोदय का आह्लादकारी वर्णन प्रस्तुत कर रहा है । वृक्षों के ऊपर उज्ज्वल पुष्प लगे हुये हैं और उनके ऊपर चन्द्रकिरणें पड़ रही हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इस संसार में किरणों के कारण क्षीर सागर उमड़ पड़ा है :—

दिङ्‌मुखेषु ददती स्मितश्रियं पुष्णती तरुषु पुष्पसंपदम् ।
इन्दुदीधितिरदर्शयद्‌भुवि क्षीरनीरधितरङ्गसंगतिम् ।।
(सुरथोत्सव, ६/५०)

चन्द्रोदय के अतिरिक्त इस छन्द का प्रयोग अन्य प्रकार के वर्णनों को प्रकट करने के लिए भी किया गया है [२८]। कवि ने इस महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में अनेक प्रकार के छन्दों से वंश वर्णन प्रस्तुत किया है, जिनमें से दो छन्द रथोद्धता के भी उपलब्ध होते हैं[२९]। सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में वस्तुपाल तथा तेजपाल से सम्बन्धित मन्त्रि-मुद्रार्पण नामक वर्णन भी इसी छन्द के माध्यम से किया गया है[३०]। तभी तो कवि ने कहा है कि वस्तुपाल तथा तेजपाल सूर्य और चन्द्र के समान ही राजा के आकाश तुल्य हृदय में प्रविष्ट कर गये हैं :—

भूमिभर्तुरथ कर्तुमिच्छतस्तस्य सत्पुरुषसङ्ग्रहं श्रिये ।
एकदा हृदयमागताविमौ, दीप्तशीतकरणाविवाम्बरम् ।।
(कीर्तिकौमुदी, ३/५१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही महाकाव्यों में विविध प्रकार के वर्णनों के लिए रथोद्धता तथा स्वागता छन्द विशिष्ठ क्षमता के साथ प्रयुक्त किये गये हैं ।

शालिनी

उपजाति की भांति शालिनी भी त्रिष्टुभ् का ही एक अन्य सुनिश्चित वर्ण मात्रा वाला रूप है। इसके चारों पदों में एक ही वर्णवृत्त होता है:—

मात्रा गौ चेच्छालिनी वेद लोकैः ।
(छन्दोमञ्जरी, २/५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शालिनी का प्रारम्भिक विकास हमें महाभारत में मिलता है, जहाँ त्रिष्टुभ् के बीच-बीच में कहीं-कहीं शालिनी के भी दो तीन पद आ गये हैं। कहीं-कहीं तो प्रथम दोनों चरण एक साथ ही शालिनी के हैं[३१]। शालिनी के चारों चरण चार पंक्तियों में होते हैं। इसका यही रूप पुराणों में भी है। सुरथोत्सव महाकाव्य में शालिनी छन्द का प्रयोग ५ बार[३२] तथा कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में केवल तीन बार[३३] हुआ है। दोनों महाकाव्यों के शालिनी छन्दों का वर्णन इस प्रकार है:—

कीर्तिकौमुदी के तृतीय सर्ग में मन्त्री की शालीनता शालिनी छन्द के माध्यम से वर्णित की गई है। इसी महाकाव्य के परमार्थ विचार नामक अष्टम सर्ग के उपान्त में प्राप्त मालिनी छन्द के द्वारा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन किया गया है:—

भासः सेव्याः श्वेतभासः प्रदोषे, लोकाह्लादोद्दीपिका दीपकाली।
दुर्धर्षैर्दग्धा शर्करा यत्र पथ्यं, दिष्ट्या दिष्टः स प्रविष्टः पृथिव्याम्॥

(कीर्तिकौमुदी, ८/६९)

सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग में शालिनी छन्द का प्रयोग सोमेश्वरदेव के पूर्वज याज्ञिक-सम्राट् आम शर्मा एवं पिता कुमार के वर्णन प्रसंग में हुआ है। इसके अतिरिक्त आठवाँ सर्ग चन्द्रोदय तथा चौथा सर्ग हिमालय वर्णन में भी एक एक छन्द वर्णित किया गया है। यहाँ पर चन्द्रोदय नामक छठे सर्ग से एक छन्द अवतरित किया जा रहा है:—

एणाक्षीणां कान्तदन्तक्षतालङ्कारादोष्टाद्यावकैः साधु यातम्।
स्वस्थानेऽन्यं वीक्ष्य बद्धप्रतिष्ठं कस्तत्रैव स्थातुमीहेत रागी॥

(सुरथोत्सव, ६/१११)

दोनों महाकाव्यों के शालिनी छन्दों का यही परिचय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालभारिणी छन्द

सुरथोत्सव में मालभारिणी छन्द लगभग ८० बार प्रयुक्त हुआ है[३४]। **कीर्तिकौमुदी** में मालभारिणी की संख्या लगभग ४७ है[३५]। इस छंद के प्रथम चरण में ११ तथा दूसरे चरण में १२ अक्षर होते हैं :—

विषमे ससजा यदा गुरूचेत् सभरा येन तु मालभारिणीयम् ।।

(छन्दोमञ्जरी, २/९९)

सुरथोत्सव का अष्टम सर्ग इसी छन्द के माध्यम से प्रारम्भ किया गया है और ८० श्लोक पर्यन्त अनवरत यह छन्द प्रयुक्त किया गया है। मालभारिणी छन्द के माध्यम से अधोलिखित विषय बहुत ही सरसता के साथ प्रतिपादित किया गया है :—

'अष्टम सर्ग में देवी स्वत: को उस नवयुवती के रूप में परिवर्तित कर देती है जो कि अभी कुमारी है। उस सुन्दरी का वास स्थान हिमालय शिखर पर है। 'सम्प्रति एक सुन्दरी हिमालय पर निवास कर रही है।' इस प्रकार की चर्चा चारों ओर होने लगी। इस कुमारी का वृत्तान्त शुम्भ के कर्ण-कुहरों तक पहुँचा। शुम्भ ने तुरन्त ही संदेशा देते हुये एक अनुचर कुमारी के पास भेजा कि वह मेरे साथ विवाह कर ले। शुम्भ के इस वचन को सुनकर कुमारी क्रोधित हो उठी :—

इति तद्वचनं निशम्य देवी हृदि कोपं दधती बहिः प्रसत्तिम्।
शुशुभे सुतरां शमीव धूमध्वजगर्भा नवपल्लवोदया च ।।

(सुरथोत्सव, ८/५४)

प्रत्युत्तर में भवानी ने उस धावक से कहा कि मैं उस वीर पुरुष के साथ पाणिग्रहण करूँगी जो कि मेरे साथ समर में युद्ध कर विजय प्राप्त कर सके। उसने स्पष्टत: कह दिया कि यही मेरी प्रतिज्ञा है। मालभारिणी छंद ही आगे सूचित करता है :— 'धावक पुन: शुम्भ के पास जाता है तथा भवानी की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में उसको सूचित करता है। शुम्भ कुमारी की इस प्रकार की प्रतिज्ञा को सुनकर धूम्रलोचन नामक एक दैत्य को उनके पास भेजकर कहलवाया कि वह इस प्रकार की कठोर तपस्या को त्याग दे। उस कुमारी के पास पहुँच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर धूम्रलोचन शुम्भ के निर्देशानुसार अनुचित वैवाहिक सम्बन्ध की भी बातचीत करने लगा। देवी की क्रोधाग्नि से वह धूम्रलोचन भस्म हो गया। धूम्रलोचन के भस्म होने की घटना सुरथोत्सव के अन्तिम मालभारणी छन्द के द्वारा प्रस्तुत की गई है :-

अथ मोघवचाः कचावकृष्टिं कुपितः कर्तुमियेष यावदेषः।
कृतहुंकृतया तयात्मकर्मार्जितमृत्युः क्रियते स्म भस्म तावत् ।।
(सुरथोत्सव, ८/८०)

सुरथोत्सव के समान ही कीर्तिकौमुदी के मालभारणी छन्दों के द्वारा भी युद्ध ही वर्णित किया गया है :-

अथ गूर्जरराज राज्यलक्ष्मीं, रमणीयां चरचक्षुषा निरीक्ष्य।
पृतनां द्रुतमादिदेश दुतीमिव तत्सङ्ग्रहणाय दक्षिणेन्द्रः ।।
(कीर्तिकौमुदी, ४/४२)

दोनों ही महाकाव्यों में 'अथ' शब्द के अनन्तर ही मालभारिणी छंद की रचना प्रारम्भ हुई है और अन्त तक युद्ध वर्णन की प्रमुखता दिखलाई देती है।

वंशस्थ

कवि के द्वारा सुरथोत्सव महाकाव्य में कतिपय वंशस्थ छन्द प्रयुक्त किये गये हैं। इस महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में वंशस्थ के माध्यम से हिमालय का मनोमोहक वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ पर क्रमानुसार ऋतुओं का आगमन होता है। हिमालय वर्णन के प्रसंग में वंशस्थ छंद द्रष्टव्य है :—

तटे तटेऽस्तीह मनोहरं वनं वने वने पल्लवशालिनो नगाः।
नगेनगेऽनङ्ग विधायिनः पिकाः पिके पिके सूचितपञ्चमं वचः ।।
अरं भयादेति हरेरदृश्यतां सरम्भया काननमालया मृगः।
अगानसौ किन्नरकामिनीजनः सगानसौख्यः फलितान्निषेवते।
(सुरथोत्सव, ४/२९ तथा ३०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पञ्चम सर्ग में षडऋतुओं का सामयिक वर्णन उपस्थित किया गया है। यह वर्णन वंशस्थ-छंद के माध्यम से किया गया है और कवि ने इस छंद के द्वारा ही अपने ऋतु सम्बन्धी ज्ञान को अभिव्यक्त किया है। सर्व प्रथम ही वसन्त ऋतु का कैसा ही सुन्दर वर्णन किया गया है -'आम्र-वृक्ष मञ्जरियों से युक्त है। पिक का मधुर स्वर सुनायी पड़ रहा है और भ्रमर माधवी-लता का चुम्बन ले रहा है:—

कटाक्षिता कैरपि चुम्बिता परैः कृतोपभोगा मधुपैश्च कैश्चन ।

मधुक्षरन्ती विरराज माधवी नवीनरूपा गणिकेव कामिभिः ।।

(सुरथोत्सव, ५/१०)

कवि ने इस प्रकार ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं का वंशस्थ-छंद के माध्यम से मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है[३६]। सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में वंशस्थ-छंद नहीं प्राप्त होते हैं।

भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गप्रयात छन्द सुरथोत्सव में एक ही बार प्रयुक्त हुआ है। इस छंद के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। छंदोमञ्जरी में भुजङ्गप्रयात के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है। भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।

इस अकेले छंद के द्वारा हिमालय पर स्थित नवीन मेघों का वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है:—

नवीनाम्बुवाहद्युतीनां समालं

समालं समालम्ब्य शृङ्गौघमत्र ।

ततिः षट्पदानां सदा बालसाला—

लसालालसा लासमाविष्करोति ।।

(वही, ४/४७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्पिताग्रा

सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी में प्राप्त पुष्पिताग्रा-छन्दों को अर्ध-समवृत्तों के अन्तर्गत गणना की गई है[३७]। पुष्पिताग्रा छन्द प्राय: अध्याय के अन्त में तथा कुछ स्थलों में छन्द की गति को परिवर्तित करने के लिए भी अकस्मात् इस छन्द को बीच में ही पिरो दिया गया है। निश्चय ही पुष्पिताग्रा के द्वारा काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। सुरथोत्सव में यह छण्द २३ बार[१८] तथा कीर्तिकौमुदी में १८ बार[३९] प्रयुक्त हुआ है। दोनों ही महाकाव्यों में विभिन्न विषय इस छन्द द्वारा वर्णित किये गये हैं। कीर्तिकौमुदी के प्रथम सर्ग में ही सिद्ध सरोवर का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है :—

प्रतितटघटितोर्मिघातजातप्रसृमरफेनकदम्बकच्छलेन ।
हरहसितसितद्युतिं स्वकीर्तिं, दिशि दिशि कन्दलयत्ययं तडागः ॥
(कीर्तिकौमुदी, १/७९)

सर्ग के सार को प्रस्तुत करने के लिए भी यह छन्द प्रयुक्त किया गया है[४०]। इसी प्रकार चन्द्रोदय के अनन्तर रमणियों के काम क्रीड़ा का वर्णन भी द्रष्टव्य है:— 'रात्रि के अन्त में शीतल वायु को पाकर सुरत-श्रम-खिन्न कृशोदरियों का समाज अपने प्रियों के सरस नखक्षत हृदयों पर सो गया है :—

उपरतसुरतश्रमस्त्रियामासमयविराममनोरमैर्मरुद्भिः ।
सरसनखपदे हृदि प्रियाणामथ शयितः कृशमध्यमा समाजः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ७/८०)

कीर्तिकौमुदी के आठवें सर्ग में परमार्थ-विचार पर विवेचन किया गया है[४१]। पुष्पिताग्रा के यही अन्तिम छन्द हैं जो इस महाकाव्य में उपलब्ध होते हैं। कीर्तिकौमुदी के अतिरिक्त सुरथोत्सव में पुष्पिताग्रा छन्द लगभग सत्रह बार प्रयुक्त किया गया है। इस छन्द के माध्यम से विभिन्न प्रकार के पौराणिक विषय प्रतिपादित किये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त पुष्पिताग्रा छन्द के माध्यम से मनोरम प्रकृति वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने विविध प्रकार के विषयों को अपने महाकाव्यों में इस छंद के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पर्वतस्थ मेघ को देख कर कवि को विष्णु ही स्मरण हो आते हैं :—

घनतुहिनविशोभिशृङ्गमुच्चैरुपरि विषण्णनवाम्बुवाहमेतत् ।
भजति भुजगराजभोगशय्यासुखशयितासुरवैरिणो विलासम् ।।

(सुरथोत्सव, ४/३४)

इसी छंद के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक अवस्था का भी ज्ञान होता है। वडनगर में वेदपाठ तथा यागादि नियमितः सम्पादित होते थे :—

हृतनयनसुखैर्मखाग्निधूमैः श्रुतिकटुभिर्वटुवृन्दवेदपाठैः ।
कलिरकलितसंमदः प्रदत्तेन खलु पदं विदुषां गृहेषु यत्र ।।

(वही, १५/३)

द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बित छंद का प्रयोग कीर्तिकौमुदी में दो बार तथा सुरथोत्सव में २९ बार हुआ है[४३]। उल्लेखनीय है कि कीर्तिकौमुदी के सप्तम सर्ग में दो बार द्रुतविलम्बित छंदों का प्रयोग हुआ है। दोनों ही श्लोकों में चन्द्रोदय के अनन्तर रमणियों के सुरत व्यापार का वर्णन है, उसमें से एक छन्द यहाँ भी प्रस्तुत है :—

निगदितुं विधिनाऽपि न शक्यते, सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम् ।
सुरतसंयति यौ प्रियपीडितावपि नतिं न गतौ च्युतकञ्चुकौ ।।

(कीर्तिकौमुदी, ७/७९)

सुरथोत्सव के पञ्चम सर्ग में एक तथा अट्ठाइस द्रुतविलम्बित छंद चतुर्थ सर्ग में प्राप्त होते हैं। चतुर्थ सर्ग के छंदों के द्वारा कवि ने हिमालय का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। सर्ग का प्रथम छन्द इस प्रकार है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सितमरीचिरुचामिव सञ्चय हसितराशिमिव त्रिपुरद्रुहः ।

धनपतेर्यशसामिव मण्डलं समुदयं शरदम्बुमुचामिव ।।

(सुरथोत्सव, ४/१)

इसी सर्ग के कतिपय छंद सूचित करते हैं कि हिमालय पर विविध प्रकार के वृक्ष हैं। कहीं कहीं झरते प्रवाहित हो रहे हैं, वहीं किन्नरों का मधुर गान भी हो रहा है :—

क्वचन काञ्चनकेतककेतनं क्वचन बालतमालसमाकुलम् ।

क्वचन किन्नरगानमनोरमं क्वचन निर्झरपातपवित्रतम् ।।

(वही, ४/२)

हिमालय पर विविध प्रकार के वृक्ष पुष्पित हैं, जिन पर भ्रमर मंडरा रहे हैं। पर्याप्त मात्रा में भ्रमर खिले हुए पुष्पों पर बैठे हैं। दूसरी ओर पर्वत पर वानर मण्डली विचरण कर रही है। तुहिन युक्त पर्वत पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत पर रत्न विखेर दिये गये हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के अतिरिक्त किन्नरियों की रति क्रीड़ा का वर्णन भी प्राप्त होता है (४/२५)। सुरथोत्सव के चतुर्थ सर्ग का अन्तिम द्रु विलम्बित छंद प्रस्तुत है:-

भरमपारमपामिह मुञ्चता स्तनयता नयता च रजःशमम् ।

हरगलोपरयाहसमत्विषा मुमुदिरे मुदिरेण शिखण्डिनः ।।

(वही, ४/२८)

कवि के महाकाव्यों में प्राप्त द्रुतविलम्बित छन्दों का यही परिचय है ।

प्रहर्षिणी

प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग कीर्तिकौमुदी तथा सुरथोत्सव दोनों महाकाव्यों में अनेक बार हुआ है। इस छद का सर्वाधिक प्रयोग सुरथोत्सव के बारहवें सर्ग में हुआ है जहां इसकी सख्या साठ है। सुरथोत्सव के शेष अन्य चार छंद विभिन्न सर्गों में प्रयुक्त हुये हैं, उनमें से प्रथम छद हिमालय वर्णन के लिए प्रयुक्त हुआ है (४/३९)। दूसरे छन्द के द्वारा चन्द्रोदय के अनन्तर होने वाले रमणियों के संभोग का वर्णन प्राप्त होता है :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संभोगप्रसरनिरस्तभूषणानां

कान्तानां कुचकलशद्वये विहारे ।

नेत्रालीमसकलमीलिनां दधानैः

सिद्धार्थैः पतिभिरिव स्थितिः प्रपेदे ।।

(सुरथोत्सव, ६/११२)

तृतीय छन्द के द्वारा सुरथोत्सव के दशम सर्ग का सार प्रस्तुत किया गया है (१०/११५)। चतुर्थ छद बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि पौराणिक महाकाव्य का यही अन्तिम छंद है। यद्यपि चतुर्दश सर्ग के अनन्तर पञ्चदश सर्ग भी प्राप्त होता है, किन्तु उस सर्ग में केवल पूर्वजों सहित सोमेश्वरदेव के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित वर्णन है। अतः पौराणिक घटना के दृष्टिकोण से चौदहवें सर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है और उसमें भी अन्तिम छंद का विशेष महत्व है। राजा सुरथ की पुनः राज्य-प्राप्ति हो गयी है अतः प्रजा अत्यधिक हर्ष-युक्त है। इस हर्ष की सूचना अन्तिम प्रहर्षिणी छंद के द्वारा ही दी जा रही है:—

अरुह्य द्विरदमुदग्रमुग्ररोचिः प्राचीनाचलमिव दर्शितोदयश्रीः ।

प्राविक्षत्प्रकृतिपुरःसरः पुरेऽसौ पौराणां हृदि च तदागमप्रमोदः ।।

(सुरथोत्सव, १४/७४)

सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी के प्रहर्षिणी छन्द विभिन्न विषयों को प्रतिपादित करते हैं[४३]।

मञ्जुभाषिणी

केवल सुरथोत्सव में मञ्जुभाषिणी छन्द लगभग उनसठ बार प्रयुक्त किया गया है। कीर्तिकौमुदी में इस छन्द का अभाव है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में तेरह अक्षर होते हैं :—

सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी ।

(छन्दोमञ्जरी, ३/१५)

कवि ने सुरथोत्सव के चतुर्दश सर्ग में सत्तावन मञ्जुभाषिणी छंद प्रयुक्त किये है[१-५७]। इन छंदों के द्वारा भवानी ने सुरथोत्सव के नायक राज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरथ के प्रति मञ्जुभाषण ही किया है अतः इन छंदों का मञ्जुभाषिणी नाम भी सार्थक होता है। चतुर्दश सर्ग के छंदों का विषय इस प्रकार है:—

"राजा सुरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर भवानी राजा को दर्शन देती हैं। भवानी ने अपने सरस भाषण के द्वारा राजा सुरथ को आशीर्वाद दिया कि आगामी जीवन में वर्तमान सप्तम मनु की सत्ता समाप्त होने के अनन्तर अष्टम मनु के रूप में राजा सम्मान को प्राप्त करें। भवानी ने यह भी आशीर्वाद दिया कि आप एक हजार वर्ष तक राज्य करें:—

भज वत्स वत्सरसहस्रवर्तिनीं, निजराज्यसंपदमदभ्रविक्रमः।
भवतश्चिराय विरहार्तिमङ्कैरनुपस्कृतानुपचितैर्व्यनक्ति या॥

(सुरथोत्सव, १४/५५)

इसी बीच राजा के विश्वास पात्र मन्त्रियों ने विश्वासघात करने वाले मंत्रियों के सहित शत्रुओं को भी समूल नष्ट कर दिया। तदनन्तर विभिन्न दिशाओं में राजा का पता लगाने के लिए गुप्तचर भेजे गये। एक गुप्तचर अन्वेषण करता हुआ राजा के पास पहुँचा। उसने राजा से बतलाया कि उसके मन्त्रियों ने किस बुद्धिमता का परिचय दिया है। वह अनुचर वन से वापस आकर राजा के सम्बन्ध में मन्त्रियों को सूचना देता है। राजधानी से असंख्य राजपुरुष तथा मन्त्रिगण इस अनुचर के साथ वन को जाते हैं। वहाँ से राजा को राजधानी लाया जाता है। उमा के वचनानुसार एक दीर्घ अवधि तक राजा सुरथ राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं। इस सम्पूर्ण वर्णन की सूचना मञ्जुभाषिणी छन्द के द्वारा ही प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इसी सर्ग से हमें ज्ञात होता है कि राजा सुरथ को राजप्राप्ति के साथ ही देवी दुर्गा का आशीर्वाद भी प्राप्त हो गया है। इसी महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में भी दो मञ्जुभाषिणी छन्द प्राप्त होते हैं जिनका विषय ऋतु वर्णन है:—

ऋतुरुज्जगाम जडिमैकभाजनं क्षममेतदत्र कमलोन्नतिर्न यत्।
हृदयानि यस्तनुभृतां प्रकम्पयन्सुमनःपदेषु निदधाति बालकान्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ दन्तकुन्दपतनाद्विनश्वरं शिशिरं विभाव्य सुरभिर्वभूषतः ।

समयानुरूपवचनैः पिकश्चरैः कृतपत्रबन्धमुपजेपिरे द्रुमाः ।

(सुरथोत्सव, ५/५१ तथा ५५)

कवि के महाकाव्यों के मञ्जुभाषिणी छंदों का यही संक्षिप्त परिचय है ।

वसन्ततिलका

महाकवि सोमेश्वरदेव ने कीर्तिकौमुदी तथा सुरथोत्सव दोनों ही महाकाव्यों में वसन्ततिलका छन्द बार-बार प्रयुक्त किया है । इस छन्द के सम्बन्ध में महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में कहा है कि जहाँ तक विनियोग का प्रश्न है वीर और रौद्र रसों के शंकर (मिश्रण) में वसन्त तिलका छद सुशोभित होता है :—

वसन्ततिलकं भाति सङ्करे वीररौद्रयोः ।

(सुवृत्ततिलक, ३/१९)

कवि ने कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में इस विधान का व्यवहारिक रूप प्रदान किया है और विचारों को छादन करने वाले छद की सार्थकता इस प्रकार बतलायी है :—

सिंधुराज शङ्ख ने वस्तुपाल के पास एक गुप्तचर भेजकर कहलवाया कि स्तम्भपुर पर मेरा पैतृक अधिकार है और यदि वस्तुपाल अपने को समर्पित कर दे तो वे वहाँ के राज्यपाल नियुक्त कर दिये जायेगे ।'

इन वचनों को सुनकर मंत्री वस्तुपाल क्रोधित हुए और इसी छन्द के माध्यम से प्रत्युत्तर दिया :—

श्रुत्वा वचः सचिवचक्रशतक्रतोस्तद्,

भूयोऽप्यभाषत रुषा परुषाक्षरं सः

आः ! किं ब्रवीषि मवमन्दमतिस्त्वमेवं ?

देवस्य तस्य नियतं नहि वेदिताऽसि ।।

(कीर्तिकौमुदी, ४/८९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीर्तिकौमुदी के पञ्चम सर्ग में गुर्जरेश्वर का सिन्धुराज के साथ युद्ध वर्णन होता है। सर्गान्त में प्राप्त पञ्च वसन्ततिलका छन्द गुर्जरेश्वर की वीरता को ही चित्रित करते हैं[४४]। गुर्जर राजधानी अनहिल्लवाड़ की दयनीय स्थिति का वर्णन राजलक्ष्मी ने लवण प्रसाद से स्वयं किया है। इस वर्णन में राजा के पूर्वजों की वीरता[४५] तथा मंत्री के कर्तव्यों पर भी प्रकाश डाला गया है:—

दृप्यद्भुजाः क्षितिभुजः श्रियमर्जयन्ति,
नीत्या समुन्नयति मंत्रिजनः पुनस्ताम्।
रत्नावलीं जलधयो जनयन्ति किन्तु,
संस्कारमत्र मणिकारगणः करोति ॥
(कीर्तिकौमुदी, २/११३)

सुरथोत्सव महाकाव्य में वीर और रौद्ररस के सम्मिश्रण के अतिरिक्त भी इस छन्द का प्रयोग किया गया हैं। हिमालय वर्णन[४६] ऋतुवर्णन[४७], भवानी का सौन्दर्यवर्णन तथा राजा सुरथ का वन से प्रत्यावर्तन आदि[४८] विषय भी सुरथोत्सव महाकाव्य में वसन्ततिलका छन्द के माध्यम से वर्णित किये गये हैं। सुरथोत्सव के अन्तिम सर्ग में कवि ने अपने वंश वर्णन[४९] के प्रसंग में भी इसी छन्द को प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त सूर्योदय का वर्णन भी अवलोकनीय है :—

आविर्भवद्दशशतद्युतिपत्रपूगे
तद्धारितोदयधराधरधातुवर्णे।
प्राचीमुखे परिणतारुणि ताम्रताम्र -
स्ताम्बूलसंभव इव स्फुरति स्म रागः ॥
आकर्ण्य कुक्कुटरुतानि रतैकसख्या
रात्रैः प्रयाणपटहत्वमुपेहिवांसि।
प्रत्यप्रियप्रणयजर्जरितानि मान—
विस्फूर्जितानि परितप्तजुरब्जनेत्राः ॥
(सुरथोत्सव, ७/३ तथा ६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध प्रकार के विषय इस छन्द के माध्यम से वर्णित किये गये हैं और कवि को उन विषयों के वर्णन में विशेष सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में महाकवि क्षेमेन्द्र के विचार ध्यान देने योग्य हैं :—

वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी ।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥

(सुवृत्ततिलक, ३/३२)

जिस प्रकार वसन्त-ऋतु के भूषण-स्वरूप तिलपुष्प के वृक्ष पर अच्छी तरह फैली हुई लता वन में कुसुमित होकर सुशोभित होती है उसी तरह वसन्ततिलका छन्द से आवद्धवाणी कवि रत्नाकर के खमु में प्रौढ़ता प्राप्त कर भूषित होती है। कवि रत्नाकर के समान ही महाकवि सोमेश्वरदेव ने वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग काव्य में सर्वाधिक तो नहीं किया है परन्तु क्षेमेन्द्र का कथन महाकवि सोमेश्वरदेव के लिए भी उपयुक्त प्रतीत होता है।

मालिनी

महाकवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में मालिनी छन्द का प्रयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस छन्द के विषय में क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार कहा है :—

'कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत् । (उत्तरार्ध)

(सुवृत्ततिलक, ३/१९)

अर्थात् सर्ग के अन्त में मालिनी छन्द का प्रयोग उसी तरह स्पृहणीय होता है जैसे गीतों के अन्त में ताल की द्रुतगति सुशोभित होती है। महाकवि सोमेश्वरदेव ने इसी मान्यता को अपने ग्रन्थों में स्वीकृत किया है और प्रायः मालिनी छन्द का प्रयोग सर्ग के उपान्त अथवा अन्त में हुआ है। **कीर्तिकौमुदी** तथा **सुरथोत्सव** महाकाव्यों में केवल तीन-तीन बार इस छन्द को प्रयुक्त किया गया है। **सुरथोत्सव** में हिमालय के मनोहारी-वर्णन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का समापन इसी छन्द के द्वारा होता है। हिमालय वर्णन में केवल दो छन्द प्रयुक्त किये गये हैं (४/६८ तथा ७०)। सुरथोत्सव के एक अन्य छन्द के द्वारा मन्त्री वस्तुपाल की प्रशंसा की गयी है:—

अयमनुदिनदानोत्कर्षितप्रणपर्ष-
त्परिचरितचरितः स्वस्तिमानस्तु मन्त्री ।
तुहिनकरसमानैर्यस्य कीर्तिप्रतानै—
रजनिषत रजन्यः प्राप्तराकाविपाकाः ।।
(सुरथोत्सव, १५/६०)

कीर्तिकौमुदी में उपान्त मालिनी श्लोक द्वारा सिद्धसरोवर वर्णन तथा अन्तिम श्लोक के द्वारा नरेन्द्रवंश वर्णन नामक सर्ग का समापन होता है (१/८० था ३/७८)। मन्त्रि-प्रतिष्ठा से सम्बन्धित कवि के मालिनी छन्द का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है :—

अथ दशरथकल्पस्त्यक्ततल्पः प्रभाते
स च नृपतिरपत्यं तच्च रामोपमेयम् ।
स च परिचरणीयो गूर्जराणां विशिष्ट—
प्रतिकृतिरुदतिष्ठत् कर्म साध्यं विधातुम् ।।
(कीर्तिकौमुदी, २/११५)

ऐसा प्रतीत होता है कि सुरथोत्सव का हिमालय वर्णन परक चतुर्थ सर्ग कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग से प्रभावित है। विषय साम्य के अतिरिक्त छन्दों में भी समानता है। कुमारसम्भव के हिमालय वर्णन परक प्रथम सर्ग का अन्त मालिनी छन्द के द्वारा होता है :—

अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा
नियमविधिजलानां वर्हिषां चोपनेत्री ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥

(कुमारसम्भव, १/६०)

कुमारसम्भव के समान ही सुरथोत्सव का हिमालय वर्णन परक चतुर्थ सर्ग का समापन भी मालिनी-छन्द के द्वारा होता है :—

श्रियमिति शिखरान्तभ्रान्तजीमूतवृन्द—
ध्वनिजनितशिखण्डिस्त्रीमदादम्बरेऽस्मिन् ।
नगरिपुरपि पश्यन्निश्रितानामुदस्रैं—
रसनुत चरितार्थं लोचनानां सहस्त्रम् ॥

(सुरथोत्सव, ४/७०)

निश्चय ही कवि सोमेश्वरदेव महाकवि कालिदास के छन्दो-विधान से प्रभावित हैं।

शिखरिणी

शिखरिणी छन्द का प्रयोग सुरथोत्सव में चार बार तथा कीर्ति-कौमुदी महाकाव्य में केवल एक बार हुआ है । शिखरिणी छन्द के सम्बन्ध में आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है कि जब किसी विषय का सीमा निर्धारण किया जा रहा हो, उस समय शिखरिणी-छन्द का प्रयोग करना चाहिए :—

उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता ।

(सुवृत्ततिलक, ३/२०)

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कीर्तिकौमुदी तथा सुरथोत्सव में केवल दो छन्दों को छोड़कर शेष सभी शिखरिणी-छन्द उपान्त में प्रयुक्त किये गये हैं । जिस प्रकार से शरीर में शिखर-प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान होता है, उसी प्रकार से उच्च स्थान पर स्थित ये शिखरिणी छन्द सर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के महत्व पर प्रकाश डालते हैं। सम्पूर्ण कीर्तिकौमुदी में शिखरिणी छन्द केवल एक बार प्रयुक्त हुआ है जिसका विषय इस प्रकार है, 'अमात्य वस्तुपाल राजा से कह रहे हैं कि न्याय को महत्व देकर, खलों का अनादर करते हुए, शत्रुओं को सहज में ही जीत कर भगवान के चरितानुसार ही यदि आप इस पृथ्वी का उद्धार करना चाहते हैं तो मैं नतमस्तक होकर आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ और आपका कल्याण हो:–

पुरस्कृत्य न्यायं, खलजनमनादृत्य, सहजा—
नरीन् निर्जित्य श्रीपतिचरितमाश्रित्य च यदि।
समुद्धर्तुं धात्रीमभिलषसि तत् सैष शिरसा,
धृतो देवादेशः स्फुटमपरथा स्वस्ति भवते ॥
(कीर्तिकौमुदी, ३/७७)

यहाँ पृथ्वी उद्धार के वर्णन में न्याय का आश्रय तथा खलों का अनादर आदि सीमा निर्धारण हेतु अपेक्षित है। इस सीमा निर्धारण के प्रसंग में शिखरिणी-छन्द का प्रयोग वक्तव्यांश अवबोध में अत्यन्त उपकारी है।

कीर्तिकौमुदी के अतिरिक्त सुरथोत्सव के छठे सर्ग में केवल एक ही शिखरिणी छन्द के द्वारा चन्द्रोदय होने पर युवतियों की काम-क्रीड़ा वर्णित की गयी है (६/११३)। इसी महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में सोमेश्वरदेव (१५/४८) तथा वस्तुपाल (१५/६२) के चरित्रों की प्रशंसा अलग-अलग शिखरिणी छन्दों के द्वारा की गयी है। अर्थात् एक छन्द के मुख्य विषय सोमेश्वरदेव तथा दूसरे छन्द के मुख्यविषय वस्तुपाल हैं। इसी महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में एक शिखरिणी छन्द के द्वारा वसन्तकालीन मनोरम चित्रण उपस्थित किया गया है जो द्रष्टव्य है:—

लभन्ते सौभाग्यं किमपि हरिणाङ्कस्य किरणाः
पिकाः शब्दायन्ते स्वगतममृतस्यन्दि च तदा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलत्यद्यश्वो वा पवनपृतना चन्दनगिरे—
रवामं कामस्य स्फुरति च शुभाशंसि नयनम् ॥
(सुरथोत्सव, ५/५६)

इसी शिखरिणी का वैशिष्ट्य आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है :—

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी ।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ॥
(सुवृत्ततिलक, ३/३३)

'भवभूति के द्वारा प्रयुक्त शिखरिणी छन्द पार्वत्य नदी के समान है जो कि मेघ के सम्पर्क में आकर सुन्दर मयूरी के समान नाच उठती है। आचार्य क्षेमेन्द्र के इस कथन को ध्यान में रखकर हम कहना चाहते हैं कि यद्यपि सोमेश्वरदेव ने कतिपय ही शिखरिणी छन्दों को अपने काव्य में प्रयुक्त किया है परन्तु वे भी पार्वत्य नदी की भांति स्वच्छन्द रूप से अपने विषय को प्रवाहित कर रहे हैं।

हरिणी

कवि के सुरथोत्सव महाकाव्य में हरिणी-छन्द का प्रयोग दो बार तथा कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में केवल एक बार हुआ है। इस छंद के सम्बन्ध में आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार कहा है :—

औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा ।
(वही, ३/२०)

अर्थात् उदारता के औचित्यपूर्ण वर्णन में हरिणी-छन्द का प्रयोग प्रभावशाली माना गया है। कवि का वर्ण्य-विषय इस मान्यता से बिलकुल पृथक है। कीर्तिकौमुदी में प्रयुक्त होने वाला अकेला हरिणी-छन्द सोमवंशी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा लवण प्रसाद की कीर्तिकौमुदी को बिखेरता है :—

प्रतिनृपतिभिर्भग्नोत्साहैर्निमग्नमिव क्वचित्,
स च नरपतिर्वीरस्तीरं जगाम मृधाम्बुधेः ।
दिशि दिशि यशःस्तोमान् सोमान्वयी समचारय—
च्चतुरकुरलीचाणक्योऽयं प्रियङ्करणैर्गुणैः ॥
(कीर्तिकौमुदी, ५/६८)

सुरथोत्सव के छठे सर्ग का अन्तिम हरिणी छन्द सुर्योदय का मनोरम-वर्णन प्रस्तुत कर रहा है :—'आकाश के पश्चिम दिशा में विरही के समान चन्द्रमा अवस्थित है। पूर्व दिशा में दिन का प्रथम भाग किञ्चित् आविर्भूत् होने लगा है। कुमुदवन से उठकर कमल-वन में जाने की इच्छा रखने वाली शोभा मंगलमुहूर्त की अपेक्षा कर रही है:—

अभजत नभःपश्चाद्भागं विधुर्विधुरच्छवि—
र्हरिहयहरित्याविः किंचिद् बभूव दिवाञ्चलः ।
कुवलयवनादुत्तिष्ठासुर्यियासुरथापरं
सरसिजवनं श्रीर्मङ्गल्यं मुहूर्तमपैक्षत ॥
(सुरथोत्सव, ६/११४)

State Museum Library Lucknow 7623

इसी महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग के अन्तिम हरिणी छन्द में शुम्भ-वध पर इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता को चित्रित किया गया है—'शुम्भ-वध से इन्द्र का मन त्रास रहित एवं उल्लास युक्त हो गया है जो कि आज तक शत्रु-प्रदत्त त्रास से दुःखी था। वह अब प्रमदा रूपी अमृत का भी आनन्द लेने लग गये हैं। तीनों लोकों की जयश्री को प्राप्त कर आनन्दित होने वाले देवेन्द्र ने अन्य देवों को भी संतुष्ट किया :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरिपरिभवक्लिष्टं स्पष्टं पुनः प्रमदामृतै—
दंधदधरितत्रासोल्लासं मनः सुमनःप्रभुः ।
चिरविरहितानङ्गरङ्गैर्जगत्त्रितयश्रिया
झटिति घटिताश्लेषः शेषं सुरौघमतोषयत् ॥
(वही, ११/४६)

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि कवि के उपर्युक्त तीनों छन्दों का वर्ण्यविषय आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के विपरीत है और सर्गान्त में प्रयुक्त होने वाले ये छन्द सर्ग के सार को भी प्रस्तुत करते हैं।

पृथ्वी

आचार्य क्षेमेन्द्र ने पृथ्वी छन्द के विनियोग के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है:—

'साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वी भरक्षमा'।
(सुवृत्ततिलक, ३/ ?१)

'अर्थात् निन्दा और क्रोधपूर्वक तिरस्कार के वर्णन में एक मात्र पृथ्वी छन्द ही तात्पर्यग्राहिणी होता है। कवि सोमेश्वरदेव के पृथ्वी छन्द इस मान्यता के विपरीत हैं । उनके केवल सुरथोत्सव महाकाव्य में दो पृथ्वी छन्द प्राप्त होते हैं। कवि का प्रथम पृथ्वी छन्द श्लेषमूलक उपमा के द्वारा इस पृथ्वी को पाताल लोक बतला रहा है :—

स्फुरत्तुरगमण्डलीखुरमुखाभिघातोच्छल-
त्परागपटलच्छलादुपरिभूतभूमण्डपम् ।
बलं बलिनिवासवत्समणिनागरौद्रं रवि—
त्विषामविषयं जनो ददृशिवान्नगेन्द्रस्थितः ॥
(सुरथोत्सव, ९/९२)

कवि सोमेश्वरदेव द्वितीय पृथ्वी छन्द के द्वारा बतलाते हैं कि उनकी सूक्तियाँ मानों सुधा से सिञ्चित कर दी गयी हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ता छन्द सुरथोत्सव महाकाव्य में केवल तीन बार प्राप्त होता है, जब कि कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में इस छन्द का अभाव है । मन्दाक्रान्ता छन्द के सम्बन्ध में आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार कहा है :—

'प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ताविराजते ।

(सुवृत्ततिलक, ३/२१)

अर्थात् वर्षा ऋतु के प्रवास तथा व्यसन आदि के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द अपनी सानी नहीं रखता है । इस सिद्धान्त को कवि ने भी स्वीकार किया है । सुरथोत्सव के सप्तम सर्ग में प्राप्त एक मन्दाक्रान्ता छन्द के द्वारा महिषासुर का वध करने वाली देवी दुर्गा की स्तुति की गई है :-

लक्ष्मीः पुसां प्रसरति भवत्पादपद्मप्रसादा—
देतत्पूजावच (?) नतिपरः स्वर्गिणां भर्गपतिन ।
त्वत्पादे तु प्रबलमहिषोन्मूलनादत्र दत्त—
श्रीकेली का न भवति नुतिः कोऽथवा स्तोतुमीशः ॥

(सुरथोत्सव ७/७१)

इसके अतिरिक्त इसी महाकाव्य के छठे सर्ग में एक मन्दाक्रान्ता छन्द द्वारा 'सर्वर्तुवर्णनम्' नामक सर्ग की समाप्ति की गयी है (५/२७) । इस अन्तिम छन्द के द्वारा सभी ऋतुओं का सार भी प्रस्तुत कर दिया गया है । इसी सर्ग के एक अन्य मन्दाक्रान्ता छन्द के माध्यम से हेमन्त काल का कैसा ही सुहावना चित्रण प्रस्तुत किया है :—

गर्भागारे शयनमनलः संनिधौ सन्नधूमः
श्यामाश्लेषः स्मरपरवशो रक्तवस्त्रावृतिश्च ।
कर्पूरश्रीर्वदनकमले कुङ्कुमैरङ्गरागो
भाग्यैरेतद्भवति भविनां हन्त ! हेमन्त काले ॥

(वही, ५/५०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के विपरीत कवि ने वर्षा ऋतु के स्थान पर हेमन्त ऋतु का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त सर्वर्तुवर्णन तथा दुर्गास्तुति कवि के प्रमुख वर्ण्य-विषय हैं, जिसमें उपर्युक्त छन्द व्यवहृत किये गये हैं ।

शार्दूलविक्रीडित

कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में शार्दूलविक्रीडित छन्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ये शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रायः सर्गान्त में ही पाये जाते हैं । कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में यह छन्द सात बार सर्गान्तमें ही प्रयुक्त हुआ है किन्तु सुरथोत्सव में यह छन्द पचीस बार प्रयुक्त हुआ है, जिसमें पंद्रह छंद पंद्रहवें सर्गके हैं । केवल पंद्रहवें सर्ग को छोड़कर सभी छंद सर्गान्त में ही उपलब्ध होते हैं। महाकवि क्षेमेन्द्र ने इस छन्द के विषय में इस प्रकार कहा है :—

शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलविक्रीडितं मतम् ।

(सुवृत्ततिलक, ३/२२)

अर्थात् राजाओं की वीरता की प्रशंसा में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग श्रेष्ठ माना गया है। इस मान्यता का निर्वाह कवि ने अपने महाकाव्यों में यथाशक्ति किया है । इस छन्द के माध्यम से ही महामात्य वस्तुपाल की वीरता का वर्णन अवलोकनीय है :—

कुर्वाणस्त्वयि शस्त्रधारणमसावस्मत्पतिर्लज्जते,
येनैकेन रणाङ्गणेऽव्रणितः सेनाघनः सिङ्घनः ।
तत् ते चेतसि चेद् विचारकणिका काऽप्यस्ति तन्मुच्यतां,
मानोऽयं नयवेदिनाऽथ भवता वर्त्मेदमामुच्यताम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ४/९०)

सुरथोत्सव महाकाव्य में भी राजा सुरथ की वीरता का वर्णन इस छन्द के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । 'राजा सुरथ की वर्णनातीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदग्धता इसलिए वंदनीय है क्योंकि विष्णु के चार हाथों ने जिस कार्य को किया उसे राजा सुरथ ने दो हाथों से ही कर डाला । भगवान् विष्णु के विरोधी दैत्यों की अपेक्षा, इनके वध्य शत्रु इसलिए अधिक बुद्धिमान निकले क्योंकि सुरथ को युद्धोद्यत देखकर उन लोगों ने अपना परित्राण मुँह में तिनका मात्र रख कर प्राप्त किया जो कि सर्वस्व देकर भी संभव नहीं था :—

वन्द्या कापि विदग्धतास्य नृपतेर्यस्मादथैतद् भुज-
द्वन्द्वेनैव चकार यत्किल हरिश्चक्रे चतुर्भिर्भुजैः ।
तद्वध्याः सुधियस्ततोऽपि यदमी युद्धोद्यतेऽत्र व्यधुः,
सर्वस्वैरपि दुष्करं निजपरित्राणं तृणैर्वक्त्रगैः ॥
(सुरथोत्सव, १/९५)

सुरथोत्सव महाकाव्य के प्रथम सर्ग के अन्तिम शार्दूलविक्रीडित छन्द के द्वारा भी राजा सुरथ की प्रशंसा की गयी है:— 'राजासुरथ के वे विरोधी जिनके बाहुद्वय तलवार चलाने की कला में अत्यन्त उत्साही थे, कतिपय बंदी बनाये गये, कतिपय नत हो जाने के कारण दास बनाये गये, कतिपय भगाये गये, कतिपय शान्त कर डाले गये और कतिपय विश्वविजयी व्यापार के अनन्तर पुनः राज्य पर बैठा दिये गये :—

बद्धाः केचन केचन प्रणमिता दासीकृताः केचन
क्षिप्ताः केचन केचन प्रशमिताश्चारोपिताः केचन ।
भूपालाः करवाललालनकलासोत्साहबाहुद्वयी —
दुःशीला अपि येन विश्वविजय व्यापारपारस्पृशा ॥
(सुरथोत्सव, १/९६)

सुरथोत्सव के सप्तम सर्ग में देवी दुर्गा देवताओं को शुम्भ बध करने का आश्वासन देती हैं (७/७२-७५) । इसी महाकाव्य के नवें सर्ग में दैत्य शुम्भ का देवी से युद्ध करने के लिए प्रयाण भी वर्णित है (९/९३)। इन शार्दूलविक्रीडित छन्दों के द्वारा क्रमशः देवी तथा शुम्भ की वीरता का वर्णन किया गया है जो आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के अनुरूप ही हैं । आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के अतिरिक्त भी सोमेश्वरदेव ने शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन प्रस्तुत किये हैं । कवि के द्वारा सुरथोत्सव महाकाव्य में हिमालय पर स्थित पुष्पित वृक्ष तथा कमल युक्त तडागों का वर्णन (४/६७), इसी प्रकार **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य में शरदकालीन चन्द्र वर्णन तथा सूर्योदय का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया गया है (७/८२ तथा ८३) । सिद्ध-सरोवर में वर्तमान कमलों का वर्णन द्रष्टव्य हैं :— सिद्धसरोवर कहीं कमल के पराग से पीला है, कहीं कामनियों के कुच-कुङ्कुम से लाल बना डाला गया है और कहीं खिले हुये नील कमल की कान्ति से नीला प्रतीत होता है, अतः यह सिद्धसरोवर जो कल्याण का सागर है, वर्णनातीत चित्रित कम्बल की शोभा को धारण कर रहा है :—

एकत्र स्फुटदब्जराजिरजसा बभ्रूकृतः सुभ्रुवां,
प्रभ्रश्यत्कुचकुम्भकुङ्कुमरसैरन्यत्र रक्तीकृतः ।
अन्यत्र स्मितनीलनीरजदलच्छायेन नीलीकृतः
श्रेयः सिन्धुरवर्णकम्बलधुरां धत्तेसरः शेखरः ।।
(कीर्तिकौमुदी १/८१)

वस्तुपाल की सत्र यात्रा की समाप्ति की सूचना इसी महाकव्य के शार्दूलविक्रीडित छन्द के द्वारा ही प्राप्त होती है (९/७७) । उल्लेखनीय है कि मगलकामना करते हुए कवि सोमेश्वरदेव कीर्तिकोमुदी महाकाव्य का समाप्ति भी शार्दूलविक्रीडित छन्द के द्वारा ही करते हैं :—

दूर्वा-पुष्प-फलाक्षतैरुपचितं पात्रं दधत्यः करे,
यस्मै मङ्गलमङ्गनाः प्रणयिनां चक्रुस्तदा सम्मदात् ।
सर्वत्र स्वयशांसि वन्दिगदितान्याकर्णयन् कर्णवद्,
दानोद्दामकराम्बुजः स जयतु श्रीवस्तुपालश्चिरम् ।।
(वही, ९/७८)

दोनों महाकाव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने सर्वाधिक शार्दूलविक्रीडित छन्द सुरथोत्सव के १५वें सर्ग में प्रयुक्त किये हैं, जिनकी संख्या १५ है । इसी सर्ग के एक श्लोक के द्वारा कवि छन्द, अलङ्कार,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यंग्यार्थ तथा रस सम्बन्धी अपने अपरमित ज्ञान को बतलाते हैं :—

मन्दश्छन्दसि कोऽपि कोऽपि विकलः सालंकृतिर्व्याकृता—
वर्थे कोऽपि वृथाश्रमो रसनिधावन्धः स कोऽप्यध्वनि ।
वक्रान्तर्विहरद्भिरञ्चितनयामञ्जीरमञ्जुस्वर—
स्पर्धाबन्धुभिरेक एव कवते काव्यैः कुमारात्मजः ॥
(सुरथोत्सव, १५/५१)

दोनों महाकाव्यों में अनेक बार प्रयुक्त होने के कारण यह सिद्ध होता है कि कवि का यह प्रिय छन्द है ।

स्रग्धरा

स्रग्धरा छन्द का प्रयोग केवल सुरथोत्सव महाकाव्य में ही किया गया है । उल्लेखनीय है कि भुजङ्गप्रयात के समान ही यह छन्द भी केवल एक ही बार प्रयुक्त किया गया है । आचार्य क्षेमेन्द्र के मत में उद्दाम गतिशील वायु के वर्णन में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग श्रेष्ठ माना गया है :—

सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता ।
(सुवृत्ततिलक, ३/२२)

सुरथोत्सव में प्रयुक्त अकेला स्रग्धरा छन्द आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के विपरीत हिमालय की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता है :—

तावल्लावण्यलक्ष्मीः कलयति मलयस्तावदाविष्करोति
क्रौञ्चश्चेतोहरत्वं हरधरणिधरस्तावदभ्येत्यभिख्याम् ।
तावद्गर्वं सुपर्वक्षितिभृदपि दधात्युद्धतत्वं च विन्ध्य—
स्तावद्धत्ते धराणां पतिरतिरुचिरो दृश्यतेऽसौ न यावत् ॥
(सुरथोत्सव, ४/६९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमेश्वरदेव के छन्दों में स्रग्धरा ही सबसे दीर्घवृत्त है, जिसमें २१ अक्षर हैं । यद्यपि महाकाव्यों में कवि ने केवल एक ही बार इस छन्द को प्रयुक्त किया है, परन्तु इस दीर्घ वृत्त पर कवि का पूर्ण अधिकार है क्योंकि स्रग्धरा वृत्त में रचा गया कवि का **रामशतक** स्तोत्र इसका प्रमाण है ।

कवि के इतर छन्द

पूर्व वर्णित प्रमुख छन्दों के अतिरिक्त कवि ने कतिपय सामान्य छन्दों को भी **सुरथोत्सव** महाकाव्य में स्थान प्रदान किया है । वे सामान्य छन्द दोधक,[५१] तोटक,[५२] प्रमिताक्षरा,[५३] आर्या,[५४] मत्तमयूर,[५५] जलोद्धतिगति,[५६] तामरस,[५७] स्रग्विणी,[५८] रुचिरा,[५९] आदि हैं । आचार्य क्षेमेन्द्र ने इन छन्दों के विषय में सुवृत्ततिलक में कहा है कि ये छन्द मुक्तक रूप से प्रयुक्त होने चाहिए :—

दोधकतोटकनर्कुटयुक्तं मुक्तकमेव विराजति सूक्तम् ।
निर्विषयस्तु रसादिषु तेषां निर्नियमश्चसदा विनियोगः ।।

(सुवृत्ततिलक, ३/२३)

अर्थात् दोधक, तोटक और नर्कुट आदि छन्दों से आबद्ध पद्य मुक्तक ही शोभित होता है, क्योंकि रसादिकों में इनके प्रयोग का न कोई स्थान ही निश्चित है और न कोई विधान ही उपलब्ध है । **सुरथोत्सव** महाकाव्य में भी ये छन्द मुक्तक के रूप में ही प्रयुक्त हुये हैं । **कीर्तिकौमुदी** महाकाव्य में इन छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है ।

बारहवीं शताब्दी से पूर्व प्राप्त होने वाले महाकाव्यों में ऐसा देखा गया है कि एक या दो प्रकार के छन्दों को महाकाव्यों के सर्गों का वर्ण्य-विषय बनाया गया है । इसके विपरीत सोमेश्वरदेव ने अनेक प्रकार के छन्दों को विषयानुसार अपने महाकाव्यों में प्रयुक्त किया है और कवि के एक सर्ग में ही अनेक प्रकार के छन्द प्राप्त होते हैं । छन्द के क्षेत्र में प्राचीन परम्परा को छोड़कर एक ही सर्ग में अनेक प्रकार के छन्दों को रचकर कवि ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है, जिसे परवर्ती महाकाव्यकारों ने सहर्ष स्वीकार किया है । सुरथोत्सव का पन्द्रहवाँ सर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि के छन्द-ज्ञान का दर्पण है, जिसमें लगभग सभी प्रकार के छन्द प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी महाकाव्य में प्राप्त होने वाले छन्द ही कवि की अन्य रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं। **कीर्तिकौमुदी, उल्लाघराघव,** रामशतक, **कर्णामृतप्रपा** तथा प्रशस्तियों में ऐसा कोई नवीन छन्द नहीं प्रयुक्त हुआ है जो **सुरथोत्सव** महाकाव्य में न हो।

कवि ने जहाँ एक ओर कालिदास के छन्दों को स्वीकार किया है, वहीं दूसरी ओर भारवि और माघ से भी प्रभावित हैं। इस प्रकार छन्दो-विधान में कवि दोनों ही प्रकार की रीतियों में सुक्षम है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न विषयों को कवि ने छन्द के समुचित सांचे में प्रस्तुत किया है और इस कार्य में उसे सफलता मिली है। निश्चय ही कवि सोमेश्वरदेव छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ थे।

———०———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
   ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
   शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
   तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।
   पाणिनीय शिक्षा, ४१-४२, सम्पादक मनमोहन घोष, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३८ ई० ।
2. क्षेमेन्द्र—सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास, ६, ९, १६, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, १९६८ ई० ।
3. यद्यपि कहीं-कहीं इसकी सख्या ७ अथवा कहीं-कहीं ९ भी मिलती है ।
4. कीर्तिकौमुदी, प्रथम सर्ग, १ से ७६ श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
5. वही, द्वितीय सर्ग १ से ८१ श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
6. वही, तृतीय सर्ग, १ से ५० श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
7. कीर्तिकौमुदी, चतुर्थ सर्ग, १ से ४१ श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
8. वही, पञ्चम सर्ग, १ से ६२ श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
9. वही, सप्तम सर्ग, १ से ५३ श्लोक पर्यन्त, अनुष्टुप् छन्द ।
10. वही, अष्टम सर्ग, १ से ५६ श्लोक तक, अनुष्टुप् छन्द ।
11. सुरथोत्सव, तृतीय सर्ग श्लोक, १ से ७१ तक, अनुष्टुप् छन्द ।
12. वही, १० सर्ग, श्लोक १ से ११३, तक अनुष्टुप् छन्द ।
13. वही, १५/१३, ३०, ४०, ६१ ।
14. रघुवंश-कालिदास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६१ ई० ।
15. क्षेमेन्द्र-सुवृत्ततिलक, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६८ ई० ।
16. कीर्तिकौमुदी, सर्ग २/ श्लोक ८२ से १०३ तक, उपजाति छन्द ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

17. वही, सर्ग ६/ श्लोक १ से ५५ तक, उपजाति छन्द ।

18. सुरथोत्सव, प्रथम सर्ग, श्लोक १ से ९२ तक, उपजाति छन्द ।

19. वही, १३ सर्ग/ श्लोक १ से ९१ तक, उपजाति छन्द ।

20. वही, ४ सर्ग/३५, ४१, ४४, ४६, ४८, ५१, ५३, ५५, ६६ ।

2.1 वही, ९ सर्ग/९० तथा ९१ ।

22. वही, १० सर्ग/११४ ।

23. वही १५/१, ६, ७ ९, ११, १८, २१, २७, २९, ३१, ६६, ६७ ।

42. आद्यमक्षरमतस्तृतीयकं सप्तमं च नवमं तथान्तिमम् ।
दीर्घमिन्दुमुखि यत्र जायते तां वदन्ति कवयो रथोद्धताम् ।।
कालिदास-श्रुतबोध, २३ सम्पादक पं० रामेश्वरभट्ट श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, १९११ ई० ।

25. अक्षरं च नवमं दशमं च, व्यत्ययाद्भवति यत्र विनीते ।
प्राक्तनैः सुनयने यदि सैव स्वागतेति कविभिः कथिताऽसौ ।।
कालिदास-श्रुतबोध २४

26. क्षेमेन्द्र-सुवृत्ततिलक, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६८ ई० ।

27. सुरथोत्सव, ६/ १ से ९४ तक ।

28, वही, १/४४ तथा ९३ ।

29. वही, १५/४१ तथा ४३ ।

30. कीर्तिकौमुदी, ३/ ५२ से ७३ तक ।

31. महाभारत, ३.५.१६ ।

32. सुरथोत्सव, १५/१७ तथा २६ ।
८/८१, ६/११, ४/४२ ।

33. कीर्तिकौमुदी, ३/७४ तथा ७५; ८/६९ ।

34. सुरथोत्सव, ८/ १ से ८० तक ।

35. कीर्तिकौमुदी, ४/४२ से ८८ तक ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

36. वही, ५/ १ से ४८ तक, वंशस्थ-छन्द ।

37. प्रथम तथा द्वतीय चरण = २५ अक्षर ।

38. सुरथोत्सव २/६१, ४/३४, ५/४९ तथा ५०, १३/९२ १४/५७ से ७१ तक १५/३, ४३, ५७ तथा ५८ ।

39. कीर्तिकौमुदी, १/७९, ३/७९, ४/९१, ७/७६, ८०, ८१, ८/५७ से ६८ तक ।

40. वहीं, ३/७९, सुरथोत्सव, २/६८ तथा ३/९२

41. वही, ८/५७ से ६८ तक ।

42. कीर्तिकौमुदी, सर्ग ७/७४ तथा ७९ ।

सुरथोत्सव, सर्ग ४/ १ से २६ तक, सर्ग ५/५३

43. कीर्तिकौमुदी, ६/५६, ७/७८, ८/७० ।

44. वही, ५/६३, ६४, ६५, ६६ तथा ६७ ।

45. वही, २/१०४ से ११४ तक वसन्त तिलका छन्द ।

46. सुरथोत्सव, ५/५४ । वसन्ततिलका छन्द

47. वही, ७/ १ से ७० श्लोक तक । वसन्ततिलका छन्द

48. वही, १४/ ७२ तथा ७३ । वसन्ततिलका छन्द

49. वही, १५/ ८, १९, ३२, ३४, ४९, ५९ । वसन्ततिलका छन्द

50. कीर्तिकौमुदी, १/८१सर्गान्त, ४/९० उपान्त, ७/८२ तथा ८३ सर्गान्त, ८/७१ सर्गान्त, ९/७७ तथा ७८ सर्गान्त ।

सुरथोत्सव, १/९५ तथा ९६ सर्गान्त, ४/६७, ७/७२ से ७५ तक सर्गान्त ९/९३ सर्गान्त, १५/२, ४, ५, १६, २०, २२, २८, ३५, ३८, ३९, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६ तथा ६५ ।

51, सुरथोत्सव, ४/४० से ५२ तक ।

52. वही ,४/३१, ३२, ३६ तथा ५४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

53. वही, ४/५० ।

54. वही, १५/४२, ४४ तथा ४७ ।

55. वही, ४/३९ ।

56. वही, ४/४३ ।

57. वही, ४/४५ ।

58. वही, ४/४९ ।

59. वही, १२/६१ ।

———०———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षष्ठ अध्याय

रस – निरूपण

किं सोऽपि काव्यस्वरसः प्रशस्यो
य: पीयमानः श्रवणाञ्जलिभ्यम् ।
श्रोतुः प्रमोदाश्रुशिरःप्रकम्पै-
र्न दर्शयत्याशु वपुर्विकारम् ॥
सोमेश्वरस्य

प्रायः समस्त काव्य-प्रकारों का आत्म-तत्व रस है, यही कारण है कि प्राचीन काल से ही काव्य-मर्मज्ञों ने रस की व्यापकता एवं महत्ता को स्वीकार किया है । आचार्य आनन्दवर्धन के मतानुसार काव्य के शोभा-वर्धक तत्व गुणालङ्कार, रीति एवं छन्द की योजना, काव्य में अन्ततोगत्वा रसोत्कर्ष में सहायक सिद्ध होनी चाहिए, अन्यथा वे परिहार्य हैं[1] । महा-काव्य अथवा नाटक में सन्धि-सन्ध्यंगो की योजना भी रसानुकूल होनी चाहिए, शास्त्र मर्यादा सम्पादन की इच्छा से नहीं[2] । ध्वन्यालोककार के उपर्युक्त मन्तव्य से स्पष्ट है कि काव्य का मुख्य तत्व रस है, अन्य तत्व रसाश्रित है । प्रस्तुत स्थल अर्थात् कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में 'रस-योजना' पर विचार-विमर्श करने से पूर्व कवि के रस विषयक विचारों से अवगत होना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है । यद्यपि महाकवि सोमेश्वर-देव ने काव्यशास्त्र विषयक किसी नवीन ग्रन्थ की उद्भावना नहीं की है, तथापि उनकी रचनाओं के अध्ययन से उनके रस-विषयक विचारों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्वेषण हो जाता है ।

सोमेश्वरदेव की दृष्टि में कवि, काव्य और रस

सोमेश्वरदेव ने सुरथोत्सव के प्रथम सर्ग में कवि, काव्य और रस के सम्बन्ध में अपने विचार सक्षेप में व्यक्त किये हैं । कवि के महाकाव्यों में रस सम्बन्धी विचारों से अवगत होने के पूर्व ही इस सम्बन्ध में पहले ही विवेचन कर लेना अधिक न्याय संगत होगा । उपर्युक्त तीनों के सम्बन्ध में कवि की मान्यता यहां प्रस्तुत है[१] :—

'जो कवि गण सरस्वती की उपासना निरन्तर करते रहते हैं और जिनका काव्य यति सेवित वृत्तों से सम्पन्न है, ऐसे इन कवियों से पवित्र भला क्या हो सकता है ? अवस्था कम होने पर भी कवि के रस युक्त काव्य का महत्व होता है, जैसे मणि तेज होने के कारण पूज्य होती है, यद्यपि पत्थर के समान उसमे विस्तार नहीं होता है :—

रसप्रधानैः कविताविताने-
मान्या न मान्याः कवयो वयोभिः ।
तेजोविशेषान्मणयोऽर्हणीया
भवन्ति न प्रस्तरवत्प्रथिम्ना ॥
(सुरथोत्सव, १/३८)

कवि सोमेश्वरदेव आगे बतलाते हैं कि उत्कृष्ट कवियों के काव्य को अपना कहने वाला कवि लोगों के द्वारा काव्य-चौर ही कहा जाता है । दरिद्र के हाथों में माणिक्य को देखकर 'यह उसका है' कौन विश्वास करता है ? दूसरे के भावों को लेकर जो काव्य रचा जाता है, उसमें काव्यकार का क्या गुण होता है ? अर्थात् कुछ नहीं । बहुश्रुत लोग उस कवि को शङ्का की दृष्टि से देखते हैं और उसे कीर्ति भी नहीं मिलती है :—

काव्यं परोक्तैः क्रियते यदर्थैः
कृतेन कस्तेन गुणोऽस्ति कर्तुः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्जीवतस्तस्य बहुश्रुतेभ्यः
शङ्काविपन्नस्य न चात्र कीर्तिः ।।
(सुरथोत्सव, १/४०)

निरन्तर प्रवाहित काव्य में काव्य-चौर चोरी नहीं कर पाते हैं, जैसे प्रवाह में बक चोरी करने में समर्थ नहीं होता है। रस युक्त, वक्र, रम्य तथा काञ्चन के समान कान्ति वाली सूक्ति किसी-किसी कवि के ही मुख में वराह भगवान् के दाँत समान सुशोभित होती है :—

रसाश्रया वक्रतया च रम्या
व्याकुर्वती काञ्चनकान्तिमुच्चैः ।
सूक्तिः कवेः कस्यचिदेव वक्त्रे
विभाति दंष्ट्रेव किरीश्वरस्य ।।
(सुरथोत्सव, १/४२)

रस के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि क्या वह काव्यरस भी प्रशंसनीय होता है जो श्रवणाञ्जलि के द्वारा पिये जाने पर श्रोता के प्रमोदाश्रु तथा शिरःकम्प आदिक शारीरिक विकार नहीं पैदा करता है, अर्थात् काव्यरस वही है, जिसके द्वारा आह्लाद एव प्रमोदाश्रु प्रवाहित होने लगे :—

किं सोऽपि काव्यस्वरसः प्रशस्यो,
यः पीयमानः श्रवणाञ्जलिभ्याम् ।
श्रोतुः प्रमोदाश्रु शिरः प्रकम्पै,
र्न दर्शयत्याशु वपुर्विकारम् ।।
(सुरथोत्सव, १/४३)

ठीक इसी प्रकार के विचार नलचम्पू[४] में त्रिविक्रमभट्ट ने भी व्यक्त किये हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेनधनुष्मता ।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥

(नलचम्पू, १/५)

कवि, काव्य तथा रस के सम्बन्ध में कवि सोमेश्वरदेव की यही मान्यता है ।

रस साक्षात्कार

रस-साक्षात्कार के सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सोमेश्वरदेव की विचारधारा प्राचीन परिपाटी का ही समर्थन करती है, अर्थात् सर्व प्रथम श्रवण-कीर्तनादि के पुनः अभ्यास से आनन्दरूपिणी रति का अविर्भाव होता है । तदनन्तर विभावादि के संयोग से रति का साक्षात्कार होता है । उसके पश्चात् रति ही रस स्वरूप हो जाती है । पुनः उन विभावादि कारणों से रस-साक्षात्कार होता है । इस प्रकार रति साक्षात्कार में जिस आनन्द का आविर्भाव होता है, उससे कोटि गुणाधिक आनन्दाविर्भाव रस-साक्षात्कार में होता है । जिस प्रकार एक ही दधिपदार्थ शर्करा, मरिच, कर्पूरादि नाना वस्तु से मिलकर 'रसाल' नाम धारण कर लेता है तथा उसके आस्वादन काल में एक विचित्र रस प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार (स्वकारणादि) विभावादि के साथ ही रस साक्षात्कार में एक लोकोत्तर, चमत्कारी सुख का अनुभव होता है । अनेक वाह्य वस्तुओं में से किसी सर्वोत्कृष्ट अद्‌भुत वस्तु के दर्शन कर लेने पर चमत्कार उत्पन्न होता है । यहाँ 'चमत्कार' पदार्थ नेत्रस्फार रूप होता है, उसी प्रकार अलौकिक काव्यार्थ के परिशीलन के समय रसता की दशा में किञ्चित् अद्‌भुत सुख के अनुभव से चित्त का स्फार हो जाता है, यह चित्त का स्फार ही चमत्कार है । आचार्य विश्वनाथ ने भी 'चमत्कार' को चित्तविस्तार रूप एवं 'विस्मय' का पर्याय स्वीकार किया है । 'चमत्कार' ही रस रूप अनुभव का प्राणभूत है, इस तथ्य का समर्थन विश्वनाथ ने किया है[1] ।

रसों की संख्या के सम्बन्ध में आरम्भ से ही विद्वानों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मतभेद रहा है। भरत मुनि ने सर्व प्रथम आठ नाट्य रसों का उल्लेख किया है[६]। तदनन्तर उसी आधार पर धनिक-धनञ्जय ने भी नाटक में नवम रस शान्त का खण्डन करते हुए रसों की संख्या आठ ही स्वीकार की है[७]। अभिनवगुप्त[८], मम्मट[९], हेमचन्द्र[१०], पण्डितराज जगन्नाथ[११] आदि आलङ्कारिकों ने शान्त का रसत्व स्वीकार करते हुए रसों की संख्या ९ निर्धारित की है। विश्वनाथ ने सर्व प्रथम आठ नाट्य रसों का उल्लेख करने के पश्चात् नवम शान्त का रसत्व स्वीकार किया है[१२]। रूपगोस्वामी ने 'हरिभक्ति रसामृतसिन्धु' में शान्त, प्रीति, प्रेयो वत्सल, मधुर, (उज्ज्वल) आदि पाँच मुख्य तथा हास्य, अद्भुत, वीर, करण, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि सात गौण रसों अर्थात् १२ रसों का प्रतिपादन किया है[१३]। मधुसूदन सरस्वती ने रौद्र, अद्भुत, शुचि, शख्य, हास्य, वीर, वत्सल, करुण, भयानक, वीभत्स, शान्त, सप्रेम, भक्ति आदि १२ रसों की मान्यता प्रदान की है[१४]।

इसके अतिरिक्त कतिपय संस्कृत-आलङ्कारिकों ने लौल्य, मृगया, अक्ष, व्यसन, दुःख, सुख, कार्पण्य, वीडनक आदि नवीन रसों की गवेषणा की है, किन्तु वे प्रचलित परम्परा में विशेष आदरणीय न हो सके। उपर्युक्त रसों के रसत्व के सम्बन्ध में डा० वी० राघवन् ने एक शोध लेख में अपने आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत किये हैं जो समीचीन प्रतीत होते हैं[१५]।

सुरथोत्सव और कीर्तिकौमुदी में रस-योजना

सुरथोत्सव और कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में प्रधानरस वीर है, किन्तु शृङ्गार, करुण, भयानक, वीभत्स, अद्भुत आदि रसों की भी यथास्थान अत्यन्त मनोरम व्यञ्जना हुई है। महाकाव्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौण रूप में रखने का विधान किया गया है[१६]। क्योंकि मानवीय जीवन एक रस न होकर बहुभाव समन्वित है। अतः महाकाव्य में अनेक रसों की उपलब्धि उचित तथा स्वाभाविक ही समझ पड़ती है। यद्यपि दोनों महाकाव्यों का अंगी रस वीर है, तथापि रसों का विवेचन क्रमानुसार किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रृङ्गार–रस

काव्य शास्त्रियों ने श्रृङ्गार को रसराज माना है, अतः सर्वप्रथम इसी रस का विवेचन अपेक्षित है । **सुरथोत्सव** तथा **कीर्तिकौमुदी** नामक दोनों ही महाकाव्यों में **श्रृंगार** के संयोग-वियोग दोनों ही पक्षों का सुन्दर चित्रण हुआ है । **कीर्तिकौमुदी** में विप्रलम्भ पक्ष प्रथम आया है, सम्भोग बाद में । विप्रलम्भ श्रृंगार पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणात्मक नाम से चार प्रकार का होता है । मिलन के पूर्व नायक और नायिका के हृदय में मिलने की उत्कण्ठा के कारण उत्पन्न होने वाली व्याकुलता को पूर्वराग कहते है । पूर्वराग चार प्रकार से सम्भव है-चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्वप्न दर्शन एवं प्रत्यक्ष-दर्शन । सोमेश्वरदेव ने **कीर्तिकौमुदी** में प्रत्यक्ष-दर्शन नामक पूर्वराग का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है—वस्तुपाल के द्वारा एक स्त्री ऐसी देखी गयी, जो कि लज्जा के भार से अत्यधिक झुक रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्त्री कामदेव रूपी किरात के द्वारा फेंके गये बाणों के कारण उसके आधीन होने वाली वन्दिनी सी सुशोभित हो रही है :—

तेनाङ्गना प्रत्यवलोकिताऽन्या, त्रपातिभारेण भृश नमन्ती ।
रराज कन्दर्पकिरातमुक्तसमापतन्मार्गणवञ्चिनीव ॥

(कीर्तिकौमुदी, ६/२२)

नायक-नायिकाओं के प्रत्यक्ष दर्शन नामक पूर्वराग का पुनः वर्णन करते हुये सोमेश्वरदेव कहते हैं—'कामदेव से बढ़कर भला कौन धनुर्धारी है जिसके बाणों से वस्तुपाल से प्रेम करने वाली स्त्रियों के हृदय तो बिंध गये परन्तु आवरणभूत कञ्चुक में वेध-चिन्ह दिखाई ही नहीं पड़ा :—

न पुष्पचापादपरोऽस्ति चापी, यस्मादमात्यप्रणयोन्मुखीनाम् ।
न कञ्चुके किञ्चन वेधचिह्नं भिन्नं मनस्तेन घनस्तनीनाम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ६/२४)

उपर्युक्त दोनों ही वर्णन अत्यधिक मार्मिक एवं उत्कृष्ट हैं । कवि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कल्पना प्रशंनीय है ।

मान

महाकाव्यों में नायिकाओं के मान-वर्णन की परम्परा प्राप्त होती है । परम्परया हं। कीर्तिकौमिदुी के सप्तम सर्ग में चन्द्रोदय के प्रसंग में मान का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है । कवि का कथन है कि चन्द्रोदय के अनन्तर अब उन दूतियों का अवसर बन आया है, जो कि मनस्विनियों के इङ्गित को ठीक प्रकार से पहचानती है, क्योंकि वे मनस्विनियाँ अब अपने मान भंग के बिना ही प्रिय का संगम चाह रही हैं :—

अनिच्छतीनां निजमानभङ्गं, सङ्गं प्रियैः सत्वरमिच्छतीनाम् ।
अथेङ्गितज्ञस्य मनस्विनीनां, दूतीजनस्यावसरो बभूव ।।

(कीर्तिकौमुदी ६/६२)

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि नायिका प्रिय का संगम चाहते हुये भी मान के अस्तित्व को कायम कर रही है, क्योंकि अभी सम्पूर्ण रात्रि शेष है ।

मानमोचन

संस्कृत कवियों ने मान-वर्णन के पश्चात् मान-मोचन का भी ललित वर्णन किया है । **सुरथोत्सव** में कवि ने उसी प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुये मान-मोचन का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है । कवि का कथन है कि 'जिन माननियों को अप्रिय करने वाले पति के पास सखियाँ ले जाने में समर्थ नहीं हुई, चन्द्र सहज ही उन नायिकाओं को उनके पतियों के पास ले आया, क्योंकि वह कलावान् है' :—

यां मानभृतमालयोऽप्यलं नेतुमप्रियकरं प्रियं प्रति ।
तां सहेलमनयन्निशाकरो दुष्करं किमथवा कलावताम् ।।

(सुरथोत्सव, ६/८०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपि च

सुरथोत्सव के अधोलिखित वर्णन से ज्ञात होता है कि कुक्कुट-शब्द सुनते ही नायिका ने अपना मान त्याग दिया, क्योंकि अब प्रातः काल होने वाला ह । मान-मोचन का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि 'सम्भोग से मैत्री रखने वाली कमल-नयनियों ने प्रातः कालीन रात्र्यन्त सूचक कुक्कुट के शब्द को सुनकर प्रेमी के अभिमुख होने के कारण, जर्जरता प्राप्त मान को त्याग दिया :—

आकर्ण्य कुक्कुटरुतानिरतैकसख्या
रात्रेः प्रयाणपटहत्वमुपेयिवांसि ।
प्रत्वप्रियप्रणयजर्जरितानि मान—
विस्फूर्जितानि परितप्तजुरब्जनेत्राः ॥

(सुरथोत्सव, ७/६)

मानिनी नायिका भी चन्द्रोदय होने पर अपने मान को त्याग कर प्रिय से मिलने के लिये ही वह अपने को सुसज्जित करने लगती है । चन्द्रमा की किरणों और खिले हुये कुमुदों के कारण अत्यन्त सुन्दर रात्रियों को देखकर वधुयें अगरु, कस्तूरी तथा चन्दन के द्वारा शीघ्रता के साथ अपने को मण्डित कर रही हैं :—

कौमुदीकुमुदवृन्दसुन्दरां शर्वरीमथ विलोक्य सत्वरः ।
काकतुण्डमृगनाभिचन्दनैर्मण्डनानि विदधे वधूजनः ॥

(सुरथोत्सव, ६/६३)

पतियों से मिलने की उत्सुक मृगनयनियों ने विविध प्रकार से अपने को सजा रखा है । कवि को सम्भवतः सम्भोग की इस पूर्वावस्था के वर्णन में ही अधिक आनन्द आता है और वह मृगनयनियों के सौन्दर्य को प्रस्तुत कर रहा है । 'मृगनयनियों के वेणी के नीचे पराग से युक्त सुगन्धित पुष्प

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव की तलवार वेणी तथा पुष्प मूठ के समान ही है :—

मूलबद्धकुसुमा मृगीदृशां वेणिरेणमदरेणुरूषिता ।
राजति स्म रजतान्वितत्सरुः खड्गयष्टिरिव पुष्पधन्वनः ।।

(सुरथोत्सव ६/७०)

कवि के महाकाव्यों में सम्भोग के विविध पक्षों का समुचित वर्णन नहीं प्राप्त होता है परन्तु सुरथोत्सव में वर्णित सम्भोग की पूर्वावस्था के प्रति पाठक निरन्तर उत्सुक बना रहता है। यह उत्सुकता ही महत्वपूर्ण है और यहीं पाठक को रसानुभूति का अवसर प्राप्त होता है। 'कामिनियों ने जब अपने तिरछे नयनों के द्वारा सुजनों को अपनी इच्छा बता डाली, तो कार्य के व्याज से सुहृद्-परिवार आपस में हाथों से इशारा करता हुआ चल पड़ा :—

कामिनीषु नयनेन तिरश्चा व्यञ्जतीषु सुजनाय मनः स्वम् ।
उत्थितः कृतमिथः करसंज्ञं कार्यवानिव सुहृत्परिवारः ।।

(सुरथोत्सव, ६/१००)

इसी महाकाव्य में ही युग्म श्लोकों के माध्यम से कवि नायिका के मनोवांच्छित कार्य की सिद्धि का वर्णन करता है। नायिका अपने नायक से कह रही है कि हे नाथ ! मैं विरह-व्यथा को अच्छी तरह जानती हूं। अतः आपसे कह रही हूं कि शीघ्र ही आप उस पुण्य करने वाली प्रिया के पास चले जायें। उसके पुत्रवती होने पर मुझे कोई कष्ट नहीं', इस प्रकार गम्भीर भाव से कहने वाली प्रेयसी के घनीभूत क्रोध से दुःखित होने वाला नायक प्रणत होकर नायिका के अश्रु-निर्झर से स्नान कर नायिका को संतुष्ट कर डाला अर्थात् उसके द्वारा अपना लिया गया :—

नाथ वेद्मि विरहव्यथामतस्त्वां वदामि दयितां व्रजाशु ताम् ।
कुर्वतीं सुकृतमेतदेति यन्नार्तिरन्यजननेऽपि मामियम् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोऽपि कन्दलितमन्तु दुःखितः प्रेयसीमिति गभीरभाषिणीम् ।
अनमन्नथ तदश्रुनिर्झरस्नानधौतदुरितो मतोऽभवत ।।

(सुरथोत्सव, ६/८७ व ८८)

प्रस्तुत उदाहरण में आलम्बन विभाव नायिका तथा आश्रय प्रेमासक्त व्यक्ति है । आलम्बन की चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं । क्योंकि इस वर्णन का सम्बन्ध चन्द्रोदय से है अतः प्रमुख उद्दीपन विभाव चाँदनी ही कही जा सकती है । नायिका का प्रेमावलोकन तथा अश्रुपात अनुभाव है । स्मृति एवं शङ्का नामक संचारी भावों के संयोग से यहाँ पर रति स्थायी भाव संभोग श्रृङ्गार के रूप में व्यञ्जित हो रहा है ।

अधरदंशन

सम्भोग के विविध प्रकारों में से अधर-दंशन का विशिष्ट महत्व है । कवि सोमेश्वरदेव भी उसे महत्व देते हुए कह रहे हैं कि यह उचित ही हुआ जो कि प्रिय के दन्तक्षत से सुन्दरियों के ओठों पर अवस्थित आलक्तक रस भाग निकला है । क्योंकि कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने वाञ्छित प्रिय स्थान पर दूसरे को बैठा हुआ कैसे देख सकता है ?

एणाक्षीणां कान्तदन्तक्षतालंकारादोष्टाद्यावकैः साधु यातम् ।
स्वस्थानेऽन्यं वीक्ष्य बद्धप्रतिष्ठं कस्तत्रैव स्थातुमीहेत रागी ।।

(सुरथोत्सव, ६/१११)

उपर्युक्त उदाहरण में आलम्बन विभाव नायिका तथा आश्रय प्रेमासक्त व्यक्ति (रागी) है । चन्द्रोदय उद्दीपन विभाव है । इसके अतिरिक्त आश्रय का आलिंगन तथा अधर-दंशन अनुभाव है । औत्सुक्य एवं शंका नामक संचारी भावों के संयोग से यहाँ रति स्थायी भाव संयोग श्रृङ्गार के रूप में उपस्थित हो रहा है ।

कुच-स्पर्श

सम्भोग के विविध वर्णनों में कुच-स्पर्श का भी महत्वपूर्ण स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। सोमेश्वरदेव ने कीर्तिकौमुदी में कुच-स्पर्श का बहुत ही उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। उरोजों की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि 'कुटिल नेत्रवाली स्त्रियों के उन कुचों की वीरता का वर्णन विधाता भी नहीं कर सकता है, जो सुरत-युद्ध में कवच-रहित और प्रियपीडित होने पर भी नत नहीं होते हैं :—

निगदितुं विधानाऽपि न शक्यते सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम् ।
सुरतसंयति यौ प्रियपीडितावपि नतिं न गतौ च्युतकञ्चुकौ ।।

(कीर्तिकौमुदी, ७/७९)

नखक्षति

सम्भोग के विविधि वर्णनों में से नखक्षति का उल्लेख करते हुए कवि सोमेश्वरदेव कीर्तिकौमुदी के सप्तम सर्ग में कहते हैं :—'रात्रि के अन्त में सुन्दर हवा को पाकर सुरत-श्रम-खिन्न कृशोदरियों का समाज अपने प्रियों के नखक्षत हृदयों पर सो गया है :–

उपरतसुरतश्रमस्त्रियामासमयविराममनोरमैर्मरुद्भिः ।
सरसनखपदे हृदि प्रियाणामथ शयितः कृशमध्यमासमाजः ।।

(कीर्तिकौमुदी, ७/८०)

कीर्तिकौमुदी के समान ही सुरथोत्सव में भी सम्भोग का मनोहारी वर्णन करते हुए कवि ने बड़े ही कौशल के साथ इस विषय को समाप्त किया है। सम्भोग वर्णन विषयक अन्तिम छन्द इस प्रकार है — 'क्रीडागृह में पारावत के शब्द विरत हो गए हैं। रति श्रम में खिन्न युवतियां अपने पतियों के हृदय पर सो गई हैं। रति-सहचर काम ने समग्र विश्व को अपने वश में करके शिव को भी जीतने की प्रख्याति-प्राप्त पुष्प-बाण को रख दिया है' :—

अथ क्रीडागारे चिरविरतपारापतरुते
रतान्तक्रान्ताभिर्दयितहृदि सुप्तं युवतिभिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशे विश्वं कृत्वा रतिसहचरोऽपीश्वरशम-

प्रमाथप्रख्यातं समहरत पौष्पं प्रहरणम् ।।

(सुरथोत्सव, ६/११३)

सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में नायक-नायिकाओं के विप्रलम्भ तथा सम्भोग पक्षों का विस्तृत वर्णन करने के अनन्तर भी कवि को संतोष नहीं है, उसे प्रकृति आदि में भी श्रृङ्गार रस प्रवाहित होता हुआ दिखाई पड़ता है। मधुक्षरण शील माधवीलता पर बैठे हुये भ्रमरों को देखकर कवि के उद्‌गार इस प्रकार प्रकट हुये हैं :— 'कतिपय कामी भ्रमरों के द्वारा कटाक्षित, अन्य कुछ भ्रमरों के द्वारा चुम्बित एवं अन्य कतिपय भौरों के द्वारा उपभोग की गयी मधुक्षरणशील माधवी लता नयी वेश्या के समान प्रतीत हो रही है :—

कटाक्षिता कैरपि चुम्बिता परैः कृतोपभोगा मधुपैश्च कैश्चन ।

मधुक्षरन्ती विरराज माधवी नवीनरूपा गणिकेव कामिभिः ।।

(सुरथोत्सव, ५/१०)

उपर्युक्त विविध प्रकार के वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि कवि सोमेश्वरदेव भी श्रृङ्गार को ही रसराज स्वीकार करते हैं।

करुण रस

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति के कारण करुण रस की उत्पत्ति होती है। धनञ्जय ने करुण रस की परिभाषा देते हुये कहा है कि इष्ट का नाश या अनिष्ट के प्राप्ति के कारण करुण रस की सृष्टि होती है।

'इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणो रसः' ।

यहाँ अनिष्ट की प्राप्ति का अर्थ यह नहीं है कि इष्ट वस्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाय अथवा केवल इष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही अनिष्ट हो, अपितु उस व्यक्ति या वस्तु की हानि होने से भी करुण रस की उपस्थिति हो सकती है और उसके सम्बन्धी के स्वयं अनिष्टग्रस्त होने से भी। यही कारण है कि इष्ट नाश की बात पृथक् रूप से कही गयी है। अनिष्ट की प्राप्ति में शाप-बन्धन आदि आते हैं। यहाँ तक कि क्लेश, अर्थहानि, राज्य अथवा देश परिभ्रंश के फलस्वरूप भी करुण का विधान हो सकता है। तात्पर्य यह है कि मोटे रूप में इष्ट-नाश और अनिष्ट प्राप्ति ही करुण रस का लक्षण है। इन दो भेदों के अन्तर्गत अन्य अनेक भेद समा जाते हैं।

महाकवि भवभूति ने तो करुणरस को सर्व प्रथम स्थान प्रदान किया है, उसे रसराज ही माना है :—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त्त-बुद्बुदतरंगमयान् विकारा-
नम्भो यथा, सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥
(उत्तररामचरित, ३/४७)

संस्कृत महाकाव्यों में भी करुण रस को समुचित स्थान मिला है। महाकाव्यकार सोमेश्वरदेव भी इस रस से अछूते नहीं हैं। सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में इस रस के हृदयद्रावक उदाहरण प्राप्त होते हैं। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में करुण रस के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं। राजलक्ष्मी द्वारा गुर्जर राजधानी अनहिलवाड़ का मार्मिक किन्तु दयनीय चित्रण प्रस्तुत किया गया है। राजलक्ष्मी राजा लवण प्रसाद से कह रही है कि—'हन्त ! वे गुर्जरेन्द्र और उनके कुञ्जरेन्द्र शत्रुओं के द्वारा मारे जाने पर स्वर्ग चले गये, जिनके दृढ़ भुजाओं और दांतों पर मेरा ही निवास था। जो राजा आज चक्रवर्ती पद पर विराजमान है, वह शिशु होने के कारण शत्रुओं के समस्त सेनाओं को निग्रहीत करने में उसी प्रकार सुक्षम नहीं है, जिस प्रकार टिमटिमाता हुआ दीप घोर अंधकार को पूर्णरूप से समाप्त नहीं कर पाता :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिवं गतास्ते बत ! गूर्जरेन्द्रास्ते कुञ्जरेन्द्राश्च हताः सपत्नैः ।
येषां क्षमाभृद्दलनक्षमेषु, भुजेषु दन्तेषु च मे निवासः ।।
यो वर्तते सम्प्रति चक्रवर्तिपदेऽपि बालः स बलान्यरीणाम् ।
क्षमः समग्राणि न निग्रहीतुं, दीपस्तमांसीव तटस्थितानि ।।

(कीर्तिकौमुदी, २/९३ तथा ९४)

कवि का यह करुण वर्णन बड़ा ही हृदय-द्रावक है । राजलक्ष्मी आगे कहती है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं देखा जा रहा है जो अपने हाथों से दुःख में निमग्न मेरा उद्धार करे । जितने लोग देखे जाते हैं, उनके हाथ सज्जनों के धनधान्य को ग्रहण करने के लिए ही फैले पाये जाते है :—

आस्ते सहस्तः स पुमान् न कोऽपि, यो मामिमामुद्धरते निमग्नाम् ।
ग्रहीतुमेते हि सतां विभूतिं, शतं वितन्वन्ति नराः कराणाम् ।।

(कीर्तिकौमुदी, २/९६)

राजलक्ष्मी पूर्व प्राप्त सम्मान को स्मरण करती हुई पुनः कहती है कि स्वर्गवासी महाराज जगद्देव के न होने के कारण आज अपने ही जनों के द्वारा मैं इस गुर्जरपुरी में घसीटी जा रही हूं, जहां खड़े हुये वेत्रधारी द्वारपाल से डरते हुये दुष्ट जन प्रवेश का साहस न कर पाते थे। इसके अतिरिक्त जिन्होंने वेद-सागर के पारावार को देख रखा है, ऐसे कुमार नामधारी पुरोहित के बिना और कौन है ? जो चैद्यराजलक्ष्मी को मेरी सपत्नी बना पायेगा :—

विना जगद्देवमिमामवस्थां, नीता निजैरेव परैरिवाहम् ।
यत्र स्थिते वेत्रिणि शङ्कितैर्न, द्विष्टैः प्रविष्टं पुरि गूर्जराणाम् ।।
अवाप्तवेदाम्बुधिरोधसा च, पुरोधसा तेनकुमारनाम्ना ।
विनाऽद्य चैद्यक्षितिपाललक्ष्मीं, को मे करिष्यत्यपरः सपत्नीम् ।।

(कीर्तिकौमुदी, २/९९ तथा १००)

अपनी दयनीय स्थिति को बतलाते हुये राजलक्ष्मी कहती है कि-'गुर्जर-राजधानी में निरन्तर हाथियों के सञ्चरण से उनके कण्ठों में बंधे घण्टों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्वनि सुनायी पड़ती थी, किन्तु अब रात्रि में शृगालों के शब्द सुनायी पड़ते हैं। पहले नगर की रमणियों के मुखों में कमलगत सौन्दर्य विद्यमान था, किन्तु अब अनाथ होने के कारण उनके मुख पर सतत अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। गुर्जर राजधानी अत्यन्त दयनीय स्थिति को प्राप्त हो गयी है। उसकी स्थिति विषयों से विरक्त विधवा के समान हो गयी है :—

निरन्तरं सञ्चरतां गजानां, या डिण्डिमैरुड्डमरा ध्वनिद्भिः ।
एकाकिनी रात्रिषु गूर्जराणां, सा पूत्करोतीव शिवारुतैः पूः ॥
क्रीडावतीनां नगराङ्गनानां, वक्त्रैः सदा यत्र सरोजसत्ता ।
सरस्तदश्रूणि किरत्यनाथं, वातास्तपाथः कणकैतवेन ॥
मुण्डेव खण्डितनिरन्तरवृक्षखण्डा,
निष्कुण्डलेव दलितोज्ज्वलवृत्तवप्रा ।
दूरादपास्तविषया विधवेव दैन्य—
मभ्येति गूर्जरधराधिपराजधानी ॥
(कीर्तिकौमुदी २/१०२ से १०४)

उपर्युक्त उदाहरण में अनहिलवाड़ की दयनीय स्थिति अर्थात् अनिष्ट की प्राप्ति के कारण करुण रस की व्यञ्जना हुई है। राजलक्ष्मी का राजधानी के लिए विलाप हृदय-द्रावक है। इस वर्णन में शोक स्थायी भाव है। राजधानी आलम्बन है। राजधानी में वृक्ष, चहरदीवारी आदि का अभाव उद्दीपन विभाव है। राजलक्ष्मी का विलाप युक्त कथन अनुभाव है। शोक की अवस्था में राजलक्ष्मी द्वारा प्राचीन वैभव की प्राप्ति करने का भाव संचारी है। इसके अतिरिक्त स्मृति, विषाद आदि संचारी भाव हैं, जिनके संयोग से करुण रस की सृष्टि हो रही है।

वीर रस

वीर चार प्रकार के माने गये हैं-दानवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा युद्धवीर। वीरता के ये चारों गुण (पुरुष) में प्रदर्शित किये गए हैं। कवि के दोनों ही महाकाव्यों में दानवीर, धर्मवीर एवं दयावीर का सांगोपांग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रण प्राप्त होता है। युद्धवीरता का चित्रण किञ्चित् विस्तार के साथ किया गया है :-

१–युद्धवीर

निजेनांशुप्रतानेन प्रकाशं कुर्वती दिशाम् ।
पार्वती दृष्टिरुल्केव पपाताभिद्विषच्चमूम् ॥
(सुरथोत्सव, १०/३)

यहाँ पर युद्ध के लिये जाती हुई पार्वती का वर्णन किया गया है। उत्साह स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव महिषासुर दैत्य तथा आश्रय पार्वती है। महिषासुर की सेना उद्दीपन है। पार्वती के पास दूत के गर्वोक्तिपूर्ण संदेश अनुभाव है। गर्व, आवेग, अमर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिनके सहयोग से वीररस व्यञ्जित हो रहा है।

सुरथोत्सव महाकाव्य के युद्धवीर के अन्य स्थल भी द्रष्टव्य हैं— राजा सुरथ ने दर्पोद्धत आक्रमणकारी राजाओं के देदीप्यमान मणिमण्डित मस्तकों को अपने बाण-दण्डों से, दर्पीले मणियों के देदीप्यमान फणों के समान नत बनाया :—

प्रकुर्वतामाक्रमणं नृपाणां दर्पोल्बणानां फणिनामिवैषः ।
शिरांसि राजन्मणिमण्डनानि निस्त्रिंशदण्डेन नतिं निनाय ॥
(सुरथोत्सव, १/८५)

कवि आगे कहता है कि जिनके ऊर्ध्वगामी असिदण्ड के द्वारा वह विरोधिनी सेना, जिसके अन्दर विपक्षी राजा का पूर्णरूप से प्रसार हो रहा था, विनाश को प्राप्त हो गई, जिस प्रकार उदयशील एवं कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य के द्वारा चन्द्र से युक्त रात्रि विनाश को प्राप्त होती है :—

उद्गच्छताविष्कृतपुष्करेण यस्यासिदण्डेन विकर्तनेन ।
सरातेजःप्रसरा विरोधिसेना विनाशं रजनीव निन्ये ॥
(सुरथोत्सव १/८९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरथोत्सव में ही युद्ध क्षेत्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि धूल से अन्धकारित जयश्री के सौधरूपी युद्ध में परस्पर प्रहारशील हाथियों के दो दांतों के बीच होने वाले संघर्ष से उठने वाली आग दीप के समान प्रतीत हो रही थी:—

युद्धे जयः श्रियः सौधे पांशुपूरान्धकारिते ।
प्रहरद्दन्तिदन्तोत्थैः पावकैर्दीपकायितम् ।।
(सुरथोत्सव, १०/५३)

वीर रस का जहाँ अन्तिम उत्कर्ष है ऐसी युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मेघ के समान महारथियों ने ऐसी शरवृष्टि की, कि शोणित जल से भरी हुई नदियाँ युद्धभूमि में तत्क्षण बह चलीं :—

शरासारैस्तथा वृष्टं मेघैरिव महारथैः ।
यथा रक्तजलानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।।
(सुरथोत्सव, १०/५७)

सुरथोत्सव के अतिरिक्त कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के नायक वस्तुपाल को भी अपने जीवन में अनेक युद्ध करने पड़े, फलतः इस महाकाव्य में भी वीर रस का अनवरत प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। कीर्तिकौमुदी में प्राप्त युद्धवीर का एक वर्णन इस प्रकार है— 'युद्ध क्षेत्र में धनुष की डोरी के साथ तो बाणों की सन्धि हुई, परन्तु उन दो वीर योद्धाओं के बीच परस्पर विग्रह छिड़ गया। युद्ध क्षेत्र के बाणों की चर्चा करते हुए कवि पुनः कहता है कि बाण दूसरे लोगों के कान के साथ लगे, परन्तु जीवन दूसरों का ले लिया। इस प्रकार अपनी क्रिया दिखाने वाले बाणों के द्वारा दुर्जनों की चेष्टा स्पष्ट की जा रही थी :—

काण्डानां सह कोदण्डगुणैः सन्धिरजायत ।
तेषां वीरप्रकाण्डानां, विग्रहस्तु परस्परम् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्णे लगद्भिरन्येषामन्येषां जीवितव्ययम् ।
कुर्वाणैर्विदधे बाणैः, स्पष्टं दुर्जनचेष्टितम् ।।
(कीर्तिकौमुदी, ५/२७ तथा २८)

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में ही युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि खड्गधारी वीर विपक्षी खड्गधारी वीरों से, भाले वाले भाले वाले वीरों से, पदाति पदाति से तथा अश्वारोही अश्वारोहियों से लड़ पड़े । युद्ध के परिणाम स्वरूप वीरों के कर-कमल तथा चरण-कमलों के द्वारा युद्धभूमि पूजित हो उठी । कटे हुए वीरों के केश युक्त मुण्ड दुर्वायुक्त पूजोपकरण फल जैसे प्रतीत हो रहे थे :—

खड्गिनः खड्गिभिः कुन्तपाणयः कुन्तपाणिभिः ।
योधा योधैर्हयारूढा, हयारूढैश्च सङ्गताः ।।
वीराणां पाणि-पदाब्जैः, पूजितेवाऽऽहवक्षितिः ।
दत्तार्थेव च दूर्वाभकेशमिश्रैः शिरःफलैः ।।
(कीर्तिकौमुदी, ५/३२ तथा ३४)

शत्रु की सेना को देखकर राजा लवण प्रसाद तथा मंत्री वस्तुपाल के हृदय में उत्साह का होना स्थायी भाव है । विपक्षी सैनिक आलम्बन विभाव हैं । विपक्षी सैनिकों की चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं । रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं । उग्रता, अमर्ष आदि संचारी भाव हैं । इन सभी के सहयोग से वीर रस व्यञ्जित हो रहा है ।

२—दानवीर

कवि ने महाकाव्यों में दानवीर के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं एक स्थल पर तो कवि राजा सुरथ को दानवीरता में अङ्गराज कर्ण से भी अधिक महत्व प्रदान करता है । कवि का कथन है कि प्रत्येक याचक को दान देकर महादानी अङ्गराज कर्ण को भी पराजित कर अपने शुभ्र यश को विस्तृत करने वाले राजा सुरथ का बाहु, कृष्ण कृपाण दण्ड को आगे करके युद्ध में विजयी हुआ:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्यर्थिद्रानोल्लसदङ्गराजपराजयद्योतितपाण्डुकीर्तिः ।
कृष्णं पुरस्कृत्य कृपाणदण्डं यद्बाहुराजौ विजयीबभूव ॥
(सुरथोत्सव, १/८७)

प्रस्तुत उदाहरण में उत्साह स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव याचक तथा आश्रय स्वयं राजा सुरथ का हाथ है। दान के द्वारा राजा का यशोलाभ उद्दीपन है। राजा सुरथ के द्वारा राजा कर्ण से भी अधिक याचक को दान तथा सम्मान अनुभाव है। राजा के हाथ द्वारा दिये गये दान तथा विजय के द्वारा हर्ष एवं गर्व संचारी भावों के परिणाम स्वरूप दानवीर अनुभव जन्य है।

३- धर्मवीर

सुरथोत्सव के नायक राजा सुरथ ने अपने विरोधियों के साथ भी धर्म का व्यवहार किया। विरोधी होने के कारण शत्रुओं के साथ अन्याय नहीं किया है। इस सम्बन्ध में कवि का कथन है कि राजा सुरथ के वे विरोधी जिनके बाहुद्वय तलवार चलाने की कला में अत्यन्त उत्साही थे। वे शत्रु कतिपय भगाये गये, कतिपय बन्दी बनाये गये, कतिपय शन्त कर डाले गये, कुछ नत हो जाने के कारण दास बनाये गये और कतिपय विश्वविजयी व्यापार के अनन्तर पुनः राज्य पर बैठा दिये गये :—

बद्धाः केचन केचन प्रणमिता दासीकृताः केचन
क्षिप्ताः केचन केचन प्रशमिताश्चारोपिताः केचन।
भूपालाः करवललालनकलासोत्साहबाहुद्वयी—
दुःशीला अपि येन विश्वविजयव्यापारपारस्पृशा ॥
(सुरथोसव, १/९६)

उपर्युक्त उदाहरण में स्थायी भाव उत्साह है। आश्रय स्वयं राजा सुरथ है। राजा के शत्रु आलम्बन हैं। शत्रु के प्रति राजा का व्यवहार उद्दीपन है। राजा की गंभीरता अनुभाव तथा धर्मयुक्त मति, तर्क आदिक संचारी भावों के सहयोग से धर्मवीर रस उपस्थित हो रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४- दयावीर

सुरथोत्सव महाकाव्य में वीर रस के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसीलिये महाकाव्य का प्रधान रस वीर है। वीर रस के प्रभेदों में से दयावीर का स्थान प्रमुख है। कवि सोमेश्वरदेव ने एक वर्णन में दयावीर का बहुत ही मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है। 'राजा सुरथ की वर्णनातीत विदग्धता इसलिये वन्दनीय है, क्योंकि विष्णु के चार हाथों ने जिस कार्य को किया उसे राजा सुरथ ने दो हाथों से ही कर डाला। भगवान् विष्णु के विरोधी दैत्यों की अपेक्षा इनके वध्य शत्रु इसलिये अधिक बुद्धिमान् निकले क्योंकि सुरथ को युद्धोद्यत देखकर उन लोगों ने अपना परित्राण मुँह में तिनका रख कर प्राप्त किया जो कि सर्वस्व देकर भी संभव नहीं था :-

वन्द्या कापि विदग्धतास्य नृपतेर्यस्मादसौ तद्भुज -

द्वन्द्वेनैव चकार यत्किल हरिश्चक्रे चतुर्भिर्भुजैः ।

तद्वध्याः सुधियस्ततोऽपि यदमी युद्धोद्यतेऽत्र व्यधुः

सर्वस्वैरपि दुष्करं निजपरित्राणां तृणैर्वक्त्रगैः ॥

(सुरथोत्सव, १/९५)

यहाँ पर उत्साह स्थायी भाव है। राजा सुरथ आश्रय हैं। अपने मुँह में तिनके रख कर आत्मरक्षा करने वाले शत्रु, जो कि दयनीय परिस्थिति के प्राणी हैं, आलम्बन विभाव है। शत्रुओं को पीड़ा पहुँचा कर विजय प्राप्त करना उद्दीपन है। परन्तु शत्रुओं द्वारा मुँह में तिनका लेने पर दयार्द्र होना अनुभाव है। हार मान लेने पर राजा को हर्ष की प्राप्ति होती है। हर्ष संचारी भाव है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से यहाँ पर दयावीर प्रस्फुटित हो रहा है।

भयानक रस

संस्कृत महाकाव्यों में भयानक रस गौण रूप से प्राप्त होता है। वास्तव में भयङ्कर दृश्य को देखने अथवा बलवान् व्यक्तियों के अपराध करने से भयानक रस उत्पन्न होता है। भरत के अनुसार भयानक रस भयस्थायी भावात्मक होता है। इसकी उत्पत्ति विकृत ध्वनि, सत्व दर्शन अर्थात् भूतप्रेतादि को देखने से,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरों के भय, उद्वेग, शून्य गृह एवं वन में जाने से अथवा अपने सम्बन्धियों के वध-बन्धन के देखने, श्रवण करने या चर्चा करने से होती है।

कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्यों में भी यत्र-तत्र भयानक रस के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कवि सुरथोत्सव के नवम सर्ग में शुम्भ की सेना का प्रयाण वर्णित करते हुये कहते हैं कि 'चञ्चल तुरग-मण्डली के अभिघात से उड़ने वाली रेणुओं के कारण ऊपर भूमण्डप सा दिखाई देने लगा है। धूल के कारण सूर्य की किरणों से असम्पृक्त सेना को पर्वत-स्थित जन मणियुक्त सर्पों से युक्त भयानक बलिनिवास-स्थान अर्थात् पाताल के समान देख रहे हैं।

स्फुरत्तुरगमण्डलीखुरमुखाभिघातोत्छल –
त्परागपटलच्छलादुपरिभूतभूमण्डपम् ।
बलं बलिनिवासवत्समणिनागरौद्रं रवि–
त्विषामविषयं जनो ददृशिवान्नगेन्द्रस्थितः ॥
(सुरथोत्सव, ९/९२)

यहाँ पर शुम्भ की सेना को देखकर पर्वत स्थिति जन भयभीत हो रहे हैं। वे उस सेना को सर्पों से युक्त पाताल के समान मान रहे हैं। निःसन्देह भयानक रस का यह रोचक उदाहरण है।

इसी प्रकार कवि सुरथोत्सव के दशम सर्ग में भी वर्णन करता है कि भवानी तथा शुम्भ के बीच होने वाले युद्ध में बाणों के द्वारा बाण ही कटे, वीरों के द्वारा वीर नहीं। युद्धस्थल में कम्प केवल पताका में ही नहीं था, किन्तु सैनिकों के मन में भी कम्प उत्पन्न हो गया था :—

मार्गणैर्मार्गणा एव भग्ना न तु भटैर्भटाः ।
पताकास्वेव नो तेषामाकम्पो मानसेष्वभूः ॥
(सुरथोत्सव, १०/५९)

यहाँ युद्धस्थल का दृश्य वर्णित है। सैनिकों के मन में कम्प होने से भय स्थायी भाव है। देवी दुर्गा तथा उनके सैनिक आलम्बन है और इन्हीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का विकराल वेष तथा बाणों का चलना उद्दीपन है। शुम्भ के सैनिकों के मनमें कम्प का होना अनुभाव है। विषाद, चिन्ता, स्मृति आदि संचारी भाव है। उन सभी के संयोग से भयानक रस व्यञ्जित हो रहा है।

वीभत्स रस

वीभत्स रस शृङ्गार, करुण आदि की भांति अत्यधिक आह्लादकारी न होने के कारण कवियों का विशेष प्रिय नहीं रहा है। महाकाव्यों में उसका वर्णन स्फुट रूप से प्राप्त होता है। कवि के महाकाव्यों में भी वीभत्स रस अनेक स्थलों में दृष्टिगोचर होता हैं। कीर्तिकौमुदी का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें वीभत्स रस अपनी प्रारम्भिक अवस्था में विद्यमान है —'वीर रस के उद्‌गम से जिनके रोंगटे खड़े हैं और हर्षाश्रु बहाने वाले सूतों के द्वारा जिनका बाहु-वैभव वर्णित हो रहा है, ऐसे मन्त्री वस्तुपाल उस रणभूमि को देख कर वहाँ से लौट पड़े। जहाँ कटे हुये सैनिकों के मांसों पर लोभ के कारण गिद्ध मंडरा रहे हैं :—

संवीक्ष्य वीर रसरोपितरोमराजि-
राजिक्षितिं क्षतभटामिषगर्द्धिगृद्ध्राम्।
मन्त्री न्यवर्तत ततः प्रमदाश्रुपूतैः,
सूतैः पुरः प्रतिपदोदितदोर्विभूतिः॥
(कीर्तिकौमुदी, ५/६६)

उपर्युक्त श्लोक में कटे हुये सैनिकों के मांसों पर लोभ के कारण गिद्ध मंडराने की बात कह कर वीभत्स रस की उपस्थिति की गई है।

वीभत्स रस का एक उत्कृष्ट उदाहरण सुरथोत्सव में उपलब्ध है। महाकाव्य के दशम सर्ग में पर्वतों और शुम्भ के घोर संग्राम का वर्णन प्राप्त होता है। अनेक जीवों का संहार किया गया है। कवि कह रहा है कि-'युद्धस्थल में मरे हुये घोड़ों के मुखाग्र को शृगाल खा रहे हैं। मरे हुये बड़े-बड़े हाथियों के मांसों को कौये नोच नोचकर चञ्चलता दिखला रहे हैं। मरे हुये सैनिकों के लिङ्गों को झींगुर लुप्त कर रहे हैं। बैताल अतड़ियों की माला को पहन कर नाच रहे हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फेरुण्डैर्दशनविनाशिताश्चतुण्डैः काकोलैर्दलितमहेभमांसलोलैः ।
झोटिङ्गैर्घटितकटोपलिङ्गवेतालैरपि मुमुदेऽत्र सान्त्रमालैः ।।

(सुरथोत्सव, १०/११५)

यहाँ पर आश्रय, पाठक अथवा कवि के हृदय में विद्यमान जुगुप्सा स्थायी भाव है। आलम्बन युद्धस्थल है, जहाँ अनेक जीव मरे पड़े हैं। शृगाल तथा काक आदि का अंगो का खींचना एवं चीरना उद्दीपन है। आक्षेप से रोमांच एवं दृष्टि संकोच को अनुभाव माना जा सकता है। ग्लानि एवं जड़ता संचारी भाव हैं। इन सभी विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी के संयोग से वीभत्स रस की सृष्टि हो रही है।

अद्भुत रस

संस्कृत महाकाव्यों में अद्भुत रस भी गौण रूप में प्राप्त होता है। कवि सोमेश्वरदेव के महाकाव्य भी इस रस से अछूते नहीं हैं। कवि का एक स्थल देखने योग्य है, जिसमें यहां पर कवि ने एक नवीन कल्पना के द्वारा अद्भुत रस प्रवाहित किया है – 'ऋतु वर्णन परक सुरथोत्सव के पंचम सर्ग में कवि कहता है कि दिशाओं में व्याप्त नील पर्वत, आकाश मण्डल में व्याप्त नील मेघ और भूमण्डल पर व्याप्त नील अंकुरों के बीच अपने को देखने वाला व्यक्ति, विशाल नीलकमलमय पिंजड़े के अन्तर्गत अनुभव करता हुआ विस्मित हो उठा :–

नगैर्दिगन्ते जलदैर्नभस्तले नवाङ्कुरैर्भूवलये च मेचके ।
विशालनीलोपलपञ्जरोदरस्थितं जनः स्वं मनुतेस्म विस्मितः ।।

(सुरथोत्सव, ५/२५)

सुरथोत्सव महाकाव्य का ही एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। लोक में प्रकाश रहने के अनन्तर अचानक ही अन्धकार चारों ओर छा जाता है। इस सम्बन्ध में कवि का कथन है कि 'क्रुद्ध शूकरों के झुण्ड के समान अन्धकार क्या पर्वतों की कन्दराओं से निकल आया है ? या वृक्षों के कोटरों से निकल आया है ? या पाताल लोक से निकल पड़ा है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किं महीधरमहागुहागृहाद्भूरुहां किमुत कोटरोदरात् ।
उज्जगाम जगतीतलादथ ऋद्धकोलकुलकश्मलं तमः ।।

(सुरथोत्सव, ६/२५)

उपर्युक्त वर्णन में अचानक ही अन्धकार के आने से आश्चर्य उत्पन्न होता है। आश्रय का स्थायी भाव विस्मय है। आलम्बन विभाव अन्धकार है। पर्वत-गुफा, वृक्ष, पाताल आदि उद्दीपन विभाव हैं। संभ्रम अनुभाव कहा जा सकता है। वितर्क संचारी भाव है। इन सभी के संयोग से यहाँ पर अद्भुत रस की सृष्टि हो रही है।

सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी दोनों ही महाकाव्यों में यत्र - तत्र ही ऐसे श्लोक प्राप्त होते है, जिनमें अद्भुत रस व्यञ्जित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि सोमेश्वरदेव ने शृङ्गार, करुण, वीर भयानक, वीभत्स, अद्भुत आदि रसों को अपने महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। शेष अन्य रस यत्र-तत्र ही प्राप्त होते हैं। कतिपय स्थलों में परस्पर रस विरोध भी देखा गया है। रस सम्बन्धी कतिपय वर्णन आचर्य आनन्दवर्धन की मान्यता के अनुसार ही प्रस्तुत किये गये हैं, किन्तु अधिकांश वर्णन स्वतन्त्र रूप से उपस्थित किये गये हैं। इस स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता का कारण कवि-जन्य भावों की प्रधानता हुआ करती है।

संक्षेप में हम कह सकते कि कवि ने गौड़ी रीति में रचित सुरथोत्सव की भाषा में निहित भावों को अत्यधिक सुन्दरता से संजोया है। कवि के अपर महाकाव्य कीर्तिकौमुदी के अध्ययन से मानों कालिदास के रस ही पाठक के अन्तस्थल में बहने लगते हैं। निश्चय ही कवि ने गौड़ी तथा वैदर्भी नामक दोनों प्रकार की रीतियों में निहित रस सम्बन्धी मान्यताओं को आगे बढ़ाया है। कवि के महाकाव्यों में प्राप्त रस सम्बन्धी उत्कृष्ट स्थल इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कवि के कतिपय वर्णन महाकवि कालिदास, माघ तथा भारवि के अनन्तर रचे गये प्रमुख महाकाव्यों के वर्णनों से भी अधिक हृदय-रञ्जक कहे जा सकते हैं। यही कारण है कि तत्कालीन कवि मण्डल के सोमेश्वदेव प्रधान कवि थे, और संस्कृत महाकाव्यकारों में उन्होंने उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया।

———०———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक, ३/१४ ।
2. वही, ३/१२ ।
3. सुरथोत्सव, १/३७ से ४३ तक ।
4. त्रिविक्रमभट्ट-नलचम्पू, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६७ ई० ।
5. चमत्कारश्चित्तविस्ताररूपो विस्मयापरपर्याय: ।
   विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद तृतीय, पृष्ठ १०६
   रसे सारश्चमत्कार: सर्वत्राऽप्यनुभूयते ।
   तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राऽप्यद्भुतो रस: ।। वही, पृष्ठ १०६
6. श्रृङ्गार हास्यकरुणरौद्रवीरभयानका: ।
   वीभत्साद्भुत - संज्ञौचेत्यष्टौनाट्ये रसा स्मृत: ।।
   भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६/१५
7. धनञ्जय, दशरूपकम्, प्रकाश चतुर्थ, पृष्ठ २४८-२४९ ।
8. अभिनवगुप्त, अभिनव भारती, अध्याय ६, पृष्ठ ६४० ।
9. श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका: ।
   वीभत्साद्भूतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता: ।।
   निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।।
   मम्मट, काव्य प्रकाश, ४/२९, ४७
10. श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका:
    वीभत्साद्भुतशान्ता नव रसा: ।
    हेमचन्द्र, काव्यानुशासनम्, अध्याय द्वितीय, पृष्ठ ६७
11. श्रृङ्गार: करुण: शान्तो रौद्रो वीरोऽद्भुतस्तथा ।
    हास्यो भयानकश्चैव, वीभत्सश्चेति ते नव ।।
    रस गङ्गाधर, आनन प्रथम, पृष्ठ १५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

12. शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका: ।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसा: शान्तस्तथा मत: ।।
स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदु: ।
स्थायीवत्सलतास्नेह: पुत्राद्यालम्बनं मतम् ।।
साहित्य दर्पण, ३/१८२, २५१

13. मुख्यस्तु पंचधा शान्त: प्रीति: प्रेयांश्चवत्सल:,
मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमा: ।
हास्योऽद्भुतस्तथा वीर: करुणोरौद्रइत्यपि ।।
भयानक: सवीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ।
एवं भक्तिरसो भेदाद् द्वयोर्द्वादशधोच्यते ।।
रूपगोस्वामी, हरिभक्तिरसामृत सिन्धु, २/५/९६-९८

14. मधुसूदन सरस्वती, भक्तिरसायनम् २/३-२४ ।

15. Raghwan, V., Number of Rasas, Journal of Oriental Research, Madras, Vol. XI, year 1937, pp. 83, 102-104.

16. साहित्य दर्पण, ६/३१७

———०००———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्तम अध्याय

कवि की नाट्यकृति : उल्लाघराघव

काव्य दृश्य-श्रव्य रूप से द्विविध बताया गया है। श्रव्यकाव्य का कोई रंग मञ्च नहीं, वह अध्ययन कक्ष की वस्तु है, परन्तु दृश्य काव्य का लक्ष्य अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरञ्जन, उनमें रसोद्बोध उत्पन्न करना ही है। यही दृश्य काव्य रूपक कहलाता है। इसे 'रूपक' इसलिये कहा जाता है कि इसमें नट पर तत्तत् पात्र रामादि का आरोप कर लिया जाता है[1]। रूपक को नाट्य और रूप नाम से भी अभिहित करते हैं।

प्रमुख रूप से रूपक के दश भेद किये गये हैं किन्तु भरत मुनि तथा विश्वनाथ ने १८ उपरूपक स्वीकार किये हैं, परन्तु धनञ्जय ने उपरूपकों का वर्णन नहीं किया है। यह दूसरी बात है कि तृतीय प्रकाश में प्रसंगवश उपरूपक के एक प्रमुख भेद-नाटिका का विवेचन मिलता है। प्रकरणिका, भाणिका, हल्लीश, श्रीगदित, रासक आदि दूसरे उपरूपकों का वहाँ कोई संकेत नहीं। वस्तुतः इनमें से कई भेद रूपकों के ही अवान्तर रूप हैं और कुछ भेद ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध काव्य से न होकर प्रमुखतः संगीत-कला व नृत्य-कला से है। रूपकों के ये दश भेद-वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर किये जाते हैं[2]। किसी एक रूपक प्रकार की कथावस्तु, उसका नायक, नायक की प्रकृति तथा उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य प्रकारों से भिन्न करता है। इसी प्रकार इन दशों रूपकों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से प्रत्येक एक दूसरे से वस्तु, नेता, व रस की दृष्टि से भिन्न है । ये दश रूपक हैं :— नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग अङ्क, वीथी और प्रहसन ।

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।
(साहित्यदर्पण[१], ६/३)

दशरूपककार ने नाटक के तीन प्रमुख तत्व वस्तु, नेता, तथा रस माने हैं। रूपकों का पहला भेदक वस्तु है। इसे ही कथा, इतिवृत्त, कथावस्तु, आदि नाम से पुकारते हैं। वस्तु दो प्रकार की होती है, एक आधिकारिक तथा दूसरी प्रासङ्गिक। आधिकारिक कथावस्तु मूलवस्तु तथा प्रासङ्गिक कथावस्तु गौण होती है। **उल्लाघराघव** में रामचन्द्र की कथा आधिकारिक वस्तु है और जटायु तथा अङ्गद की कथा प्रासङ्गिक है।

पताका तथा प्रकरी नाम से प्रासंगिक कथा वस्तु के भी दो भेद किये गये हैं। जो कथा नाटक में बराबर चलती रहती है, सानुबन्ध होती है—उसे पताका कहते हैं। इस पताका कथावस्तु का नायक अलग होता है, जो आधिकारिक वस्तु के नायक का साथी होता है तथा उससे गुणों में कुछ ही न्यून होता है। इसे पताका नायक कहते हैं। **उल्लाघराघव** में सुग्रीव पताका नायक तथा उनकी कथा पताका है। जो कथा काव्य रूपक में कुछ ही काल तक चलकर रुक जाती है वह 'प्रकरी' नामक प्रासंगिक कथावस्तु होती है। उल्लाघराघव की 'मन्थरा' तथा 'जटायु' की कहानी 'प्रकरी' है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि पताका व प्रकरी आधिकारिक कथा के प्रवाह में ही योग देती है। सुग्रीव, जटायु व मन्थरा की कहानियाँ **उल्लाघराघव** की राम-कथा को आगे बढ़ाने में सहकारी सिद्ध होती हैं।

इस इतिवृत्त के मूल तथा प्रकृति के विषय में भी नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में संकेत दिया गया है। इतिवृत्त मूल की दृष्टि से तीन तरह का होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । १- प्रख्यात, २- उत्पाद्य, ३- मिश्र । प्रख्यात इतिवृत्त रामायण, महाभारत पुराण या वृहत्कथादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर होता है । इस प्रकार का इतिवृत्त प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध रहता है । उदाहरणार्थ भवभूति के **उत्तर-रामचरित**, मुरारि के **अनर्घराघव** तथा सोमेश्वरदेव के **उल्लाघराघव** की कथा 'रामायण' से ली गई है । नाटक के लिए यह परमावश्यक है कि उसका वृत्त प्रख्यात हो । सोमेश्वरदेव के **उल्लाघराघव** में प्रख्यात इतिवृत्त है । दशरूपककार ने इतिवृत्त के मूल के विषय में लिखते हुये कहा है :—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं रामायणादि च विभाव्य वृहत्कथांच ।
आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्याच्चित्रां कथामुचितचारुवचः प्रपञ्चैः ॥

(दशरूपक, १/६८)

प्रख्यात इतिवृत्त के निर्वाह में नाटककार को बहुत सावधान रहना पड़ता है । वह कथा के प्रख्यात इतिवृत्त में अपनी कल्पना के अनुसार वास्तविकता को नहीं बिगाड़ सकता है । यद्यपि अनौचित्य दोष को हटाने के लिए कथा के अंश में परिवर्तन किया जा सकता है । **महावीरचरित** में रामचन्द्र के धीरोदात्तत्व की रक्षा के लिए बालिबध की प्रसिद्ध घटना में परिवर्तन कर दिया गया है । प्रख्यात घटना है कि राम ने बालि का बध छल से किया था, परन्तु यह रस के अनुकूल नहीं पड़ता, अतः भवभूति ने यह कल्पना की है कि बालि स्वयं रामचन्द्र से लड़ने आया और मारा गया । **उल्लाघराघव** में सोमेश्वरदेव ने कहीं पर इतिवृत्त परिवर्तित नहीं किया है, परन्तु कतिपय नवीन पात्रों का वर्णन अवश्य हुआ है । **उल्लाघराघव** में **विष्कम्भकों** का प्रयोग बड़ी कुशलता से हुआ है । उनमें सभी आवश्यक घटनाओं की सूचना दे दी गई है ।

साहित्यदर्पणकार नाटक का **लक्षण** करते हुये कहते हैं "कि नाटक का वृत्त रामायणादि इतिहास में प्रसिद्ध होना चाहिए । जो कथा केवल कवि कल्पित है, इतिहास सिद्ध नहीं, वह नाटक नहीं हो सकती है । नाटक में विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए । सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखाई जाय और अनेक रसों से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसे पूर्ण होना चाहिए। इसमें ५ से लेकर १० तक अङ्क होते हैं। पुराणादि प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान्, कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। नाटक में शृङ्गार या वीर में से एक रस प्रधान रहता है–अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं। इनमें चार या पाँच पुरुष प्रधान कार्य के साधन में व्यावृत रहने चाहिए और गौ की पूँछ के अग्रभाग के समान इसकी रचना होनी चाहिए[४]।

उल्लाघराघव का इतिवृत्त

श्री सोमेश्वरदेव प्रणीत उल्लाघराघव रूपक के दश भेदों में से नाटक की कोटि में आता है क्योंकि उपर्युक्त सारे लक्षण उल्लाघराघव में घटित होते हैं। उल्लाघराघव का इतिवृत्त रामायण की कथा पर आधारित है। इसकी कथा कवि कल्पित नहीं अपितु इतिहास सिद्ध है। उल्लाघराघव नाटक का प्रारम्भ जनकपुर में राम-विवाह के अनन्तर होता है। नान्दी के अनन्तर जनक का पुरोहित शतानन्द कन्या-जन्य दुःख की सूचना देते हैं, क्योंकि सीता अब जनक से वियुक्त हो जायेगी:—

नवपरिणीता दुहिता गच्छन्ती पतिगृहाय बन्धूनाम् ।
परमार्थवेदिनामपि वैक्लव्यं विरचयत्येव ॥
(उल्लाघराघव, १/१०)

नाटक के उत्कृष्ट वर्णनों में से उपर्युक्त वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से भी इस वर्णन का महत्व है क्योंकि नाटक में सुख और दुःख की उत्पत्ति आवश्यक बतलायी गई है। संयोगवश उल्लाघराघव कन्याजन्य दुःख से ही प्रारम्भ होता है।

उल्लाघराघव नाटक जहाँ एक ओर मौलिक है वहीं दूसरी ओर पूर्ववर्ती रचनाओं से प्रभावित भी है। कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल से भी उल्लाघराघव प्रभावित है। जनक से विदा लेकर सीता अयोध्या आती हैं। उस समय की दुःखावस्था का वर्णन कालिदास के शाकुन्तलम्[५] के चतुर्थ अङ्क के समान ही उपर्युक्त श्लोक में सोमेश्वरदेव ने प्रस्तुत किया है। कवि सोमेश्वरदेव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अन्तस्थल में कण्व का अधोलिखित कथन अवश्य ही विराजमान था, जिससे प्रेरित होकर कवि ने उपर्युक्त वर्णन किया है। शकुन्तला के गमन के समय कण्व इस प्रकार विकल हो रहे हैं:—

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः ।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तल, ४/५)

उल्लाघराघव[६] में दुःखावस्था के अन्य मार्मिक चित्रण भी उपलब्ध होते हैं। राम के राज्याभिषेक के पूर्व कैकेयी राजा दशरथ से दो वरदान चाहती है, जिसमें एक वरदान था कि राम को १४ वर्ष के लिए वन भेज दिया जाय। सारा साकेत दुःख में निमग्न हो जाता है :—

मातर्मन्ये नगरि ! गरिमा रामभद्रेण सार्द्धं,
यातस्तेऽपि त्वयि यदधुना वीतगीतोत्सवायाम् ।
आकर्ण्यन्ते ककुभि ककुभि क्रन्दितान्यङ्गनानां,
आलोक्यन्ते पथि पथि तथा लोकशोकाश्रुपङ्काः ॥
(उल्लाघराघव, ३/३९)

उल्लाघराघव नाटक में दुःख के अतिरिक्त सुख का भी सुन्दर वर्णन हुआ है। यह नाटक सुखान्त ही है क्योंकि राम के राज्याभिषेक के अनन्तर इस नाटक का समापन होता है। राजतिलक हो जाने पर राम वशिष्ठ से कहते हैं:—

तीर्णः क्लेशार्णवः सोऽयं नावेव भवदाशिषा ।
स्वजनैः सङ्गतिश्चाभूदस्तु मे किमतः परम् ? ॥
(उल्लाघराघव ८/४२)

नाटक के प्रारम्भ में ही कन्यान्तःपुरपालक हरिदत्त से ज्ञात होता है कि किस चातुर्य के साथ राम ने क्रोधित परशुराम को शान्त किया। राजा जनक अपने जामाता राम की इस सफलता की सूचना अन्तःपुर में देते हैं, सभी लोग प्रसन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते हैं। द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में विष्कम्भक के द्वारा दो अनुचरों के वार्तालाप के आधार पर हम जानते हैं कि राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में निर्णय ले लिया है तथा इस पुनीत कार्य के लिए पुरोहित वशिष्ठ को बुलाया है। उल्लाघराघव नाटक के प्रख्यात इतिवृत्त की यह महत्वपूर्ण घटना है। इसके अनन्तर राम और सीता माली के साथ प्रमोद वन तथा प्रमोद तड़ाग में विहार करते हैं। इसी बीच में दशरथ प्रिय पुत्र राम को बुलाते हैं और कहते हैं कि वह राज्यभार को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे। इसके अनन्तर वैतालिक सन्ध्याकालीन वर्णन नेपथ्य से प्रस्तुत करता है :—

अर्थाम्भोभिर्वरुणनगरी वासिनां वासरेन्द्रे,
पादोष्माणं शमयति वियद्वित्मंखेदोपनीतम् ।
देशे देशे दिशि दिशि तमः कोल-काकोलकाय-
च्छायाचोर विहरति मुहुर्बन्धुरं बन्धुकीनाम् ॥

(उल्लाघराघव, २/५४)

कञ्चुकी राजा दशरथ से निवेदन करता है कि भरत की माँ कैकेयी ने आपको बुलाया है। कैकेयी के पास जाने से पूर्व दशरथ ने पुनः एक बार राम को राज्याभिषेक के लिए तैयार रहने की आज्ञा दी। तृतीय अङ्क में सेविका मन्थरा तथा सुबुद्धिका के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि कैकेयी राजा दशरथ से दो वरदानों को चाहती है जिन्हें दशरथ ने बहुत पहले देने के लिए कहा था। इसी बीच भ्रमण करते हुये राम राजभवन आते हैं, उन्हें देखकर दशरथ मूर्छित होते हैं। अन्ततोगत्वा साकेत निवासियों से विदाई लेकर राम वन को चले जाते हैं। चतुर्थ अङ्क में गन्धर्व कुमुदाङ्गद तथा उसके पुत्र कनकचूड का वार्तालाप प्राप्त होता है, उस वार्तालाप से ज्ञात होता है कि राजा दशरथ की मृत्यु हो चुकी है:—

तानेव स्तुमहे महेशमहितां प्रागेव याताः पुरीं,
यस्मादस्तमिते महात्मनि हहा! तस्मिन्नजस्याऽऽत्मजे ।
स्नात्वा दुस्तरशोकलोकनयनभ्रष्टैर्जलैर्विभ्रती,
शुभ्रं कीर्तिपटं प्रियेण रहिता भूरद्य दृष्टा न यैः ॥

(उल्लाघराघव, ४/४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रकूट पहुँचकर भरत राम से अयोध्या चलने के लिए निवेदन करते हैं:—

कैर्नाम न प्रमुदितं तदिदं विलोक्य,
वृत्तं तयोर्दशरथात्मजयोस्तदानीम् ?
पादौ विधृत्य च विधृत्य करौ च राज्य-
मेकः समर्पयति नाऽऽद्रियते द्वितीयः ॥
(उल्लाघराघव, ४/४२)

निशाचर विराध का बध करने के अनन्तर राम दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं। पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में ही एक विष्कम्भक है, जिससे श्रोतागण जानते हैं कि मारीच की सहायता से रावण सीता को चुराना चाहता है:—

किं वाचाल ! करोषि रे कलरवं पुंस्कोकिल ! त्वं मृषा ?,
कस्मान्मारुत! वासि वासितवपुस्त्वं मल्लिकाचम्पकैः ।
पुष्पौघं सहकार ! वारय नवं द्रागेव, सेवाक्षणो
युष्माकं भविता तदा जनकजायुक्तो यदा रावणः ॥
(उल्लाघराघव, ५/१२)

तदनन्तर रावण का प्रवेश होता है और वह सीता को बलात् रथ पर बैठा लेता है। मार्ग में जटायु रावण से युद्ध करता है। पंख कट जाने से अन्त में वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है। जटायु के द्वारा ही राम को बलात् सीता को ले जाने की सूचना मिलती है :—

कृत्वा तपोधनतनुं दशकन्धरेण,
साध्वी बलादपहृता रुदती स्नुषा मे ।
आक्रन्दितानि करुणानि निशम्य पातुं,
तामागतोऽहममुना निहतोऽस्मि निघ्नन् ॥
(उल्लाघराघव, ५/५९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जटायु राम से कहता है कि लङ्का पर विजय प्राप्त करने के लिए सुग्रीव आदि प्रमुख वानरों से मित्रता कीजिये। छठे अङ्क के प्रारम्भ में माल्यवान् तथा सारण राक्षस आपस में वार्तालाप करते हैं, जिससे दर्शकों को ज्ञात होता है कि राम ने कपीश बालि का बध कर दिया और हनुमान् ने लङ्का जला दी है। विभीषण ने रावण को परामर्श दिया कि वह सीता को वापस कर दे :—

लङ्केश ! त्रिदिवङ्गनाः समदनाः सन्त्येव ते सन्निधौ,
किं बध्नासि मनुष्ययोषिति रतिं त्वन्निस्पृहायामिह ?।
किञ्चैषा रुदती यदत्र नगरे प्राप्ता प्रवृत्तं ततः,
क्रव्यादप्रमदासु रोदनमिदं तन्मुच्यतां मैथिली ।।
(उल्लाघराघव, ६/५)

इस अङ्क में भी एक विष्कम्भक है जिससे ज्ञात होता है कि रावण अपने राजप्रासाद पर चढ़कर राम की सेना को देखता है और सुवेल पर्वत के शिखर पर पहुँच कर राम रावण की वाहिनी देखते हैं। सम्पूर्ण सप्तम अङ्क में मथुरा के अधिपति लवण के गुप्तचर एवं रावण के मित्र कार्पटिक का राक्षस वृकमुख से वार्तालाप प्राप्त होता है। इस वार्तालाप से ज्ञात होता है कि रावण मारा जा चुका है :—

पश्चात्पतत्सु विशिखाहतिभिः शिरस्सु,
दर्पोदयेन तु पदेषु पुरःसरत्सु ।
निर्व्याजविक्रमनमस्यतमस्य तस्य,
रामश्चकार निधनं प्रधनाभिरामः ।।
(उल्लाघराघव ७/२२)

सीता की शुद्धता अग्नि-परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुकी है :—

दिष्ट्या मुञ्चत पुष्पवृष्टिममरास्तारापथस्थायिनः !,
प्रीतिं पुष्यतु दिव्यदुन्दुभिरवस्तूर्णं च कर्णद्वये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्पाणामपि ताडनं न सहते मृद्वी यदीया तनु–
वैदेही दहनेऽपि साऽद्य निहिता शुद्धा न दग्धा यतः ।।
(उल्लाघराघव ७/२८)

विभीषण लङ्का के सिहाँसन पर आसीन कर दिये गये हैं । कार्पटिक कहता है कि मैं अब भी राम के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करूंगा । नेपथ्य में विभीषण की आवाज सुनाई पड़ती है । विभीषण राम से अयोध्या जाने के लिये पुष्पक विमान पर बैठने के लिए कहते हैं । अष्टम अङ्क में राम की अयोध्या के प्रति विमान यात्रा वर्णित है । राम सीता से कहते हैं :—

विमानं व्योमाग्रे व्रजति निजमाणिक्यनिकर–
प्रभापीतप्रद्योतनकरवरत्राभृतमिव ।
इहस्थाः पश्यामः सुमुखि ! नखलव्यानुडुगणान्,
गिरीन् मुष्टिग्राह्यान्, प्रसृतिपरिमेयांश्च जलधीन् ।।
(उल्लाघराघव ८/४)

कार्पटिक छद्मवेश में मुनि बनकर अयोध्या जाता है, जहाँ रावण-वध की सूचना अभी प्राप्त नहीं है । भरत युद्ध की तैयारी करते हैं और पुष्पक विमान आने पर वह उस पर बाण छोड़ना चाहते हैं परन्तु वशिष्ठ भरत को रोकते हैं, क्योंकि वशिष्ठ को अन्तर्चक्षुओं से यह सारी बातें मालूम थी । कार्पटिक का सारा षडयंत्र खुल गया । राम अपने परिवार के साथ प्रसन्नतापूर्वक मिलते हैं । अन्त में वशिष्ठ के मुख से भरत-वाक्य कहलाया गया है । उल्लाघराघव नाटक का यही इतिवृत्त है । नाटक में कथनोपकथन की अपेक्षा पद्य अधिक मात्रा मेंप्रयुक्त किये गये हैं । अतः नाटक की कथावस्तु को प्रस्तुत करते समय प्रायः पद्यों को उद्धृत किया गया है ।

उल्लाघराघव नाटक का महत्व

सोमेश्वरदेव का उल्लाघराघव नाटक पद्य तथा कथनोपकथन दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ! उल्लाघराघव की नाट्यशैली संस्कृत नाटकों के मध्य में उसको महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करा सकने में समर्थ है । कवि ने बाल्मीकि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामायण के सम्पूर्ण कथानक को बड़े ही कौशल के साथ अपने नाटक में समाहित किया है। किन्तु विस्तृत कथानक को अङ्कों में न्यायिक ढंग से संजोया है। अतः राजशेखर की बालरामायण के समान उल्लाघराघव में अमर्यादित विस्तार नहीं प्रदर्शित किया गया है। कवि के कतिपय गीतात्मक पद्य उत्कृष्ट काव्यकला के परिचायक हैं। परशुराम के समक्ष राम अपनी वीरता को सुनकर लज्जित होते हैं। उनकी यह लज्जा आदर्श विनय की सूचना देती हैं :—

भग्नं जीर्णं त्रिनयनधनुर्यन्मया दैवयोगाद्,
य: संसोढः शिशुरिति रणे रैणुकेयेन चाहम्।
लोकः प्रीत्या तदपि किल मे पौरुषं भाषमाणो,
वार्यः कार्या न खलु महतां गर्हणां निर्निमित्तम्॥
(उल्लाघराघव, २/८)

वशिष्ठ शिष्य जानूककर्ण्य, राम के साथ बैठे हुये दशरथ की तुलना एक प्ररोहयुक्त विशाल वट वृक्ष से करते हैं।

राजा राजत्यनेनायं सुतेनान्तिकवर्त्तिना।
प्ररोहेणाऽऽत्मतुल्येन वटवृक्ष इवोन्नतः॥ (२/४७)

महाराज दशरथ राम के वनवास सम्बन्धी विचार को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुये। राजा का दुःख कैसा ही मार्मिक है :—

मातः क्षिते! तपन तात! विभो नभस्वन्!,
सर्वं हि वित्थ तदिदं वदत प्रसह्य।
का दुर्दशेयमधुना मम वर्तते? य-
न्मूर्छाऽऽसु गच्छति न गच्छति जीवितव्यम्?॥ (३/१७)

राम के वनवास की सूचना पाकर अयोध्या की सम्पूर्ण जनता अत्यन्त दुःखी हुई। पिता माता तथा परिजन दुःखी हुए। आज्ञाकारी राम मर्यादा को निभाते हुए अयोध्या तथा साकेत-वासियों से विदाई लेते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भास्वद्गोत्रचरित्रचित्ररुचिर प्रासाद ! तुभ्यं नम-

स्त्वां वन्दे सुकृतानुरक्तजनतामेध्यामयोध्यापुरि !।

आपृच्छे पुरवासिनः ! सविनयं युष्मानिहाऽऽयुष्मति,

क्षमाभारं भरते समुद्धरति वः स्वस्त्यस्तु, गच्छाम्यहम् ।। (३/३४)

अन्य नाटककारों के समान ही कवि सोमेश्वर भी प्रकृति चित्रण से प्रभावित हुए हैं । सूर्य और चन्द्र प्रकृति के विविध क्रियाकलापों के नियामक ही है । चन्द्रोदय तथा सूर्योदय से कौन कवि आह्लादित नहीं हुआ है । कवि ने भी चन्द्रोदय का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है :—

ब्रह्माऽस्त्रं मन्मथस्य, त्रिभुवनवनितामानमीनावकृष्ट्यै

कैवर्तः, कैरवाणां प्रियसुहृदमृतस्रोतसां शैलराजः ।

पान्थस्त्रीणामपथ्यं, रथचरणचमूचक्रवालस्य कालः,

शृङ्गारस्योपकारः, किरति रतिमसावौषधीनामधीशः । (४/५३)

सीताहरण के पश्चात् राम अत्यन्त दुःखित हुए । सीता-वियोग राम के लिए असह्य था । राम विलाप करते हुये लक्ष्मण से वैदेही को खोजने के लिये कहते हैं :—

दृष्टिः स्पष्टं तटगतमपि प्रेक्षते नाश्रुमिश्रा,

दूराह्वाने न हि पटुरयं बाष्पकुण्ठश्च कण्ठः ।

पादद्वन्द्वं प्रचलितुमिदं न क्षमं मुह्यतो मे,

तद् वैदेहीं क्वचिदचिरयन् वत्स ! पश्य त्वमेव ।। (५/४३)

नायकराम

नाटक में नायिका, नायक के साथी, नायिका की सखियाँ आदि, प्रति नायक और उसके साथी सभी 'नेता' के अंग माने गये हैं । नाटकादि के इतिवृत्त का नायक वही बन सकता है, जिसमें विनीतत्वादि अनेक गुण विद्यमान हों :—

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।।
(दशरूपक, २/१तथा २)

अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीन वंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर तथा युवा अवस्था वाला होता है। वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है और शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।

उल्लाघराघव नाटक के नायक भगवान राम हैं । नायक के चार प्रकार धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत में से राम धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं। राम उच्च सूर्य वंश में उत्पन्न हुए हैं । वह निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर तथा स्थितप्रज्ञ हैं । उन्होंने जिस व्रत को धारण किया उसे अन्त तक निभाया है। राम के समान ही धीरोदात्त नायक नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। सूत्रधार स्वयं कहता है कि विष्णु के राम रूप का उल्लाघराघव नाटक में उदार चरित्र वर्णित है :—

'चरितमिदमुदारं रामरूपस्य विष्णोः । (१/७)

राम विनम्र हैं, उनकी विनम्रता के दर्शन उल्लाघराघव नाटक के प्रथम अङ्क में ही होते हैं। राम जनक से कहते हैं :—

(सविनयमञ्जलिं बद्ध्वा जनकं प्रति) अनुजानन्तु तत्रभवन्तोमामयोध्यागमनाय । पुनश्च- (सप्रश्रयम्)

वात्सल्यं तातपादानां मूलवर्गे निसर्गजम् ।
जने पुनरिहापत्यनिर्विशेषे विशेषतः ।। (१/१६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अयोध्या जाने से पूर्व राम अपनी मधुर वाणी तथा वाक्-चातुर्य से क्रोधित परशुराम को शांत करते हैं। नायक राम अपने उत्कृष्ट गुणों के कारण ही परशुराम को शान्त कर पाने में सुक्षम होते हैं। राम अपने भाइयो में सबसे बड़े थे। अत: साकेत का सिंहासन नियमत: राम को मिलना चाहिये परन्तु कैकेयी के षड्यन्त्र से ऐसा न हो पाया और सीता सहित राम को वन जाना पड़ा। पिता दशरथ की आज्ञा मान कर वह वन को चले गये। वन जाने से पूर्व राम दासी मन्थरा से कहते हैं।

रामः—(सहर्षं पत्रकं शिरसि कृत्वा मन्थरां प्रति) आर्ये !

किं याचते तातमुखेन माता, स्वमर्थमाज्ञाकृति तत्सुतेऽस्मिन् ?।

मूर्ध्ना मयाऽम्बावचनं गृहीतं, सा मे गुरुभ्योऽपि गरीयसी यत् ॥ (३/१५)

उल्लाघराघव के राम इतने सरल हैं कि कैकेयी और मन्थरा के द्वारा इतना बड़ा षड्यन्त्र किये जाने पर भी कहीं भी उन पर क्रोधित नहीं होते हैं और लक्ष्मण के द्वारा क्रोधित होने पर उन्हें बार-बार समझाते हैं। वास्तव में राम का त्याग अनुकरणीय है और उनका आदर्श उच्च है। चित्रकूट पहुँच कर भरत राम से वापस चलने के लिए आग्रह करते हैं परन्तु पिता की आज्ञा को ध्यान में रखते हुए वह वापस जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

उल्लाघराघव के राम विनम्र एवं उदार ही नहीं हैं, अपितु वह अन्यायियों से युद्ध भी करते हैं। छठे अङ्क में राम के सम्बन्ध में माल्यवान् का कथन उपयुक्त ही प्रतीत होता है :—

येनैकेन शिलीमुखेन समरव्यालः स वाली हतो,
यस्यैकेन पदातिनाऽपि कपिना लङ्का सशङ्का कृता।
देवेनापि निरस्तनाकपतिना साकं य एकः स्थितः,
सङ्ग्रामाय न माति मे विमृशतः स क्षत्रपुत्रो हृदि ॥ (६/१)

अन्याय और अत्याचार करने वाले राक्षसों को राम ने समाप्त कर भक्त विभीषण को लङ्का का राजा नियुक्त किया, ताकि प्रजा

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

को शान्ति मिले। साकेत में वह स्वयं राजगद्दी पर बैठते हैं और इस प्रकार चारों ओर शान्ति व्यवस्था स्थापित होती है ।

सीता

उल्लाघराघव नाटक की नायिका सीता हैं। उन्होंने अपने कार्य और व्यवहार के द्वारा उच्च आदर्शों की स्थापना की है । कठिन से कठिन समय आ जाने पर भी उन्होंनें अपने पति का साथ नही छोड़ा। पुरोहित शतानन्द तथा जनक के उपदेशों को उन्होंने अन्त तक निभाया है। नाटक के प्रारम्भ में ही विवाह के अनन्तर जनक के पुरोहित शतानन्द सीता को उपदेश तथा आशीर्वाद देते हुए कहते हैं —हे सीते ! अपने पिता के वंश के लिये तुम निर्मल बनों और अपने श्वशुर को प्रमोद प्रदान करो। अपने पति की प्राणप्रिया बनों तथा सतियों में प्रथम सती बनों :—

वत्से ! भव श्वशुरयोः प्रमदप्रदा त्वं,
तातान्वयस्य यशसे भव निर्मलस्य ।
प्राणप्रिया च भव भर्त्तुरनन्यजातेः ,
पुत्र प्रसूर्भव,भव प्रथमा सतीषु ॥(१/१८)

सीता ने जीवन-पर्यन्त इन उच्च आदर्शों का पालन किया और तभी सीता का चरित्र स्त्री-समाज के लिये अनुकरणीय है। सीता ने जीवन पर्यन्त उन नियमों का पालन किया, जिन्हें शतानन्द ने जनकपुर से गमन के पूर्व सीता को बतलाये थे :—

शुश्रूषा श्वशुरे, ननन्दृषु नतिः, श्वश्रूषु सेवाञ्जलिः ,
पत्यौ तत्परता, सनर्म च वचस्तन्मित्रवर्गे शुचौ ।
साङ्गत्यं कुलबालिकासु , विनयः पूज्ये, तनौ संवृति—
र्मार्गोऽयं मुनिपुङ्गवैर्मृगदृशां श्रेयःश्रिये दर्शितः ॥(१/२१)

शतानन्द के अतिरिक्त जनक भी सीता को समझाते हुये कहते हैं कि कुल स्त्रियाँ सम्पत्ति-विपत्ति, वन और भवन में पति का समान रूप से अनुसरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करतीं हैं :—

संपत्तौ वा विपत्तौ वा वने वा भवनेऽपि वा ।
भर्त्तारमनुवर्त्तन्ते निर्विकल्पाः कुलस्त्रियः ।। (१/२६)

सीता ने अपने जीवन में इन उपदेशों का अक्षरसः पालन किया । कठोर वन में भी वह राम के साथ गयी । दुर्योग से रावण सीता को चुरा ले गया । रावण से युद्ध करके राम ने सीता को पुनः प्राप्त किया । सीता की अग्नि परीक्षा होती है :—

दिष्ट्या मुञ्चत पुष्पवृष्टिममरास्तारापथस्थायिनः ! ,
प्रीतिं पुष्यतु दिव्यदुन्दुभिरवस्तूर्णं च कर्णद्वये ।
पुष्पाणामपि ताडनं न सहते मृद्वी यदीया तनु-
र्वैदेहीदहनेऽपि साऽद्य निहिता शुद्धा न दग्धा यतः ।। (७/२८)

सप्तम अङ्क से ही ज्ञात होता है कि सीता की शुद्धता अग्नि-परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुकी है । यही है सीता का उच्च चरित्र जो उल्लाघराघव नाटक में देदीप्यमान है ।

सीता के समान ही कौशल्या तथा सुमित्रा का चित्रण भी उच्चादर्शों से युक्त है। यह अवश्य है कि इनका वर्णन नाटक में संक्षेपतः हुआ है । मन्थरा तथा सुबुद्धिका राजा दशरथ के यहाँ दासियाँ हैं । कैकेयी को अनुचित परामर्श देने में इन्हीं का हाथ है । कैकेयी ने ही दशरथ से वरदान माँग कर राम को वन भेज दिया । नाटक में इन स्त्री पात्रों का चित्रण निम्न कोटि का हुआ है ।

लक्ष्मण

उल्लाघराघव नाटक में लक्ष्मण आज्ञापालक, कर्तव्यनिष्ठ, गम्भीर और कुछ तेजस्वी स्वभाव के चित्रित किये गये हैं । नाटक में लक्ष्मण का आगमन उस समय होता है जब कि उन्हें समाचार मिलता है कि राज्याभिषेक होने वाले राम का वनवास हो रहा है । क्रोधित लक्ष्मण धनुष पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाण चढ़ाकर प्रवेश करते है और कहते है कि किसमें सामर्थ्य है ? जो राम को वन भेज सके। राम ने लक्ष्मण को वहुत समझाया फिर भी लक्ष्मण राम से कहते हैं :—

विना दिनाधिनाथेन दृश्यते यदि वासरः।
रहितो रामभद्रेण वीक्ष्यतां लक्ष्मणोऽपि तत् ॥ (३/२५)

वनवास के सम्बन्ध में लक्ष्मण भरत को दोषी ठहराते हैं और युद्ध के लिये भी तैयार हो जाते हैं, परन्तु राम के द्वारा बार-बार तर्क प्रस्तुत किये जाने पर अन्त में लक्ष्मण कहते हैं :—

कुर्यादिदं न भरतोऽपि जनन्यसौ वा,
नैतद् विशुद्धिमति सम्भवति द्वयेऽस्मिन्।
तत् केन नाम कृतमीदृशमाः! किमन्यै-
र्धातैव निश्चितमचिन्त्यगतिश्चकार ॥ (३/३३)

राम के साथ लक्ष्मण भी वन को जाते हैं। चित्रकूट में भरत राम से मिलने के लिये आते हैं, परन्तु लक्ष्मण भरत से शंका ही करते हैं कि कोई भरत का षडयन्त्र तो नहीं है।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ से ही ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने रावण की बहिन सूर्पणखा के नाक और कान काट लिये हैं अतः रावण प्रतीकार के लिये उद्योग करता है। मारीच मृग बन कर राम को बहुत दूर ले जाता है और राम का बाण लगते ही वह लक्ष्मण को पुकारता है। सीता को लक्ष्मण नाम का ध्वनि सुनाई पड़ती है और वह लक्ष्मण को राम की सहायता के लिये भेजती है। राम के पास पहुँचते ही राम लक्ष्मण से कहते हैं कि आप सीता को अकेले ही छोड़ आये। लक्ष्मण राम से कहते हैं :—

भ्रातर्जातभयस्य लक्ष्मण ! मम त्राणं कुरु क्षिप्रमि-
त्युच्चैः कश्चिदुवाच वाचमथ तां श्रुत्वा त्वदुक्तिभ्रमात्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवी प्रेषयति त्वदन्तिकमहं नोत्सृज्य गच्छामि तां,

निश्चिक्ये तदसावसाधुमिव मामार्त्ता च मर्तुं स्थिता ।। (५/३५)

मृग को लेकर वापस आने पर कुटी में सीता नहीं प्राप्त होती हैं। राम और लक्ष्मण सीता को खोजने के लिये निकलते हैं। रावण से युद्ध के अनन्तर पुष्पक विमान पर बैठकर सभी लोग साकेत आते हैं और राम का राज्याभिषेक होता है।

रामकथापरक नाटक उल्लाघराघव से ज्ञात होता है कि राम को सबसे अधिक सहयोग देने वाले लक्ष्मण ही हैं। राम के विवाह से लेकर उनके सिंहासनारोहण तक निरन्तर लक्ष्मण राम के साथ रहते हैं। यह कहा जा सकता है कि राम की सफलता का श्रेय लक्ष्मण को मिलना चाहिये। इसके अतिरिक्त हनूमान् और अङ्गद से भी राम को विशेष सहायता मिली है। पक्षिराज जटायु की सहायता भी प्रशंसनीय है।

उल्लाघराघव के जनक, विश्वामित्र तथा दशरथ, सीता और राम के शुभ चिन्तक हैं। उनके सारे क्रियाकलाप राम के हित में है। सीता और राम के उच्चचरित को देदीप्यमान करने में इन तीनों वृद्धपात्रों का विशिष्ट योगदान है। उल्लाघराघव के सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्यपूर्ण और नीतिज्ञ हैं।

रावण

उल्लाघराघव नाटक में रावण प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक में प्रमुख विरोधी पात्र रावण ही है। नाटक के पञ्चम अङ्क से ज्ञात होता है कि रावण मारीच की सहायता से सीता को चुराना चाहता है क्योंकि रावण की बहिन सूर्पणखा के नाक और कान लक्ष्मण ने काट लिये हैं। रावण मारीच से सीता को छलने की बात करता है। मारीच बिचार करते हुए कहता है कि यह उचित नही है :—

महाग्निहोत्री द्रुहिणस्य पौत्रो, जिघृक्षतेऽन्यस्य कलत्रमेषः ।

तत्रापि वीरस्य रघूद्वहस्य, छलेन तत्रापि न विक्रमेण ।। (५/७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मारीच को लेकर रावण वन में पहुँच जाता है। प्रथमतः रावण सीता को देखकर विस्मित होता है :—

अकुङ्कुमविलेपनाऽप्यनुकरोति रुक्मं तनू—
रनञ्जनमपि प्रियं नयनयोर्द्वयं पक्ष्मलम् ।
अयावकरसोऽप्यसावरुणरोचिरेवाधरो,
धरादुहितुरङ्गकान्यकृतकां श्रयन्ति श्रियम् ।। (५/१४)

कतिपय क्षणों के अनन्तर सीता से रावण कहता है कि मैं तुम्हारा अतिथि हूँ। अतः सीता रावण के लिये फल लाती है। आश्रम से राम तथा लक्ष्मण मृग को मारने के लिये जा चुके हैं। रावण सीता से कहता है कि मैं तीनों लोक का स्वामी हूँ और आप मुझे फल प्रदान कर रहीं हैं। वह कहता है :—

मम विक्रमभीतभर्तृकाणां, नरदेवोरगदेवसुन्दरीणाम् ।
पतिजीवितभैक्षमिच्छतीनां, भवभद्रे ! भजनीयपादपद्मा ।। (५/२१)

इसके अनन्तर रावण सीता को बलात् रथ में बैठा लेता है। सीता विलाप कर रही हैं। सीता के विलाप को सुन कर जटायु रावण से युद्ध करने आ जाता है। रावण कहता है कि ऐ जरद् गृद्ध ! त्रैलोक विजयी मुझको नही जानते हो। ऐसा कौन है ? जो जगत् में रावण को नही जानता है :—

पराजित पुरन्दरं युधि विधूतधूमध्वजं,
नितान्तनिकृतान्तकं शमितपाशपाणिप्रभम् ।
प्रभञ्जनविभञ्जनं धनपतिप्रतिष्ठाहरं,
बराक ! दशकन्धरं जगति वेत्ति वीरं न कः ? ।।(५/२६)

जब जटायु निरन्तर रावण से युद्ध ही करता रहता है तो अन्त में क्रोधित रावण जटायु से कहता है कि जरा से तुम्हारा शरीर निर्बल हो चुका है, अतः तुम तीर्थं को जाने में असमर्थ हो। तुम मेरी खड्ग की धारा में ही अपने शरीर का मोक्ष चाहते हो :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जरापराभूततनोस्तवाद्य, गन्तुं न तीर्थान्तिरमस्ति शक्तिः ।

तदत्र पत्रिन्! मम खड्गधारातीर्थे त्वमाकाङ्क्षसि देहमोक्षम् ।। (५/२७)

रावण ने अपनी तलवार से जटायु के पंखों को काट डाला और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। सीता के चुराने के पहले कई लोगों ने रावण को समझाया कि सीता को चुराना उचित नहीं है परन्तु रावण नही माना। रावण के प्रतीकार की भावना पग-पग पर भाषित होती है। अपनी बहिन के अपमान को वह किसी तरह नहीं भूलता है। सीता को ले जाकर अशोक-बाटिका में रखता है। लङ्का पहुँचने पर भी रावण को कई लोगों ने समझाया कि तुम अनुचित कर रहे हो। स्वयं रावण की पत्नी मन्दोदरी ने रावण से बहुत कहा परन्तु रावण ने किसी की भी बात नहीं मानी। विभीषण ने भी रावण को समझाया :—

लङ्केश ! त्रिदिवाङ्गनाः समदनाः सन्त्येव ते सन्निधौ,

किं बध्नासि मनुष्ययोषिति रतिं त्वग्निस्पृहायामिह ?।

किञ्चैषा रुदती यदत्र नगरे प्राप्ता प्रवृत्तं ततः,

क्रव्यादप्रमदासु रोदनमिदं तन्मुच्यतां मैथिली ।। (६/५)

जब विभीषण की बात रावण ने नही मानी तो क्रोधित होकर वह राम की ओर चला गया। इसके अनन्तर दूत के रूप में अङ्गद रावण की सभा में जाता है। अङ्गद के पहुँचने पर रावण ने कहा मैं जानता हूँ कि राम कितने वीर हैं। उन्होंने बालि को छल से मारा है। समुद्र पर सेतु नल और नील ने बाँधा है :—

कुर्वाणः कपिना परेण कलहं वाली छलेनाऽऽहतो,

हेतुः सेतुविनिर्मितौ नलकरस्पर्शप्रभावोऽभवत् ।

तद्वीरोत्तमतानिमित्तमियता किं नाम रामस्य ? यत्,

तद्बन्धुर्गुरुगर्वगर्भितमिति स्थानस्थितो जल्पति ।। (६/१३)

रावण निर्भय है उसे किसी प्रकार का डर नहीं है। ससैन्य राम के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँचने पर भी वह युद्ध करने के लिये तैयार है। अन्ततोगत्वा राम और रावण का युद्ध होता है। रावण सपरिवार मारा जाता है और बिभीषण को लङ्का की की गद्दी पर आसीन किया जाता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उल्लाघराघव एक सफल नाटक है। राम प्रजापालक हैं और अपना सर्वस्व प्रजाहित के लिए बलिदान कर सकते हैं। नाटक की नायिका सीता व्यथायुक्त होने पर भी वह अपने लोकोत्तर तेज से नाटक के प्रत्येक क्षेत्र को आभासित कर रही है। कौसल्या विपत्ति की मारी हुई है। सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्यपूर्ण और नीतिज्ञ है। सोमेश्वरदेव की प्रतिभा की सशक्त तूलिका से ये सभी चित्र बड़े ही प्राणवान् चित्रित किए गये हैं। यह हो सकता है उनके ये चित्र बहुत उत्कृष्ट न हो, परन्तु इनमें जो गम्भीर प्रभावोत्पादन क्षमता है, वह किसी को मन्त्रमुग्ध किये बिना नहीं रह सकती है।

नाटकीय संवाद अधिकांशत: छोटे-छोटे और सहज बोध गम्य हैं। कभी कभी छोटे-छोटे वाक्य बड़े-बड़े अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। सोमेश्वरदेव के संवाद इस नाटक में न तो मालतीमाधव के समान दीर्घ समासयुक्त हैं और न ही महावीरचरित्र की भांति उनमें शब्दों का अकाण्ड ताण्डव तथा श्लिष्टत्व ही है। उल्लाघराघव में श्लोकों को विभक्त करके संवादोपयोगी रूप देने में सोमेश्वरदेव बहुत सफल हुए हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है। शुक कहता है:—

वारांनिधिं राक्षसराजधानीमक्षाभिधानं युधि यः कुमारम्।

(इत्यभिधाय तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति।)

रावणः— (तादृशं शुकमवलोक्य सविमर्शम्)

अतीयिवान् ज्वालितवान् जघन्वान्, सोऽयं हनूमानिति वाक्यशेषः ॥ (६/३७)

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी उल्लाघराघव बहुत ही महत्वपूर्ण है। अयोध्या में रहते हुए राम और सीता मालाधर के साथ प्रमोद वन तथा प्रमोद-तडाग में भ्रमण करते हैं अत: उनका मन प्राकृतिक सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाता है। लीलोद्यान देखकर राम हर्षित होते हैं :—

लीलोद्यानमिदं मुदे मम फलश्रेणीनमत्पादपं,

कूजत्कोकिलमस्खलन्मधुकरं माद्यन्मयूरं पुरः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्मध्ये प्रियबान्धवेन मधुना सार्द्धं, विधत्ते शिवा—
रुद्धैकार्द्धशरीरशङ्करतपश्चर्योपहासं स्मरः ।। (२/१५)

शरीर में पवन स्पर्श होते ही राम आनन्दित होते हैं: —

चूतैः कन्दर्पदूतैः, सरसकिशलयाह्लादिलोकैरशोकैः,
शालैः प्राप्तप्रवालैर्विहितमधुकरश्रेणिसङ्गैर्लवङ्गैः ।
गानैश्च श्लाघ्यमानैः परभृतवयसामत्र कान्ते वनान्ते,
वायुस्तापार्तिजायुः शिशिरयति हृतस्वेदनीरं शरीरम् ।।(२/१७)

इसी प्रकार सोमेश्वरदेव ने उल्लाघराघव नाटक में अनेक बार प्रकृति के विविधि रूपों को चित्रित किया है। उल्लाघराघव के नायक स्वयं राम राजप्रासाद की अपेक्षा वन में अधिक रहे हैं अतः स्वाभाविक रूप से कवि को प्राकृतिक वर्णन करना पड़ा है ।

रस

भारतीय नाट्यशास्त्र में रस विवेचन का विशेष स्थान है। दृश्य काव्य में 'रस' की स्थिति भरत के भी पहले से चली आ रही है। दृश्य काव्य के तीन भेदकों में एक 'रस' भी हैं। रस की व्यञ्जना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है। दृश्यकाव्य में नटी का यही उद्देश्य है कि उनके अभिनय के द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो। काव्य के पठन, श्रवण या दर्शन से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है, वही आनन्द 'रस' कहलाता है। रस की निष्पत्ति, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से होती है। भरत मुनि ने 'रस' की चर्वणा के साधनों के विषय में नाट्यशास्त्र में यही मत व्यक्त किया है — 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' भरत मुनि के इस सूत्र पर लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त तथा धनिक ने अपने-अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त किये हैं।

नाटकादि रूपकों में नाटकीय वृत्तियाँ, संगीत तथा नृत्य का भी प्रमुख स्थान है। दशरूपककार ने संगीत तथा नृत्य की विवेचना नहीं की हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में इन दोनों का क्रमशः वाचिक तथा आंगिक अभिनय के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्गत विवेचन किया गया है। दशरूपककार ने सात्विक अभिनय-रस का विवेचन किया है। संस्कृत में कई नाटकों में हम संगीत तथा नृत्य का विनियोग पाते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में आरम्भ में नटी का संगीत तथा षष्ठ अङ्क में हंसपदिका का गीत है। मालविकाग्निमित्र में मालविका का नृत्य है। दशरूपक में ही नही अपितु बाद के अलङ्कारशास्त्र के उन ग्रन्थों में भी जो नाट्यशास्त्र के रूपक सम्बन्धी विवेचन का प्रयोग करते हैं, संगीत व नृत्य का विवेचन इसलिये नहीं मिलता कि वे उन्हें संगीत शास्त्र के विषय समझने लगे थे[७]।

नाटकीय वृत्तियों को एक ओर नायक का व्यापार बताया गया है, दूसरी ओर रसों से भी उसका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। कैशकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती नामक चार वृत्तियाँ हैं। भारती, दशरूपककार के मतानुसार शाब्दिक वृत्ति है, उसका प्रयोग विशेषत: आमुख या प्रस्तावना में पाया जाता है। कैशकी वृत्ति का प्रयोग शृङ्गार रस के अनुकूल होता है। इसके नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ नामक चार अङ्ग होते हैं। सात्वती वृत्ति वीर, अद्भुत तथा भयानक के उपयुक्त होती हैं। इसका प्रयोग करुण तथा शृङ्गार में भी किया जा सकता है? आरभटी वृत्ति का प्रयोग भयानक, बीभत्स तथा रौद्र रसों में होता है।

उल्लाघराघव नाटक में रस योजना

उल्लाघराघव नाटक का प्रधान रस वीर है किन्तु शृङ्गार, करुण आदि रसों की भी मनोरम व्यञ्जना हुई है। नाटकों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौण रूप में रखने का विधान किया गया है। क्योंकि मानवीय जीवन एकरस न होकर बहुभाव समन्वित है। अत: नाटक में अनेक रसों की उपलब्धि स्वाभाविक ही समझ पड़ती है। यद्यपि नाटक का अङ्गीरस वीर है तथापि रसों का विवेचन क्रमानुसार किया जाता है।

शृङ्गार रस

नाट्यशास्त्रियों ने शृङ्गार को रसराज माना है अत: सर्व प्रथम इसी रस का विवेचन अपेक्षित है। विवाह के पश्चात् सीता का राम के साथ संयोग होता है और सीता-हरण के पश्चात् राम को वियोग भी सहना पड़ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। उल्लाघराघव नाटक की यह विशेषता है कि इस संयोग और वियोग में श्रृङ्गार की झलक नहीं दिखायी पड़ती है। इतना अवश्य है कि रावण सीता को देखकर आकृष्ट होता है। रावण कहता है कि सीता कृशाङ्गी, चन्द्रमुखी, मृगनयनी, उच्चस्तनवाली तथा मधुर अधर वाली हैं। वास्तव में विधि की विधान शक्ति अलौकिक है। सीता को लोगों के द्वारा कहते हुये जैसा मैंने सुना था, सौन्दर्य में वह वैसी ही हैं :—

तन्वीति चन्द्रवदनेति मृगेक्षणेति,
तुङ्गस्तनीति मधुराऽधरपल्लवेति ।
सीता श्रुताऽथ कथिताऽथ यथा तथेयं
स्यान्नाम तद् विधिरचिन्त्यविधान शक्तिः ॥ (५/८)

सीता का सौन्दर्य अद्वितीय है। उनकी मुख-गन्ध के प्रति आकृष्ट एक भ्रमर को देखकर राम सीता से कहते हैं कि हे कृशाङ्गि सीते ! तुम्हारे मुख-गन्ध का लोभी यह भ्रमर न तो अब मल्लिका पुष्प पर आनन्द प्राप्त करता है और न गुलाब के फूलों पर जाता है, कदम्ब और चम्पक पुष्पों को इसने बिलकुल छोड़ दिया है। न तो अब यह कमल पर घूमता है और न ही केतकी पर जाता है :—

मल्लीषु नोल्लसति, नाटति पाटलासु,
नीपान्यपास्यति, विमुञ्चति चम्पकानि ।
नाम्भोरुहे भ्रमति, केतकमेति नायं,
भृङ्गः कृशाङ्गि ! भवदाननगन्धलुब्धः ॥ (२/३४)

सीता अपने हाथों से भ्रमर का वारण करती हैं और राम से कहती हैं कि यह भ्रमर हमारा अनुसरण कर रहा है। भ्रमर की आसक्ति देख कर राम भ्रमर से कहते हैं :—

भ्रातश्चक्रे भ्रमर ! भवता किं तपः ? क्व प्रदेशे ?
के वा देवाः श्रुतिसुखकृता रञ्जिता गुञ्जितेन ?
यत् कान्तायाः प्रसभमसयस्ताड्यमानोऽपि लोला —
पद्मे नैवं स्पृशसि वदनामोदलोलं कपोलम् ॥ (२/३६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्राता भ्रमर! तुमने कहाँ पर और क्या तप किया? तथा तुमने अपने मधुर गुञ्जन से किन देवताओं को प्रसन्न किया, क्योंकि कान्ता के लीला कमल द्वारा विताडित होते हुए भी निर्भय भाव से हठात् मुख-गन्ध लोभ के कारण उनके कपोल का स्पर्श कर रहे हो।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन-चरित्र को चित्रित करने वाले उल्लाघराघव नाटक के शृङ्गार रस का यही संक्षिप्त परिचय है।

करुण रस

नाटककार भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरितम् में करुण रस को प्रथम स्थान प्रदान किया है। सोमेश्वरदेव ने भी उल्लाघराघव में करुण को द्वितीय स्थान प्रदान किया है। इस रस के द्वारा नाटक अधिक मर्मस्पर्शी प्रतीत होता है। धनञ्जय ने करुण रस की परिभाषा देते हुये कहा है कि इष्ट का नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति के कारण करुण रस की सृष्टि होती है :—

इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणो रसः।

यहाँ अनिष्ट की प्राप्ति का अर्थ यह नहीं है कि इष्ट वस्तु या व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाय अथवा केवल इष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही अनिष्ट हो अपितु उस व्यक्ति या वस्तु की हानि होने से भी करुण रस की उपस्थिति हो सकती है और उसके सम्बन्धी के स्वयं अनिष्ट ग्रस्त होने से भी। वास्तव में क्लेश, अर्थ हानि, राज्य अथवा देश परिभ्रंश के फलस्वरूप भी करुण का विधान हो सकता है।

उल्लाघराघव नाटक में भी करुण रस के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं। कैकेयी ने दशरथ से यह वरदान माँग लिया कि राम को चौदह वर्ष का बनवास हो। पिता की आज्ञा को स्वीकार कर राम वन को चले जाते हैं। राम के वन चले जाने पर सभी लोग बहुत दुःखी हुए। राजा दशरथ सर्वाधिक दुःखी हुए। राजा दशरथ दुःखी होकर आकाश की ओर हाथ जोड़ते हुए कहते हैं—' माता पृथ्वी ! पिता सूर्य ! एवं व्यापक वायुदेव ! आप लोग सब कुछ जानते हैं अतः आप लोग बतलायें कि यह मेरी कैसी दुर्दशा हो रही है ? क्योंकि बारम्बार मूर्च्छा आ जाती है, किन्तु जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं जाता हैं:—

मातः क्षिते! तपन तात ! विभो नमस्वन् !,
सर्वं हि वित्थ तदिदं वदत प्रसह्य ।
का दुर्दशेयमधुना मम वर्त्तते ? य—
न्मूर्च्छाऽऽशु गच्छति न गच्छति जीवितव्यम् ॥(३/१७)

राजा का क्लेश से युक्त यह विलाप बहुत ही हृदयद्रावक है । उपर्युक्त उदाहरण में करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति हो रही है ।

भरत के अनुसार करुण रस शोक स्थायी भाव से उत्पन्न होता है । इसकी उत्पत्ति शाप एवं क्लेश में पतित व्यक्ति के वियोग, धननाश, वध, बन्ध, देश- -निर्वासन, अग्नि में जलकर मरने, व्यसन में फसने आदि विभावों से होती है[८]।

उल्लाघराघव में क्लेश से सम्बन्धित वर्णन के अतिरिक्त शाप तथा प्रिय व्यक्ति केवियोग का भी सरस वर्णन प्राप्त होता है । राम के वियोग में राजा दशरथ बहुत दुःखी है । सुमन्त्र के द्वारा पुत्र कृत प्रणाम तथा पूर्वप्राप्त शाप के परिणाम काल को सोचते हुये राजा दशरथ ने एक बार हा राम ! यह उच्चारण किया । दीर्घ निश्वास लेते हुए इस प्रकार श्वास त्याग किया कि पुनः श्वास नहीं आयी अर्थात् राजा दशरथ की पुत्र- वियोग से मृत्यु हो गयी:—

श्रुत्वा सुमन्त्रवचनेन सुतप्रणामं,
शापस्य तस्य च विचिन्त्य विपाकवेलाम् ।
हा राघवेति सकृदुच्चरितं नृपेण
निःश्वस्य दीर्घतरमुच्छ्वसितं न भूयः ॥(४/५)

उपर्युक्त वर्णन में शोक स्थायी भाव है । बनवास प्राप्त राम इसके आलम्बन हैं । राम का प्रणाम तथा शाप के परिणाम पर विचार उद्दीपन है । हा राघव ! कहते हुए दशरथ का बिलाप अनुभाव है । मोह, विषाद आदि संचारी भाव है जिसके सहयोग से करुण रस व्यञ्जित हो रहा है । राजा दशरथ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निधन के अनन्तर नाटककार सोमेश्वर ने सीता-अपहरण के समय करुण रस का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। सीता को एकान्त में पाकर रावण उसे रथ पर बैठा कर लङ्का लिये जा रहा है। सीता के विलाप को सुनकर गृद्धराज जटायु कहता है- अहह ! क्रूरकर्मा रावण के द्वारा नीयमान जानकी उसी प्रकार करुण स्वरों मे रो रही है जिस प्रकार बाज पक्षी के द्वारा आर्त्तवटेर करुण स्वरों में रोती है:-

जटायु—(पुनः सीतां क्रन्दन्तीमवलोक्य सकरुणम्) अहह!
अनेन नीयमानाऽसौ जानकी क्रूरकर्मणा ।
श्येनेन वर्तिकेवाऽऽर्त्ता करुणैः क्रन्दति स्वरैः ॥ (५/२३)

उपमालङ्कार के द्वारा जटायु का यह कथन प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही वर्णन अत्यधिक हृदयद्रावक है। विलाप करती हुई सीता लङ्का चली जाती है। राम और लक्ष्मण सीता को न पाकर बहुत दुःखी हुए हैं। सीता के वियोग में राम बहुत विकल हैं। उनकी विकलता को देखकर लक्ष्मण कहते हैं :-

सीते !, न वक्ति किमियं ? क्व ननु प्रयासि ?,
मुञ्च क्रुधं, चरणयोरयमस्मि लग्नः ।
एवं वियोगविकलं प्रलपन्तमार्य —
मालोक्य रे हृदय! किं न विदीर्यसे त्वम् ?॥(५/५१)

अर्थात् हे सीते! हाय यह क्यों नहीं बोल रही है ? तुम कहाँ जा रही हो ? क्रोध त्याग करो, मैं तेरे चरणों पर गिर रहा हूँ। इस प्रकार विलाप करने वाले वियोग विकल बड़े भाई राम को देखकर रे हृदय ! तू क्यों नही विदीर्ण हो जाता है।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण है कि उल्लाघराघव नाटक में करुण रस का समुचित निर्वाह किया गया है।

वीर रस

नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नाटक में शृङ्गार अथवा वीर रस को अङ्गी रूप में प्रस्तुत करने का विधान किया गया है। उल्लाघराघव नाटक का प्रधान रस वीर है। वीर चार प्रकार के माने गये हैं :— दानवीर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मवीर, दयावीर, तथा युद्धवीर । उल्लाघराघव में युद्धवीरता का वर्णन विस्तार के साथ किया गयाहै। पात्रों के कथनोपकथन से भी युद्ध वर्णन की सूचना प्राप्त होती है। रावण के दरबार में पहुँचकर अङ्गद रावण से कहते हैं :—

प्रष्टव्योऽसि निशाचरेश्वर ! किमप्यन्याय्यमेतत् त्वया,
कुर्वाणेन किमात्मपूर्वं पुरुषः स्रष्टा न चित्ते धृतः ? ।
शौर्ये चौर्यकलङ्क एष निपतन् नालोकितः ? किञ्च किं,
देवोऽसौ खर-दूषण- त्रिशिरसां हन्ताऽथवा न श्रुतः ?॥ (६/१८)

अर्थात् हे निशाचरेश्वर ! मुझे आपसे पूछना यह है कि इस प्रकार अनुचित काम करने वाले आपने अपने पूर्व पुरुष ब्रह्मा को स्मरण नहीं किया ? इस बात को क्या आपने नहीं देखा कि शूरता के बीच यह चौर्य मेरे लिए महान कलङ्क होगा ? और क्या आपने खरदूषण और त्रिशरा को नष्ट करने वाले महाराज राम को नहीं सुना है ?

अङ्गद के द्वारा बहुत समझाये जाने पर भी रावण नहीं माना अतः वह कपिगणों को युद्ध के लिए तैयार करते हैं। अङ्गद कहते हैं कि हे श्रेष्ठ कपिगण! संधि- भंग के कारण लङ्का से निष्फल लौटने वाला मैं वालि पुत्र अङ्गद आप सभी स्वाभिमानियों से उन श्रीराम की आज्ञा कह रहा हूँ जिनके मुख- मण्डल की छाया युद्धाभिनिवेश के कारण विलकुल और तरह की हो गई है, आप लोग बड़े-बड़े पत्थर तथा गुरुतर बृक्षों को युद्धार्थ अपने-अपने हाथों में ले लो :—

युद्धावेशविशिष्यमाणवदनच्छायोदयस्याऽऽज्ञया,
श्रीरामस्य वदामि वः कपिवराः ! सर्वान् सगर्वानहम् ।
निःसन्धानविधिः समागमदसौ वालेः सुतस्तद् द्रुतं,
स्थूलाः शैलशिलास्तरूनपि गुरून् पाणौ कुरुध्वं युधे॥ (६/२३)

वीर रस के प्रथम उदाहरण में खरदूषण और त्रिशरा को मारने वाले राम की वीरता का वर्णन है । उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण में रावण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर आक्रमण करने की तैयारी का वर्णन है। दोनों ही उदाहरणों के द्वारा वीर रस प्रवाहित हो रहा है।

युद्ध के लिए आगे बढ़ने वाले वानरों को देखकर रावण का मन्त्री शुक कहता है — 'सुग्रीव के द्वारा आदिष्ट ये वानर, जो कि कल्पान्त काल मे सीमालंघन करने वाले समुद्र की कल्लोल माला के समान दिखाई पड़ रहे हैं और अपने किलकारियों से समग्र पृथ्वी को बधिर बना रहे हैं, अन्तरिक्ष में उछलते हुये अपने क्रोधरक्त मुखमण्डलो के द्वारा शत्रुओं को दिग्दाह की भ्रान्ति करा रहे है, वेग पूर्वक दौड़ रहे हैं :—

बूत्कारैर्बधिरां धरां विदधतः क्रोधारुणैराननै-
दिग्दाहभ्रममन्तरिक्षगतयः क्षिप्रं दिशन्तो द्विषाम् ।
कल्पान्तोद्धतवारिवारिधिचलत्कल्लोललीलाभृतः,
सुग्रीवेण समीरितः सरभसं धावन्त्यमी वानराः ।। (६/४९)

प्रस्तुत उदाहरण में उत्साह स्थायीभाव है। रावण तथा उनकी सेना आलम्बन है। वानरों की किलकारी तथा युद्ध जनित कोलाहल उद्दीपन है। वानरों का उछलना, मुख मण्डल लाल होना आदि अनुभाव है। गर्व, रोमांच आदि सचारीभावों के सहयोग से वीर रस व्यक्त हो रहा है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी विभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से वीर रस व्यञ्जित हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सोमेश्वरदेव ने शृङ्गार, करुण, वीर आदि प्रमुख रसों को अपने महाकाव्यों के समान ही उल्लाघराघ नाटक में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है, शेष अन्य रस यत्र तत्र ही प्राप्त होते हैं। उल्लाघराघव में प्रत्येक रस की योजना विषयानुसार ही हुई है और इसमें कवि को सफलता मिली है। सरस भावों से युक्त नाटक की सरल भाषा निःसन्देह उत्कृष्ट है। उल्लाघराघव नाटक की रस योजना राम परक नाटकों के मध्य महत्वपूर्ण है।

राम परक नाटकों में उल्लाघराघव

संस्कृत साहित्य में सैकड़ो नाटकों की रचना नाटककारों द्वारा की गई है, जिनमें कुछ ही नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कहे जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते हैं। इन उत्कृष्ट नाटकों के रचयिता भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त हर्ष, तथा भवभूति प्रभृति नाटककार हैं। कालान्तर के नाटककारों ने प्रायः इन्हीं नाटककारों को आधार मानकर नाटकों की रचना की है और नाट्य-रचना की स्वस्थ परम्परा को जीवित रखा है। संस्कृत नाटक एवं साहित्य के सृजनात्मक प्रवृत्ति का जब कि मध्यकालीन युग में ह्रास हो रहा था तथापि तत्सम्बन्धी विद्वता की परम्परा उत्साहपूर्वक कायम की गई। इस प्रकार नाटकों का अभिनय एवं प्रणयन राजदरबार तथा समाज के धनाढ्य व्यक्तियों के संरक्षण में होता रहा है। गुजरात में भी चालुक्य राज्यकाल में अनेक नाटकों का अभिनय तथा प्रणयन किया गया। यही नहीं, हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन के आठवें परिच्छेद में नाट्य-सिद्धान्त पर विस्तृत विवेचन भी किया है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने जो स्वयं नाटककार थे, नाट्य-सिद्धान्त पर नाट्य-दर्पण नामक अमूल्य-ग्रन्थ की रचना की। वस्तुपाल के समय में भी यह परम्परा कायम रही और हम जानते हैं कि वस्तुपाल के साहित्यिक मण्डल में ५ नाटकों की रचना हुई है जिनमें नरेन्द्र प्रभसूरि का काकुत्सकेलि नामक नाटक अब प्राप्त नहीं है। शेष चार नाटक इस प्रकार हैं:— सोमेश्वर का उल्लाघराघव, सुभट का छाया नाटक दूताङ्गद बालचन्द्र का करुणावज्रायुध तथा जयसिंह सूरि का हमीरमदमर्दन।

राम परक नाटकों की परम्परा अति प्राचीन है। नवीं शती के पूर्व ही सात अङ्कों में नाटककार मुरारि ने अनर्घराघव नाटक की रचना की थी। अनर्घराघव के समान ही सोमेश्वरदेव ने भी उल्लाघराघव नामक नाटक की रचना की है। इस प्रकार राम परक नाटकों की एक बहुत बड़ी संख्या है जिनके अन्त में राघव शब्द प्रयुक्त होता है और इन सबका एक दूसरे से कुछ न कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। नाटककार मायुराज के नाटक उदात्तराघव के सम्बन्ध में हम अभी अन्धकार में ही हैं[८]। इन दोनों नाटकों में से एक दूसरे से कौन प्रभावित था, इस सम्बन्ध में भी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। पौर्वापर्य के विषय में भी कोई निश्चित निर्णय नही लिया जा सका है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुरारि के अनर्घराघव से प्रेरित होकर जयदेव[१०] (१२००ई०) ने प्रसन्नराघव नामक नाटक की रचना की, जो कि सात अङ्कों में राम परक नाटक है। बारहवीं शताब्दी में मुरारि की रचना अत्यन्त प्रसिद्ध थी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्योंकि पद्यावलियों में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है तथा नाटक पर अनेक टीकायें भी लिखी गई हैं[११]। अनर्घराघव नाटक मध्यकालीन गुजरात में उत्साह के साथ पढ़ा जाता था तथा वस्तुपाल के समसामयिक नरचन्द्र एवं उनके गुरु देवप्रभ[१२] ने इस नाटक पर सुन्दर टीकायें लिखी। जिन हर्ष द्वारा पन्द्रहवीं शताब्दी में अनर्घराघव पर एक तृतीय टीका लिखी गई[१३]। इसमें कोई आश्चर्य नही यदि कवि सोमेश्वर इस नाटक से प्रभावित हुये हैं।

उल्लाघराघव की मौलिकता तथा उस पर प्रभाव

उल्लाघराघव का सम्पूर्ण चतुर्थ अङ्क कनकचूड़ तथा कुमुदाङ्गद नामक गंधर्वों के वार्तालाप से युक्त है। ठीक इसी प्रकार का कथनोपकथन अनर्घराघव के षष्ठ अङ्क के अन्तिम भाग में 'रतनचूड' तथा 'हेमागंद' नामक गन्धर्वों के बीच में होता है। इन दोनों नाटकों में एक ही प्रकार के कथनोपकथन, एक ही प्रकार के प्रयोजन की सिद्धि कराता है। इन दोनों नाटकों का यह कथनोपकथन श्रोताओं को घटित घटनाओं की सूचना प्रदान करता है। दोनों नाटकों के षष्ठ अङ्क में मालयवान, शुक तथा सारण का कथनोपकथन समान स्थलों में एक जैसा ही प्राप्त होता है। उल्लाघराघव के अष्टम सर्ग के २९ तथा ३० श्लोक अनर्घराघव के सप्तम सर्ग के ९७ तथा ९८ श्लोक के क्रमशः अनुकरणमात्र प्रतीत होते हैं[१४]।

ऐसा प्रतीत होता है कि उल्लाघराघव के अष्टम सर्ग की प्रेरणा अनर्घराघव के सप्तम अङ्क से मिली होगी। अष्टम सर्ग के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि कवि रघुवंश के तेरहवें सर्ग से प्रभावित है, क्योंकि दोनों वर्णनों में ही राम की अयोध्या के प्रतिवापसी का चित्रण है। इसके अतिरिक्त यह अङ्क राजशेखर (९००ई०) रचित बालरामायण के दशम अङ्क से प्रभावित मालूम होता है।

उल्लाघराघव नाटक जहाँ एक ओर मौलिक है वहीं दूसरी ओर पूर्ववर्ती रचनाओं से प्रभावित भी है। कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल से भी उल्लाघराघव प्रभावित है। जनक से विदा लेकर सीता अयोध्या आती हैं। उस समय जनक की दुःखावस्था का वर्णन कालिदास के शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क के समान ही सोमेश्वरदेव ने प्रस्तुत किया है :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नवपरणीता दुहिता गच्छन्ती पतिगृहाय बन्धूनाम् ।
परमार्थवेदिनामपि वैक्लव्यं विरचयत्येव ।। (१/१०)

कवि के अन्तस्थल में कण्व का अधोलिखित कथन अवश्य ही विराजमान था जिससे प्रेरित होकर कवि ने उपर्युक्त वर्णन किया है। शकुन्तला के गमन के समय कण्व इस प्रकार विकल हो रहे हैं :—

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः ।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।। (४/५)

अयोध्या को जाने वाली सीता को उल्लाघराघव में शतानन्द ने इस प्रकार उपदेश दिया है :—

शुश्रूषा श्वशुरे ननान्दृषु नतिः श्वश्रूष्वसेवाञ्जलिः ,
पत्यौ तत्परता सुनर्म च वचस्तन्मित्रवर्गे शुचौ।
साङ्गत्यं कुलबालिकासु विनयः पूज्ये तनौ संवृत्ति–
र्मार्गोऽयं मुनिपुङ्गवैर्मृगदृशां श्रेयःश्रिये दर्शितः ।। (१/२१)

उपर्युक्त पद्य का आधार अभिज्ञानशाकुन्तल का निम्न श्लोक है जिसके द्वारा ऋषि- कण्व शकुन्तला को पतिगृह गमन के समय उपदेश देते हैं कि तुम्हें अपने पतिगृह में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए :—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।। (४/१७)

उल्लाघराघव के द्वितीय अङ्क में एक भ्रमर सीता के मुख-गन्ध से आकृष्ट होकर सीता का अनुसरण करता है। भ्रमर-वारण के लिए सीता राम से निवेदन करती है अतः राम भ्रमर को सम्बोधित करते हुये कह रहे हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रातश्चक्रे भ्रमर ! भवतः किं तपः ? क्व प्रदेशे ?,
के वा देवाः श्रुतिसुखकृता रञ्जिता गुञ्जितेन ? ।
यत् कान्तायाः प्रसभमभयस्ताड्यमानोऽपि लीला–
पद्मेनैवं स्पृशसि वदनामोदलोलं कपोलम् ॥ (२/३६)

उपर्युक्त श्लोक भी अभिज्ञानशाकुन्तल से प्रभावित है। अभिज्ञान-शाकुन्तल का अधोलिखित श्लोक समान विषय को ही प्रतिपादित कर रहा है:–

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्वान्वेषान्मधुकर ! हतास्त्वं खलु कृती ॥ (१/२०)

इसी प्रकार उल्लाघराघव का अधोलिखित छन्द भी द्रष्टव्य है:—

सरस्वत्यां स्नानं, शिरसि हरिशेषाः सुमनसः,
प्रसन्ना हृद्वृत्तिः, शतपथकथावर्णनरसः ।
मुनीनामाराध्या परिषदरिषड्वर्गजयिनी,
विना पुण्यैरेषा न भवति मनीषा तनुभृताम् ॥ (२/४६)

उल्लाघराघव के उपर्युक्त श्लोक पर भवभूतिरचित उत्तररामचरित के अधोलिखित श्लोक की स्पष्ट छाप है:—

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः,
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (२/२)

कवि की अधोलिखित पंक्तियाँ अनायास ही भर्तृहरि का स्मरण करादेती हैं:—

सौधं तदेव, नगरं च तदेव,वस्तु जातं तदेव च, तदेवदिनस्वरूपम् ।
सीताप्रवासविरसीकृतचित्तवृत्तेरन्यादृशं तदखिलं प्रतिभाति मेऽद्य ॥
(उल्लाघराघव, १/२७)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उल्लाघराघव का उपर्युक्त पद्य भर्तृहरि रचित नीतिशतर के अधो-लिखित सुभाषित से प्रभावित है :–

तानीन्द्रियाणि सकलानि मनस्तदेव सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एवह्यन्यः क्षणेनभवतीति विचित्रमेतत् ।४०।

प्रणयन तथा अभिनय दोनों दृष्टियों से संस्कृत नाटकों का सम्बन्ध राज दरबारों से रहा है। श्रोता-समुदाय में यद्यपि सामान्य व्यक्ति भी रहते थे तथापि नाटकों का मूल्यांकन काव्यतत्ववेत्ता ही करते थे। वे नाटकों में काव्य के समान ही गुण-दोष का विवेचन करते थे। परिणमत: नाटककार नाटक में पद्यों की उत्कृष्टता एवं प्रचुरता पर अधिक ध्यान देते थे। इस प्रकार प्राय: नाटकों में पात्रों के कथनोपकथन एवं अभिनय उपेक्षित ही रहे हैं। इस प्रकार की परम्परा मुरारि, राजशेखर तथा उत्तरकालीन नाटककारों में भी देखी जा सकती है। कीथ (A. B. Keith) ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्ति किये हैं :–

This process can be seen in full development in Murari, Rajshekher and other later dramatists, in whom we find subordination of action to description, and the degeneration of the description into a mere excercise in style and in the use of alliteration[15].

उपर्युक्त प्रभाव हमें सोमेश्वरदेव के नाटक में भी दिखाई पड़ता है। कवि ने कतिपय स्थलों का सृजन विस्तार पूर्वक कर दिया है जैसे सम्पूर्ण चतुर्थ अङ्क में गन्धर्वो का विस्तृत वार्तालाप वर्णित हैं। इसी प्रकार द्वितीय अङ्क में उद्यान का मनोहर वर्णन है तथा अन्तिम अङ्क में लङ्का से अयोध्या तक भौगोलिक नगरों का काव्यात्मक शैली में विस्तृत वर्णन किया गया है। इस प्रकार अभिनय की अपेक्षा अध्ययन की दृष्टि से नाटक का अधिक महत्व है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. रूपकं तत्समारोपात् ।। (कारिका)
नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुखचन्द्रादिवत् ।।
(दशरूपकावलोक) (दशरूपकम् १/७)
धनञ्जय, दशरूपकम्, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, १९६७ई० ।

2. दशरूपकम् , १/११

3. साहित्यदर्पण—सम्पादक श्री शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, १९६७ ई० ।

4. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ।।
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ।।
एक एव भवेदङ्गी श‍ृङ्गारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।। (साहित्यदर्पण,६/७-११)

5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,१९६४ई० ।

6. उल्लाघराघव— श्री सोमेश्वर, सम्पादक मुनि पुण्य विजय तथा डा० बी० जे० सान्देसरा, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६१ ई० ।

7. नृत्य तथा आङ्गिक अभिनय का विवेचन नन्दिकेश्वर के अभिनयदर्पण में विशेष रूप से हुआ है ।

8. अथ करुणो नाम शोकस्थायिप्रभवः । स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन विप्रयोगविभवनाश-वध-बन्ध- विद्रव- उपघात- व्यसन संयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते । नाट्यशास्त्र-अध्याय ६ 'कारिका ५१ के पश्चात्' ।
नाट्यशास्त्र-भरतमुनि, सम्पादक-बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, बनारस, १९२९ ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9. Keith, A. B. , *S*anskrit Drama, Oxford, 1924. p, 223.
10. The Unmattaraghava of Bhaskarkavi of unknown date, though a one-act play, seems to have been influenced at least in its name by the plays like the Anargharaghava.

    Keith, A.B.,Sanskrit Drama, Oxford, 1924, P.226.
11. Krishnamachariar, M., Classical Sanskrit Literature, Madras 1937, P. 638.
12. L.B. Gandhi, Catalogue of the Jain Bhandar at Patan (G.O.S.No.76), vol. I, 1937, P. 301, also H.D.Velankar, Jinaratnakosa, An Alphabetical Register of Jain works and Authors, Vol.I, Poona, 1944.
13. L.B. Gandhi, op., cit., Intro, P. 52.
14. स श्रेयसे भवतु भालविलोचनान्तपातेन यो रतिपतिं कृतवाननङ्गम् ।
    सोऽप्यस्तु येन गिरिजाख्यममोघमस्त्रं,मुक्त्वा कृतः स विभुरर्द्धशरीरशेषः ।।
    देवः शिवो जयति वक्षसि दोर्युगेन, न्यञ्चत्कुच गिरिजया परिरम्भमानः ।
    बध्नन्ननङ्ग विशिखव्रणवेदनापनोदाय पट्टकमिवौषधपिण्डगर्भम् ।।
    (उल्लाघराघव, ८/२९ तथा ३०)

    विश्वामित्रमखद्विषे च वपुषा चित्रेण पत्युर्मुखा-
    दप्याकृष्ट विदेहराजतनयानेत्रारविन्दाय च ।
    मारीचाय नमो नमः किमपरं यस्मैकुले रक्षसां
    द्वौवारौ विभुनापि दाशरथिना चक्रे ततज्यं धनुः ।।
    मक्तं रत्नमयूखपाटलमिलत्काकोलकोलाहल—
    त्रस्यत्कौशिकभुक्तकन्दरतमाः सोऽयं गिरिः स्मर्यते ।
    यत्राकृष्टकुचांशुके मयि रुषा वस्त्राय पत्त्राणि ते
    चिन्वन्त्या बनदेवतास्तरुलतामुच्चैर्व्यधुः कौतुकात् ।।
    (अनर्घराघव, ७/९७ तथा ९८)

    अनर्घराघव- मुरारि, सम्पादक- आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्या-भवन, बाराणसी, १९६० ई० ।
15. Keith A.B., Sanskrit Drama, Oxford, 1924 page 244.

—०—०—०—०—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अष्टम अध्याय

कवि की कृतियों में प्रतिबिम्बित तत्कालीन गुर्जरदेश

संस्कृत साहित्य की मूलत: रचना सात्विक भावना से प्रेरित होकर आश्रमों में हुई। परन्तु संस्कृत साहित्य का समुचित विकास राजाओं के संरक्षण में ही हुआ। ऐसा देखा गया है कि संस्कृत के उच्चकोटि के कवियों का सम्बन्ध राजाओं से ही रहा है। महाकवि कालिदास, बाण आदि राजाश्रित ही थे। राजाओं के दरबार वस्तुत: कला, संस्कृति तथा सभ्यता के प्रधान केन्द्र थे। अत: कवि वाणी को मुखरित होने के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण मिलता था। सरस्वती तथा लक्ष्मी के आश्रयभूत महीपाल कवि जनों के महाकाव्यों के नायक भी बनते थे। इस प्रकार राजसी वातावरण में अभ्युदय तथा प्रसार पाने से संस्कृत-काव्य नितान्त प्रभावशाली बन गया है।

यह सत्य है कि साहित्य समाज को चित्रित करता है। तत्कालीन शिष्ट समाज की रुचि तथा प्रवृत्ति का मनोरम रूप आलोचक को संस्कृत-काव्यों के पृष्ठों में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का भी ज्ञान होता है। महाकवि कालिदास तथा बाणभट्ट के समान ही सोमेश्वरदेव भी राजकवि थे। चालुक्य राजा लवण प्रसाद के वह राजकवि ही नहीं अपितु राजपुरोहित भी थे। यही नहीं, तत्कालीन गुर्जर प्रदेश के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि- मण्डल में सोमेश्वरदेव प्रधान कवि थे। अतः सोमेश्वरदेव के महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, प्रशस्तियों तथा शिलालेखों से तत्कालीन सामाजिक साहित्यिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रचुर ज्ञान होता है।

सामाजिक प्रवृत्तियाँ

साहित्य पर समाज का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ता है। समाज के विविध क्रिया कलापों का चित्रण साहित्य में किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है। सामेश्वरदेव के काव्यों में तत्कालीन गुर्जर देश की सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। समाज में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं को कवि ने यत्र-तत्र अपने वर्णन में प्रस्तुत किया है। कवि रचित सुरथोत्सव तथा कीर्तिकौमुदी महाकाव्य एवं उल्लाघराघव नाटक तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से विशेष रूप से प्रभावित है। कवि सोमेश्वर के काव्य तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों से कहाँ तक प्रभावित हैं? यही यहाँ विवेच्य विषय है।

कवि के कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से ज्ञात होता है कि उत्सवों के अवसर पर प्रत्येक घर धातुरस से लेप कर उनके अन्दर चारों ओर स्वास्तिक अंकित की जाती थी और वाद्य के साथ कुलांगनाएँ मंगल गीत गाती थीं। इस अवसर पर स्त्रियाँ विशिष्ट वस्त्रों को भी धारण करती थीं। राजमार्गों की शोभा देखने योग्य होती थी। मन्दिरों में विशेष रूप से पूजा की जाती थी तथा पुरुष अत्यधिक आनन्दित होते थे :—

गृहे गृहे धातुरसानुलेपाः समन्ततः स्वस्तिकपंक्तिमन्तः।
विरेजिरे तूर्यरवानुकूलाः, कुलांगनामंगलगीतयश्च ॥

बभूव देवेषु विशेषपूजा, राजन्य मार्गेषु विशेष शोभा।
विशेषहर्षः पुरपूरुषेषु विशेषवेषश्चवधूजनेषु ॥

(कीर्तिकौमुदी ९/२-३)

महोत्सवों के अवसर पर प्रायः राजा अथवा मंत्री राजमार्गों पर निकलते थे और प्रजा उनके दर्शन करती थी। कीर्तिकौमुदी महा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काव्य से ज्ञात होता है कि विजयी महामात्य वस्तुपाल देवी एकल्लवीरा के दर्शन करने जा रहें हैं। मार्ग में उनको देखने के लिए स्तंभतीर्थ की रमणियाँ बाहर निकल पड़ी तथा महामात्य को दानी, रक्षक, जयी, क्षमावान, वक्ता इत्यादि कह कर प्रशसा कर रही हैं :—

तं राजवीथ्यामथ सञ्चरन्तमालोकयन्त्यः पुरलोककान्ताः ।
दातेति पातेति जयीत्यीति, क्षमीति वाग्मीति भृश शशंसुः ॥

(कीर्तिकौमुदी, ६/१७)

मन्त्री को देखने वाली स्त्रियों पर वस्तुपाल की भी दृष्टि पड़ी। उनमें से एक स्त्री वस्तुपाल के द्वारा ऐसी देखी गई जो कि लज्जा के भार से अत्यधिक नमन कर रही थी, वह कामदेव रूपी किरात के द्वारा फेंके गये वाणों के कारण उसके आधीन होने वाली वन्दिनी सी प्रतीत हो रही है। कवि आगे कहता है कि कामदेव से बढ़कर भला कौन धनुर्धारी है? जिसके वाणों से वस्तुपाल से प्रेम करने वाली स्त्रियों के हृदय तो बिंध गये, परन्तु आवरणभूत कञ्चुक में वेध-चिन्ह दिखलाई ही नहीं पड़ा :—

तेनाङ्गनाप्रत्यवलोकिताऽन्या, त्रपाति भारेण भृशं नमन्ती ।
रराज कन्दर्पकिरातमुक्त समापतन्मर्गणवञ्चिनीव ॥
न पुष्पचापादपरोऽस्ति चापी, यस्मादमात्यप्रणयोन्मुखीनाम् ।
न कञ्चुके किञ्चन वेधचिन्हं, भिन्नं मनस्तेन घनस्तनीनाम् ॥

(कीर्तिकौमुदी, ६/२२ से २४ तक)

इसी प्रकार एक बार तीर्थ यात्रा से लौटे हुए मन्त्री को देखने के लिए अपार जन-समूह एकत्रित हो गया, जिनमें स्त्रियों की संख्या अधिक थी :—

व्यावर्तमानमथ मानवराजमन्त्रि-
राजं मुदा प्रतिपथं प्रमदास्तदानीम् ।
पश्यन्त्यदृष्टिमिव तं शतशोऽपि दृष्टं,
तृप्तिर्भवेन्नहि दृशां प्रियदर्शनेषु ॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/७६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा ज्ञात होता है कि महोत्सव, यात्रा तथा समारोहों के अवसर पर स्त्रियों की संख्या पर्याप्त रहती थी। कभी-कभी इनकी संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक भी हो जाती थी। तत्कालीन समाज में कन्या का विशेष महत्व था, उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। विभिन्न अवसरों पर लोग उनके आशीर्वाद की अपेक्षा करते थे। महामात्य वस्तुपाल ने भी कुल-बालिकाओं का आशीर्वाद स्वीकार किया है। कुल-बालिकाओं के द्वारा प्रदत्त आशीर्वादों को विनय पूर्वक मस्तक झुकाकर ग्रहण करने के अनन्तर वस्तुपाल ने स्तम्भों से विभूषित मन्दिर में देवी एकल्ल-वीरा के दर्शन किये:—

अथाऽऽशिषः सैष नतेन मूर्ध्ना, गृह्णन् वितीर्णाः कुलबालिकाभिः।
विभूषितस्तम्भपुरोपशल्यामेकल्लवीरां प्रददर्श देवीम् ।।

(कीर्तिकौमुदी, ६/३५)

उपर्युक्त वर्णन इस तथ्य के प्रमाण हैं कि गुर्जरप्रदेश में तत्काल स्त्रियों की सामाजिक स्थिति संतोषजनक थी। तत्कालीन समाज में कुम-कुम तथा चन्दन दैनिक जीवन में व्यवहृत होता था, किन्तु सुरथोत्सव के एक वर्णन से ज्ञात होता है कि युवतियाँ ओष्ठों को भी रंगती थी। वर्णन इस प्रकार है — 'उदयाचल पर विराजमान प्रकाश पुञ्ज क्रौञ्च नामक पक्षी को आनन्दित करता हुआ और अन्धकार को दबाता हुआ इस तरह सुशोभित हो रहा है, मानो वह कान्ता का रंगा हुआ ओष्ठ हो :—

पूर्वाचले च मिथुनानि रथाङ्गनाम्नामानन्दयंश्च तिमिरं परिमन्दयंश्च।
प्राभाकरः सरसयावकरक्तकान्तादन्तच्छदच्छविररोचत रोचिरोधः ।।

(सुरथोत्सव, ७/१)

उपर्युक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि ओष्ठ-रञ्जन की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। गुर्जरप्रदेश के तत्कालीन साहित्य में ओष्ठ-रञ्जन के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण सूचना है। तत्कालीन समाज में ताम्बूल का व्यापक प्रचार होने के कारण साहित्य में विभिन्न उपमानों के रूप में ताम्बूल का प्रयोग होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस समय गुर्जरप्रदेश में स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनने लगी थी। सुरथोत्सव के छठे सर्ग में चूड़ियों के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है— 'सम्भोग क्रीड़ा में भुजलता चल रही थी तथा चलायमान अंगों से जायमान शब्द एवं चूड़ियों की ध्वनि से कोई रमणी अपने पति के हृदय को आकर्षित कर रही थी :—

विभ्रद्भुजलतारतरङ्गे, रङ्गदङ्गजगजान्दुनिनादैः ।
का च काचवलयावलिशब्दैराजुहाव हृदयं दयितस्य ।। (सु० ६/१०५)

प्रायः ऐसा विश्वास है कि काचवलय (चूड़ी) का उल्लेख संस्कृत-साहित्य में नहीं प्राप्त होता है, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि सुरथोत्सव के उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता कि उस समय काचवलय को स्त्रियाँ अपने हाथों में पहनती थी। इन चूड़ियों की प्राचीनता के सम्बन्ध में डा० वी० यस० अग्रवाल का मत द्रष्टव्य है :—

I have not come across any definite reference in Sanskrit literature to tne use of glass bangles, but I think that tbey began to be used some time about 8th- 9th century i· e. in the early mediaeval period. Their use seems to have been brought by the foreign tribes like the Hunas and the Gurjars coming fro.ıı the central Asia[1].

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि संस्कृत साहित्य में यदा कदा स्फटिक शब्द का अर्थ काच किया गया है। उदाहरणार्थ सोमदेव (९५१ई०) के यशस्तिलक में उद्धृत 'स्फटिकवलय' का अर्थ प्रो० हन्डीकी ने काचवलय[२] किया है। संस्कृत साहित्य में स्फटिक शब्द का अर्थ प्राकृतिक काच से लिया जाता है। यह कहना कठिन होगा कि स्फटिक का अर्थ काच (Glass) के रूप में लिया जाने लगा। अतः यह धारणा सत्य प्रतीत होती है कि 'काचवलय' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम सुरथोत्सव महाकाव्य में किया गया है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन गुर्जर प्रदेश में चूड़ियाँ सामान्यतः पहनी जाती थी। चूड़ियों के अतिरिक्त कतिपय आभूषण भी प्रचलित थे।

वास्तुकला

संस्कृत महाकाव्यों में नगर-वर्णन की परम्परा प्राप्त होती है, जिसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधार पर तत्कालीन सामाजिक जीवन का भी पता चलता है। नगर वर्णन की परम्परा के आधार पर ही राजधानी अणहिल्लपत्तन नगर का वर्णन कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में प्राप्त होता है। नगर के चारों ओर प्राकार निर्मित की गई है तथा नगर में अनेक वृक्ष लगे हुये हैं, जो नगर को सुशोभित कर रहे हैं :—

कृतहारानुकारेण, प्राकारेण चकास्ति यत् ।
सुकृतेन वृतीभूय, त्रायमाणं कलेरिव ॥
अनेकानोकहच्छन्ना प्रत्यासन्ना वनावलिः ।
यन्नोन्नतस्य वप्रस्य, च्छायेव प्रतिभासते ॥ (कौ०, १/४९,५०)

सायंकाल चन्द्रशालाओं में बालिकायें क्रीड़ा कर रही हैं। कवि को उनके मुखों की कान्ति शतचन्द्रों के समान प्रतीत हो रही है। अणहिल्लपत्तन के गृहों में प्रतिदिन वेदपाठ हो रहे हैं। कहीं-कहीं मंगल गीत हो रहे हैं, और कहीं पर बन्दिगणों का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है जिससे सम्पूण नगर मुखरित हो गया है। पुते हुए गृहों को देखकर कवि उनकी ओर आकृष्ट होता है। स्वच्छ गृह उसे रजत- निर्मित प्रतीत होते हैं :—

धौतेव सुधया यत्र, तुषारेणेव भूषिता ।
रचितारजतेनेव, राजते सौधपद्धतिः ॥ (कौ०, १/५३)

धातुरस से पुते हुये भवनों के अन्दर स्वास्तिक बने हुये हैं। उन भवनों के समक्ष शिव कैलास में विलास करने की इच्छा नहीं करते :—

दत्तचित्त प्रसादेषु, प्रासादेषु सदा वसन् ।
यत्र शम्भुर्न कैलासविलासमभिलष्यति ॥ (कौ०, १/५४)

कवि की दृष्टि में अणहिल्लपत्तन नगर लङ्का, चम्पा, विदिशा, काशी, मिथिला, त्रिपुरी, मथुरा तथा धारा आदि नगरों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। समाज में भी इस नगर की विशिष्ट महत्ता है। इस नगर में हिमालय तुल्य देवालय हैं :—

भान्ति देवालया यस्मिन्, हिमालयसमश्रियः ।
भूतलं व्याप्य भूपानां, कीर्तिकूटा इवोद्गताः ॥ (कौ०, १/६१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजमार्ग में जल- छिड़काव के कारण धूलि दिखाई ही नही पड़ती है। नगर के सामान्य व्यक्तियों के मकान राजाओं के प्रासादों के समान ही हैं:–

गृहीतभूरिदंडानां, बिडम्बितमहीभुजाम् ।
यत्रत्यानां नरेन्द्राणां, प्रासादानां च नान्तरम् ॥ (कौ०, १/६६)

तत्काल नगरों में तड़ाग निर्मित कराये जाते थे। इन तड़ागों से विभिन्न कार्यों के लिए जल लिया जाता था। अणहिल्लपत्तन नगर में भी एक सुन्दर **सिद्धसर** नामक तड़ाग था, जिनके सौन्दर्य का चित्रण कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में कवि ने प्रस्तुत किया है :–

आभाति यस्य गम्भीरं, सरः स्मेरैः सरोरुहैः ।
खेलन्तीनां सुखं तोयदेवतानां मुखैरिव ॥ (कौ०, १/७३)

समाज में विजय-कीर्ति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये जाते थे। सिद्धसर के तट पर स्थित रजत के समान उज्ज्वल कीर्तिस्तम्भ इतना ऊँचा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाश-गंगा पृथ्वी लोक पर उतर रही है। कवि का मन सिद्धसर में रम गया है अतः वह कहता है:---

न मानसे माद्यति मानसं मे, पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम् ।
अच्छोदमच्छोदकमुष्यसारं, सरोवरे राजति सिद्धभर्तुः ॥ (कौ०, १/७८)

काव्यों में वर्णित मानसरोवर, रामायण में वर्णित पम्पा तथा कादम्बरी में वर्णित अच्छोद सरोवर भी कवि को 'सिद्धसर' के समक्ष सार रहित मालूम पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्कालीन राजमार्ग, वृक्ष, नगर, गृह, तड़ाग, स्तम्भ, पताका आदि सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं से कवि का कीर्तिकौमुदी महाकाव्य प्रभावित है। इन सभी वस्तुओं के सौन्दर्य की उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

निष्कर्ष यह है कि उस समय भवन निर्माण का कार्य उन्नत दशा पर था। अनहिलवाड़, स्तम्भतीर्थ, धोलका, भड़ौच, तथा अन्य नगरों में सुन्दर भवन थे। नवीं शताब्दी के पश्चात् भवन-निर्माण की कला में विशेष उन्नति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई। इन भवनों के अवशेष आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। सोमनाथ मन्दिर, आबू तथा गिरनार के मन्दिर, दभोई का किला तथा किले में खोदे गये कुयें आज भी वर्तमान हैं।

मुद्रा–प्रचलन

महाकवि सोमेश्वरदेव को विभिन्न अवसरों पर दो बार आशु-रचना के उपलक्ष में द्रम मुद्रा की प्राप्ति हुई। प्रबन्धकोश[३] तथा वस्तुपाल चरित से ज्ञात होता है कि आशु-रचना के उपलक्ष में अत्यधिक प्रसन्न होकर वस्तुपाल ने सोमेश्वर को १६ सहस्र द्रम प्रदान किये। इसी प्रकार प्रबन्ध चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि सोमेश्वरदेव के एक श्लोक पर मन्त्री ने कवि को ९ हजार द्रम उपहार स्वरूप प्रदान किये[४]।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि कवि के प्रकीर्ण श्लोकों के माध्यम से तत्कालीन सिक्कों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है और यह निश्चित हो जाता है कि द्रम-सिक्का गुर्जर प्रदेश में पूर्णतया प्रचलित था। श्रीमाल में एक खान भी थी, जिसमें सिक्के बनाये जाते थे[५]। सामान्यत: कौड़ियों का अत्यधिक प्रयोग होता था।

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

गुर्जर प्रदेश में श्रव्य तथा दृश्य दोनों ही प्रकार के काव्यों की तेरहवीं शताब्दी में वृद्धि हुई है। वस्तुपाल के साहित्यिक-मण्डल ने इस दिशा में प्रशंसनीय काय किया है। इस समय गुर्जर प्रदेश में अनेक नाटक रचे गये। वास्तव में संस्कृत के उत्कृष्ट नाटकों के रचयिता भास, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष तथा भवभूति प्रभृति नाटककार हैं। कालान्तर के नाटककारों ने प्रायः इन्ही को आधार मान कर नाटकों की रचना की है और नाट्य रचना की स्वस्थ परम्परा को जीवित रखा है। मध्यकालीन युग में नाटकों का प्रणयन राजदरबार तथा समाज के धनाढ्य व्यक्तियों के संरक्षण में होता रहा है। गुजरात में इस काल में नाटक लोक प्रिय थे। कतिपय हिन्दू तथा जैन मन्दिरों में भी अभिनय के लिए प्रबन्ध रहता था। चालुक्य राज्यकाल में अनेक नाटकों का अभिनय तथा प्रणयन किया गया। वस्तुपाल के समय में भी यह परम्परा प्रचलित रही। प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं कि मध्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालीन गुजरात में उत्सवों के अवसर पर संस्कृत-नाटक अभिनीत किये जाते थे। इन नाटकों का मुख्य आकर्षण सम्भवतः लोगों को प्रसन्न करना था।

साहित्यिक वातावरण

उस समय संस्कृत - विद्वानों के मध्य में प्रायः कवि गोष्ठियाँ हुआ करती थी। ये कवि- गोष्ठियाँ ऋतु, महोत्सव आदि के आधार पर होती थी। मन्त्री की विजय के उपलक्ष में स्तम्भ तीर्थ में होने वाले महोत्सव के अवसर पर एक कवि- गोष्ठी का आयोजन किया गया था। मध्याह्न काल में सूर्य की गर्मी से अत्यधिक तप्त हो जाने के कारण गुणियों सहित मन्त्री ने क्रीडावन में प्रवेश किया :—

चण्डद्युतौ मण्डयति द्युमध्यं, मध्यन्दिनोद्दीपितदीप्तिदृप्ते।
समं स मन्त्री गुणिनांगणेन क्रीडावनं प्राप सनीडवर्ति ॥ (की०, ६/४२)

इस प्रकार क्रीडावन में ही सानन्द कवि-गोष्ठी सम्पन्न हुई। अमृतोपम काव्यवृष्टि से संसिक्त वस्तुपाल ने कवि गोष्ठी करते हुये मध्यान्ह काल उद्यान में ही व्यतीत किया तथा सायंकाल अपने घर को चले गये।

तत्कालीन समाज में आशु रचना का महत्वपूर्ण स्थान था। महाकवि सोमेश्वरदेव भी आशुकवि थे। यही कारण था कि वस्तुपाल के साहित्यिक मण्डल में सोमेश्वरदेव का प्रथम स्थान था। कवि ने विभिन्न अवसरों पर आशु-रचना के द्वारा प्रभूत उपहार भी प्राप्त किये।

शत्रुञ्जय की एक संघ यात्रा में, जब कि मन्त्री जिन भगवान की अर्चना कर रहे थे, अर्चक बहुत बड़ी संख्या में वस्तुपाल को देखने के लिये दौड़ पड़े। जन समुदाय को देखकर सोमेश्वरदेव ने अधोलिखित श्लोक तुरन्त ही रचकर सुनाया :—

इच्छासिद्धिसमुन्नते सुरगणे कल्पद्रुमैः स्थीयते,
पाताले पवमानभोजनजने कष्टं प्रणष्टो बलिः।
नीरागानगमन्मुनीन् सुरभयश्चिन्तामणिः क्वाप्यगात्,
तस्मादर्थिकदर्थनां विषहतां श्रीवस्तुपालः क्षितौ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबन्ध सूचित करते हैं कि कवि को इस छन्द के लिए अपार सम्पति प्रदान की गई[१]।

जब वस्तुपाल शङ्ख को युद्ध में पराजित करके अपने नगर वापस चले आये, उस समय सोमेश्वर ने अधोलिखित श्लोक पढ़ते हुए मन्त्री का स्वागत किया:-

श्रीवस्तुपाल प्रतिपक्षकाल त्वया प्रपेदे पुरुषोत्तमत्वम् ।
तीरेऽपि वार्द्धेरकृतेऽपि मात्स्ये दूरं पराजीयत येन शङ्खः[२] ।।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त प्रबन्धों में अनेक श्लोकों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनकी आशु रचना कवि ने विभिन्न अवसरों पर की थी । तत्कालीन समाज में कवि-गोष्ठी का महत्वपूर्ण स्थान था । कवि गोष्ठी में भी आशु कवि को सम्मानित स्थान दिया जाता था ।

निष्कर्ष यह है कि कवि के काव्यों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन नगर व्यवस्था उत्तम थी । नगरों में समय समय पर महोत्सव मनाये जाते थे । संस्कृत विद्वानों के मध्य प्रायः कवि-गोष्ठियाँ हुआ करती थी । समाज में संस्कृत नाटकों का व्यापक प्रचार था । मनुष्य ताम्बूल ग्रहण करते थे । स्त्रियाँ विलेपन, चूड़ियाँ तथा आभूषण धारण करती थीं । उस समय गुर्जर प्रदेश में द्रम सिक्का प्रचलित था । कृषि और व्यापार उन्नत दशा पर था । बन्दरगाहों से प्रचुर मात्रा में व्यापार होता था । कवि के काव्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन सामाजिक जीवन उत्तम था क्योंकि साहित्य एवं कला की उन्नति शान्तिपूर्ण वातावरण में ही होती है ।

राजनैतिक प्रवृत्तिय

चालुक्यों ने लगभग ३६० वर्षों तक गुजरात पर शासन किया । प्रथमतः मूलराज ने अल्प भूभाग पर ही अधिकार किया था परन्तु कालान्तर में चालुक्य-वंशजों ने एक विशाल-साम्राज्य की स्थापना की जो आधुनिक गुजरात के समान ही था । चालुक्यों के राज्यकाल में गुजरात का सम्मान बढ़ा, जनता सुखी और समुन्नत हुई । इस काल में सारा शासन-प्रबन्ध स्मृतियों के आधार पर होता था, जिसकी प्रेरणा वल्लभियों तथा प्रतिहारों से प्राप्त हुई थी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण शासन प्रबन्ध में पञ्चकुल का महत्वपूर्ण स्थान होता था क्योंकि उसका सम्बन्ध शासन के बड़े अधिकारी से लेकर गांव के मुखिया तक होता था। विभाग के अधिकारी की सहायता के लिए पञ्चकुल वह समुदाय होता था जिसमें ५ व्यक्ति होते थे। वस्तुपाल सदृश्य योग्य प्रधानामात्य के होते हुए भी भीमदेव द्वितीय तथा वीसलदेव के मन्त्री नागद ने पञ्चकुलों की स्थापना की थी।

गुर्जर प्रदेश की तेरहवीं शताब्दी की राजनैतिक परिस्थितियों का कवि सोमेश्वरदेव की रचनाओं पर विशेष प्रभाव पड़ा है। कवि की रचनाओं में सबसे अधिक राजनैतिक प्रभाव कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक महाकाव्य कीर्तिकौमुदी के नायक महामात्य वस्तुपाल हैं। महाकवि सोमेश्वरदेव के परम मित्र महामात्य वस्तुपाल का सम्पूर्ण जीवन राजनैतिक घटनाओं से ही सम्बन्धित रहा है। सोमेश्वरदेव की काव्य-माधुरी इसी राजनीतिज्ञ महामात्य के संरक्षता में विकसित हुई। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य महामात्य वस्तुपाल के जीवन-चरित्र का काव्यात्मक वणन ही है जिसमें विभिन्न राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कवि सोमेश्वरदेव का अमर महाकाव्य सुरथोत्सव भी तत्कालीन राजनीति का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करता है।

चालुक्य वंश

कीर्तिकौमुदी के प्रारम्भिक सर्गों में कवि चालुक्य-वंशीय अनहिलवाड के राजाओं का वर्णन प्रथमतः वनराज से प्रारंभ न करके अपितु मूलराज के सिंहासनारोहण से करते हैं। गुजरात की राज्यलक्ष्मी ने स्वयं मूलराज को वरण किया था:—

अथ चौलुक्यभूपालः पालयामास तत् पुरम्।
जितराजसमाजः श्रीमूलराज इति श्रुतः॥
आर्वाजता जितारातेर्गुणैर्वाणरिपोरिव।
गूर्जरेश्वरराज्यश्रीर्यस्यजज्ञे स्वयंवरा॥ (कौ०, २/१-२)

कीर्तिकौमुदी में मूलराज के द्वारा लाटेश्वर वारप की पराजय, उसके हाथियों का छीना जाना तथा कच्छ नृपति लक्ष के साथ युद्ध आदि के वर्णन प्राप्त होते हैं। मूलराज ने दान देकर दरिद्रता को दूर कर दिया तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शौर्य के द्वारा दुर्जनों पर विजय प्राप्त की। सूर्यवंशी राजाओं की कीर्ति को स्थगित करने वाले मूलराज ने चिरकाल तक शासन किया :—

दानोपद्रुतदारिद्रयं, शौर्यनिर्जित दुर्जनम् ।
कीर्तिस्थगितकाकुत्स्थं, यो राज्यमकरोच्चिरम् ।।(की०, २/५)

मूलराज का उत्तराधिकारी पृथ्वी का अलङ्कर चामुण्डराज था। इसके अनन्तर चामुण्डराज का पुत्र वल्लभराज उत्तराधिकारी हुआ। वह इतना वीर था कि उसकी कीर्ति तीनों लोकों में फ़ैल गई और विशेषज्ञों ने उसे जगज्झम्पन की उपाधि से विभूषित किया था। उसके पश्चात् राजसिंहासन पर बैठने वाला दुर्लभराज था। उसने दूसरे की स्त्रियों पर हाथ नहीं चलाया और ब्राह्मणों के धन पर दृष्टि नहीं डाली :—

सर्वथाऽनुपभोग्येषु, यस्य सौभाग्यभासिनः ।
न करः परदारेषु, द्विजसारेषु चापतत् ।। (की०,२/१४)

दुर्लभराज का उत्तराधिकारी भातृ पुत्र भीमराज था, जिसने सर्वदा मालव-आक्रमण के अवरोध के लिए कुशल कार्य किया। उसने ऐसे प्रयत्न किये कि मालव राजा कभी भी उसके राज्य पर आक्रमण नहीं कर सके। उसके पश्चात् राजचिन्ह द्वारा कर्ण सुशोभित हुआ, जिसका यश दूर देशों में चन्द्रिकावत् फैला। उसका पुत्र प्रसिद्ध जयसिंह था, जिसने सभी राजाओं को पराजित कर दिया। उसने एक युद्ध में सौराष्ट्र के खङ्गार को पराजित कर दिया, जिसका शौर्य अपरमित था। उसने सिन्धुपति की आधीनता स्वीकार नहीं की। उसने अरणोराज के राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया तथा धारा के परमार नृपति नरवर्मन् को पराजित किया, बन्दी बनाया तथा उसके नगर धारा को अधिकृत कर लिया। उसने एक ही धारा नगरी को जीता परन्तु धारा की वधुओं को सहस्त्र अश्रुधारायें प्रदान की। उसने धारापति को राजशुक के समान काष्ठ के पिन्जरे में बन्द कर दिया तथा राजहंसी के समान राजा की कीर्ति ने दिशा रूपी पिन्जरे में प्रवेश किया। उस अद्वितीय राजा ने ऐसा कोई राजा नहीं था, जिसे जीता नही अर्थात् सभी राजाओं को जीत लिया। ऐसी कोई दिशा नही थी, जिसमें राजा का यश न फैला हो अर्थात् सभी दिशाओं में राजा का यश फैल रहा था :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

येन विश्वैकवीरेण, न स राजा जितो न यः ।
काष्ठा काऽपि न सा यस्य, यशोभिः शोभिता न या ।। (की०, २/३६)

महोबक नृपति ने धारा से शिक्षा ग्रहण कर एक विशाल कोष राजा के समक्ष प्रस्तुत कर और भी उनसे मित्रता कर ली । उसकी विजय सभी दिशाओं में बढ़ती गई । उसने सिद्धों के स्वामी बर्बरक को जीतकर सिद्धराज की उपाधि धारण की । जयसिंह का उत्तराधिकारी कुमारपाल अत्यन्त वीर था । उसने वीरता के अनेक कार्य किये । जिन राजाओं पर उसने विजय प्राप्त की, उनमें जाँगल नृपति, मालवा के वल्लाल तथा कोङ्कण के मल्लिकार्जुन राजा प्रमुख हैं । तत्कालीन राजाओं एवं वन्य पशुओं के द्वारा निवेदन किये जाने पर उसने हिंसा करना बन्द कर दिया :—

पादलग्नैर्महीपालैः पशुभिश्च तृणाननैः ।
यः प्रार्थित इवात्यर्थमहिंसाव्रतमग्रहीत् ।। (की०, २/५१)

कुमारपाल का उत्तराधिकारी अजयपाल था, जिसने जाङ्गल नृपति से दण्ड के रुप में एक स्वर्ण-मण्डपिका तथा अनेक हाथी ग्रहण किये । हिन्दू धर्म की कट्टरता का उल्लेख करते हुये कवि कहता है कि वह अस्त्रों से ही भूमि को परिष्कृत कर ब्राह्मणों को दान देते थे । वह प्रतिदिन विवाह करते, प्रतिदिन दान करते तथा प्रतिदिन राजाओं को दण्ड देते थे :—

दानानि ददतो नित्यं, नित्यं दण्डयतो नृपान् ।
नित्यमुद्वहतो नारीर्यस्याऽऽसीत् त्रिगणः समः ।। (की०,२/५५)

अजयपाल का पुत्र मूलराज था, जिसने तुरुकों की सेनाओं को तितर-बितर कर दिया । मूलराज का उत्तराधिकारी उसका भ्राता भीम था । इस सरल प्रकृति के राजा का राज्य उसके मंत्रियों तथा आश्रित राजाओं में बिभक्त हो गया :—

मन्त्रिभिर्माण्डलीकैश्च, बलवद्भिः शनैः शनैः ।
बालस्य भूमिपालस्य, तस्य राज्यं व्यभज्यत ।। (की०, २/६१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीरधवल वंश

कवि की कीर्तिकौमुदी तथा आबू प्रशस्ति नामक दोनों ही रचनाओं में वर्णन मिलता है कि शाखान्तर से उत्पन्न अरणोराज ने अनहिलवाड़ की राजसत्ता को पुन: स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन युद्ध करते हुये अपने छिन्न-भिन्न राज्य को स्थापित करने में व्यतीत कर दिया :—

अथ तत्रैव चौलुक्यवंशे शाखान्तरोद्गतः ।
अरुणोराजः स राजर्षिस्तं समर्थं न विप्लवम् ॥
धवलस्य सुतेनापि, तेन कृष्णानुकारिणा ।
राष्ट्रं निष्कण्टकीकर्तुमारेभे सुभटेन तत् ॥(कौ०, २/६२-६३)

कवि सोमेश्वरदेव के समकालीन अरणोराज के पुत्र लवण प्रसाद थे, जिनके द्वारा नाड्डूल नायक पराजित हुये। धारा नरेश उसकी राजसत्ता को हड़पने आया, परन्तु यह देखकर कि विरोधी बलशाली है, वह वापस गया। दक्षिण नृपति सिंहन लवण प्रसाद से शत्रुता करना उचित नहीं समझता था। लवणप्रसाद का पुत्र वीर धवल अपने पिता के समान ही वीर था। वह सभी प्रकार से पिता के अनुरूप ही था :—

आत्मानमात्मजे तस्मिन्नशेषगुणभूषणम् ।
स पिता दर्पणप्राये, सङ्क्रान्तमिव पश्यति ॥ (कौ०,२/७७)

एक रात्रि को स्वप्न में अनहिलवाड़ की राज्य लक्ष्मी ने लवण प्रसाद के कण्ठ में माला पहनाया। लवणप्रसाद ने शीघ्र ही अपने पुत्र तथा पुरोहित को बुलाया और पूछा कि इस स्वप्न का क्या तात्पर्य है? इसका क्या फल होगा? राजपुरोहित ने विचार कर बतलाया कि अनहिलवाड़ की राजसत्ता ने आपको वरण किया है :—

राजन्य ! धन्यतममन्यमहं न मन्ये,
ग्रस्तारिवीरभुजवैभवतो भवतः ।
या न स्पृशत्युपनतानपरान् कदापि,
यत् त्वामुपेन्द्रमिव सा वृणते स्वयं श्रीः ॥
(कीर्तिकौमुदी, २/१०९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरोहित ने आगे कहा कि विभिन्न राज्यों में विभक्त इस सम्पूर्ण राज्य पर आप एकाधिकार स्थापित कीजिये। सर्व प्रथम विजित भू भाग पर कतिपय सुयोग्य मन्त्रियों की नियुक्ति कीजिये। मंत्रिपद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सोमेश्वरदेव का तर्क देखने योग्य है—राजा शत्रु के राज्य को जीतते हैं और मंत्रिगण उस विजित राज्य को सुव्यवस्थित करते हैं। जिस प्रकार रत्न समुद्र से उत्पन्न होते हैं परन्तु रत्नावली का संस्कार मणिकार ही करते हैं :—

दृप्यद्भुजाः क्षितिभुजः श्रियमर्जयन्ति,
नीत्या समुन्नयति मन्त्रिजनः पुनस्ताम्।
रत्नावलीं जलधयो जनयन्ति किन्तु,
संस्कारमत्र मणिकारगणः करोति ॥
(कीर्तिकौमुदी, २/११३)

राजा लवणप्रसाद ने सोमेश्वरदेव के निर्देशानुसार ही वस्तुपाल तथा तेजपाल को मंत्रिपदों पर नियुक्ति करने के लिए शीघ्र ही बुलाया। राजा ने उनके समक्ष अनहिलवाड़ की नष्ट होती हुई सत्ता को पुनः स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। वस्तुपाल ने राजा लवणप्रसाद से कहा कि यदि आप न्याय को प्राथमिकता देते हुये, दुष्टोंका अनादर करते हुये, सहज में शत्रुओं को जीतते हुये, भगवान् राम के चरितानुसार इस पृथ्वी का उद्धार करना चाहते हैं, तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आपका कल्याण हो :—

पुरस्कृत्य न्यायं खलजनमनादृत्य सहजान—
रीन् निर्जित्य, श्रीपतिचरितमाश्रित्य च यदि।
समुद्धर्तुं धात्रीमभिलषसि तत् सैष शिरसा,
धृतो देवादेशः स्फुटमरथा स्वस्ति भवते ॥
(कीर्तिकौमुदी ३/७७)

नृपति ने विचारक राजनीतिज्ञ के इन शब्दों को सुनकर उनके हाथों में मन्त्रि-मुद्रा प्रधान कर दी। राजा ने इस प्रकार के सुयोग्य-मत्रियों को पाकर अपने को धन्य समझा। इस प्रकार के उच्च पद को प्राप्त कर वस्तुपाल से भी राजा के प्रति तज्ञता व्यक्त की। पद-ग्रहण करने के अनन्तर मंत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने स्तम्भतीर्थ की ओर प्रस्थान किया। स्तम्भतीर्थ में उसने विगत राज्यपालों की अपेक्षा कई परिवर्तन तथा सुधार किये। उसके शासन में निम्न श्रेणी के लोगों ने अल्प आय वाले साधनों को छोड़ दिया। अधार्मिक धार्मिक तथा निर्धन सम्पन्न हो गये। हाट में उसने वेदिकायें निर्मित करवाई, जिसमें लोग वर्ण-व्यवस्था के अनुसार तक्र का क्रय-विक्रय करते थे :—

स्पृष्टाऽस्पृष्टनिषेधाय, विधायावधिवेदिकाम् ।
पुरेऽस्मिन् वारितस्तेन, तक्रविक्रयविप्लवः ।। (कौ०, ४/१७)

उसने सघन छायदार वृक्ष आरोपित करवाये, कूप खुदवाये, जनता के के लिये पार्क बनवाये, तालाब खुदवाये, एक नगर स्थापित करवाया तथा अनेक जनता की सुविधा के लिए निर्माण कार्य किये। दक्षिण के नृपति सिंहन ने गुजरात के वैभव को सुनकर अपनी वाहिनी को उस पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। आक्रमण से प्रान्त की जनता व्याकुल हो उठी। पिता लवणप्रसाद तथा पुत्र वीर धवल दोनों ही आगे बढ़े, यद्यपि उनके पास सैन्यदल कम ही था। शत्रुओं से भड़ौच में मुलाकात हुई। इसी बीच मारवाड़ के चार शत्रु राजाओं ने अवसर देखा और युद्ध के लिए आगे बढ़ आये। वस्तुतः पिता और पुत्र दोनों के लिए ही यह परीक्षा की घड़ी थी :—

क्षितिपान्तरविग्रहप्रसक्तौ, पितृ-पुत्रावथ विग्रहीतुमेतौ ।
विदितावसरैश्चिराच्चतुर्भिर्मरुपैः, सहसोपचक्रमाते ।।
पुरतो यदि सिंहनस्यसैन्य, यदि पृष्ठेमरुभूभुजश्च तौ च ।
न बभूव तयोरचिन्त्यशक्त्योर्मुखरागस्यविपर्यस्तथाऽपि ।।
(कीर्तिकौमुदी, ४/५५,५९)

इस परिस्थिति को और अधिक विषम बनाने के लिए गोद्रट और लाट जनपद के नृपति भी सम्मिलित रूप से पीछे से आक्रमण कर बैठे। प्रथमतः वे योद्धाओं के साथ बड़ी वीरता से लड़े। पुनः पीछे से शत्रुओं के सम्मिलित आक्रमण को देखकर उनके समक्ष युद्ध करने पहुँच गये। इस समय दक्षिण की शत्रु-वाहिनी इतना जर्जर हो गई थी, कि उसमें पृष्ठ से आक्रमण करने की शक्ति ही नहीं थी। जिस समय राजा इस विध्वंसात्मक युद्ध में व्यस्त था, उसी समय सिन्धुराज के पुत्र शङ्ख ने मंत्री वस्तुपाल के पास एक गुप्तचर भेजा। दूत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने मंत्री से यदुओं के साथ किये गये भयङ्कर युद्ध में शङ्ख की वीरता का वर्णन किया, यद्यपि शङ्ख पकड़कर वन्दी बना लिया गया था। गुप्तचर ने यह भी कहा कि यदि मंत्री स्तम्भपुर को समर्पित कर देता है तो वह उस प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त गुप्तचर ने मंत्री को भयभीत करने का प्रयत्न भी किया। वस्तुपाल के मन में आशा और भय की तरंगे उठी, परन्तु न्याय के सम्बल को पकड़े हुये, वह अडिग रहा। उसने गुप्तचर से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि राजा लवणप्रसाद का इस जनपद पर एक विजेता के रूप में अधिकार है अतः समर्पण किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। क्रोधित मंत्री ने स्पष्टतः घोषित कर दिया कि वह किसी भी समय शङ्ख से युद्ध करने के लिये तैयार है :—

श्रुत्वा वचः सचिवचक्रशतक्रतोस्तद्, भूयोऽप्यभाषत रुषा परुषाक्षरं सः।
आः! किं ब्रवीषि भदमन्दमतिस्त्वमेवं? देवस्य तस्य नियतं नहि वेदिताऽसि॥
(कीर्तिकौमुदी, ४/८९)

सिन्धुराज के साथ गुर्जरेश्वर का संग्राम

मंत्री वस्तुपाल की इस अवज्ञा को सुनकर शङ्ख क्रोधित हो उठा। उसने वटकूप नामक सरोवर की ओर युद्ध करने के लिये प्रयाण किया। आक्रमण होने पर मंत्री वस्तुपाल ने विजित नगर स्तम्भपुर की अत्यधिक वीरता से रक्षा की। शत्रु-सैन्य विशाल होने पर भी गुल परिवार के भुवनपाल ने मन्त्री की ओर से राजा शख के ऊपर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसी समय शंख के एक राजमित्र सामन्त ने भुवनपाल के ऊपर भी आक्रमण कर दिया। भुवनपाल ने सामन्त को समाप्त कर शङ्ख के ऊपर आक्रमण कर दिया। भुवनपाल का युद्ध पौरुष खण्डित नहीं हुआ, यद्यपि उसके शरीर के शङ्ख द्वारा टुकड़े टुकड़े कर डाले गये :—

शङ्खेन खड्गघातैस्तैः, खण्डंखण्डंकृतं वपुः।
सङ्ख्येभुवनपालस्य, पौरुषं न तु खण्डितम्॥ (कौ०, ५/४८)

भुवनपाल के निधन को सुनकर मंत्री वस्तुपाल अत्यधिक युद्ध करने लगे। अब रणक्षेत्र में घमासान युद्ध होने लगा और दोनों पक्षों के सैकड़ों वीर काल-कवलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गये। अन्त में शत्रु ने मंत्री को अजेय समझकर संधि कर ली तथा अपनी हताहत बिखरी हुई सेना को युद्ध-क्षेत्र से वापस ले गये। विजय श्री मंत्री को मिली, अतः मार्ग में मंत्री का प्रजा के द्वारा अभिनन्दन किया गया :—

श्रीवस्तुपालेन बलान्निरस्तां, तां दुस्तरामापदमाकलय्य ।

महोत्सवानांकृतप्रवृत्ति, वीतोपसर्गः पुरवासिवर्गः ।। (कौ०, ९/१)

इस विजय के उपलक्ष में स्तम्भतीर्थ के निवासियों ने देवी एकल्लवीरा के मन्दिर में उत्सव मनाया। देवी का यह मन्दिर नगर के बाहर स्थित था। इस अवसर पर राजा ने मन्दिर में पहुँच कर देवी की अर्चना की। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य आगे बतलाता है कि लवणप्रसाद ने अपने पुत्र के साथ दक्षिण के आक्रमण को पराभूत किया। साथ ही साथ पड़ोसी सम्मिलित राजाओं की शक्तियों को जर्जरित कर दिया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि महामात्य वस्तुपाल को ही अनहिलवाड़ की सत्ता को पुनः स्थापित करने का श्रय प्राप्त है। नायक वस्तुपाल के कारण ही महाकाव्य के अधिकांश सर्ग राजनैतिक घटनाओं से प्रभावित हैं। कीर्तिकौमुदी के तृतीय सर्ग में वस्तुपाल के वंश का वर्णन प्राप्त होता है (१–५०)। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य के अतिरिक्त सोमेश्वरदेव की आबूप्रशस्ति महामात्य वस्तुपाल तथा तेजपाल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करती है। आबू प्रशस्ति में वस्तुपाल के परिवार के सदस्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। परिवार के सदस्यों में वस्तुपाल की धर्मपत्नी ललितादेवी, पुत्र जयन्तसिंह, भ्राता तेजपाल तथा उसकी पत्नी अनुपमा, बड़े भाई मल्लदेव एवं उनकी पत्नी तथा पुत्र का उल्लेख प्राप्त होता है। कवि जैत्रसिंह की प्रशंसा करते हुये कहता है:—

यः शैशवे विनयवैरिणिवोधवन्ध्ये धत्ते नयं च विनयं च गुणोदयं च ।

सोऽयं मनोभवपराभवजागरूकरूपो न कं मनसि चुम्बति जैत्रसिंहः ।।

(आबू प्रशस्ति, १/४५)

गिरनार शिलालेख के गद्यभाग भी वस्तुपाल के परिवार के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना देते हैं। यही नहीं, गद्यभाग गुजरात के मध्यकालीन हिन्दू इतिहास को जानने के लिये उपादेय श्रोत हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि सोमेश्वरदेव का महाकाव्य सुरथोत्सव यद्यपि एक पौराणिक काव्य है। उसमें वर्णित कथानक मार्कण्डेय पुराण से लिया गया है जिसके नायक राजा सुरथ हैं। राजा सुरथ का वर्णन जिन परिस्थितियों के साथ सुरथोत्सव महाकाव्य में प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार की परिस्थितियाँ तत्कालीन गुर्जरनृपति भीमदेव द्वितीय के साथ थी, जिसकी सूचना हमें कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से मिलती है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि सोमेश्वरदेव को तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों ने इस प्रकार के महाकाव्य को लिखने के लिये प्रेरित किया है, जिसके नायक को अन्त में विजय श्री प्राप्त होती है।

निष्कर्ष यह है कि कवि के महाकाव्य तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित है। कवि का कीर्तिकौमुदी महाकाव्य तो तत्कालीन राजनैतिक इतिहास को जानने के लिये प्रमुख प्रामाणिक स्रोत है।

धार्मिक प्रवृत्तियाँ

गुर्जर प्रदेश में महाकवि सोमेश्वरदेव के समय वैष्णव, शैव तथा जैनधर्म आदि का समान रूप से प्रचलन था। चालुक्य राजाओं के द्वारा इन सभी प्रकार के धर्मों को प्रोत्साहन मिला। जैन धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म का अधिक प्रचार था। कवि सोमेश्वरदेव स्वयं वैष्णव थे, किन्तु उन्होंने जैन मन्दिरों की प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं। कवि के महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित तथा प्रशस्तियाँ उस समय की धार्मिक प्रवृत्तियों से विशेष रूप से प्रभावित हैं। कवि के काव्यों में प्राप्त उसी धार्मिक प्रवृत्ति के प्रभाव को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से ज्ञात होता है कि राजधानी अणहिलपत्तन में कहीं वेद पाठ, कहीं मंगलगीत तथा कहीं वन्दिजनों का कोलाहल होता है, जिससे नगर मुखरित हो रहा है :—

कुत्रापि श्रुतिनिर्घोषैः, क्वचिन्मङ्गलगीतिभिः ।
वन्दिकोलाहलैः क्वापि, यत् सदा मुखरं पुरम् ॥(१/५२)

उस समय केवल वेद-पाठ ही नहीं अपितु विधिवत् यज्ञ भी सम्पादित होते थे। नगर में आकाश तक जाने वाला यज्ञ-धूम ऐसा ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश-गंगा के साथ यमुना प्रवाहित हो रही हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि के उल्लाघराघव नाटक से भी ज्ञात होता है कि उस समय यागादि नियमत: सम्पादित होते थे(१/५५)।

शिवोपासना

गुर्जर प्रदेश में शिवोपासना का अत्यधिक प्रचार था। अत: कवि सोमेश्वर देव भी कर्म-बन्धन से मुक्ति पाने के लिये कहते हैं कि — 'जिनके स्मरण से मैं शुभ और अशुभ कर्मों से मुक्त हो जाता हूँ, उन कामदेव के शत्रु शिव को स्मरण करता हूँ :—

तं स्मरामि स्मरामित्रं येनास्मि स्मरणादपि।
शुभानामशुभानां च कर्म्मणामनृणीकृत: ।। (कर्णा०,२)

कवि को विश्वास है कि शिव क्षमा करने में सबसे अधिक उदार हैं अत: वह प्रार्थना करता है — 'अपनी किरणों से मुख को स्पर्श करने वाले चन्द्र को जो अपने मस्तक पर धारण करते हैं तथा जो क्षमा करने में अग्रणी हैं, ऐसे विश्वैकनाथ शिव को मैं नमस्कार करता हूँ :—

क्षमावतामाद्यतमाय तस्मै विश्वैकनाथाय नमस्करोमि।
वक्त्रं च पादैरपि च स्पृशन्तं दोषाकर: य: शिरसाविभर्ति ।।
(सुरथोत्सव, १/११)

कवि चन्द्रमा तथा गङ्गा से सुशोभित शिव से रक्षा की कामना करता है। शिव के इस रूप को देखकर कवि ने एक नवीन कल्पना प्रस्तुत की है। वह कहता है कि—' वह शिव आप लोगों की रक्षा करें, जिनके शिर पर गङ्गा विराजमान् है। उस गङ्गा के पास ही कृशगात चन्द्रमा अपने मित्र कामदेव के दु:ख से हाथ के समान ऊर्ध्वगामी किरणों को लिये हुये मानो तपस्या कर रहा है —

स्मरद्विष: पातु शिर: सरिद्व: कृशं वपुर्यत्सविधे दधान:।
दु:खेन सख्यु: कुसुमायुधस्य तपस्यतीवोर्ध्वकर: सुधांशु: ।।
(सुरथोत्सव, १/१२)

कामदेव को समाप्त करने वाले शिव का वर्णन करने के अनन्तर पार्वती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ क्रीड़ा करने वाले शिव से कवि प्रीति की कामना करता है। श्लेष के माध्यम से कवि का कथन है कि— पार्वती के साथ क्रीड़ा करते हुये और उन्नत उरोजों को देखकर मस्तक पर विराजमान चन्द्र उल्लसित हो रहा है, ऐसे शिव आप लोगों पर प्रीति करें :—

कुर्वन् गिरिभुवि क्रीडां दृष्टोन्नतपयोधरः ।
उल्लसच्चन्द्रकः प्रीतिं, नीलकण्ठः करोतु वः ।। (की०, १/२)

शिव की उपासना करने के अनन्तर कवि पार्वती-परमेश्वर से कल्याण की कामना करता है। उल्लेखनीय है कि कवि ने युगल देवताओं की अनेक बार वन्दना की है, उन्ही में से पार्वती-शिव से सम्बन्धित एक श्लोक प्रस्तुत है :—

जटा—सीमन्तकान्तं वः, श्रियेऽस्तु शिवयोर्वपुः ।
तातेत्यम्बेति वाऽऽहूत, गुहेन प्रतिवक्ति यत् ।। (की०, १/३)

अर्थात् जटा और केशपाश से शिव और शिवा का युगल शरीर सुशोभित हैं, उनको कुमार-कार्तिकेय के द्वारा 'तात' तथा 'अम्बा' कहकर पुकारे जाने पर प्राप्त होने वाला उनका प्रतिवचन आप लोगों का कल्याण करे।

संस्कृत-महाकाव्यों में युगल देवों की वन्दना प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश के मंगलाचरण में पार्वती-परमेश्वर की वन्दना करते हुये कहते हैं — 'शब्द और अर्थ की भाँति जुड़े हुये, शब्द और अर्थ के ज्ञान के लिये मैं कालिदास जगत् के माता और पिता पार्वती तथा परमेश्वर की वन्दना करता हूँ (रघुवंश,१/१)। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में सोमेश्वरदेव ने शिव-केशव के युगल शरीर से प्रसन्नता की कामना की है शिव-केशव का युगल शरीर आप लोगों को प्रसन्नता प्रदान करे, जिसको कामदेव भय तथा प्रेम पूर्वक प्रणाम करते है (की०,१/४)।

प्राचीन परम्परा के आधार पर ही कवि ने उपर्युक्त युगल देवों की वन्दना की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिव की विविध रूपों में वन्दना की गई है। शिव की पार्वती के साथ वन्दना की गई है, शिव की कृष्ण के साथ वन्दना की गई है और केवल शिव के प्रति तो कवि ने अनेक श्लोकों में अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भक्ति भाव व्यक्त किये हैं। ये वर्णन प्रमाणित करते है कि गुर्जर प्रदेश में शैवोपासना व्यापक रूप से प्रचलित थी।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से ज्ञात होता है कि अधिकांशत: चालुक्य राजा शैव थे। शिव की उपासना प्रत्येक घर में होती थी। चालुक्य राजाओं ने हिमालय तुल्य मन्दिर भी निर्मित कराये थे। कीर्तिकौमुदी महाकाव्य से ही ज्ञात होता है कि तीर्थयात्रा करते हुये जैन मतावलम्बी महामात्य वस्तुपाल ने भी सोमनाथ की अर्चना की :–

अभ्यर्च्य भक्त्या भवमत्रतीर्थे, श्रीसोमनाथाभिधयाप्रसिद्धम् ।
प्रत्तप्रसूनाञ्जलिना प्रदत्तो , जलाञ्जलिस्तेन पुनर्भवाय ॥(९/७१)

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता हैं कि जैन मतावलम्बी भी शिवोपासना करते थे। इस प्रकार सिद्ध होता है कि तत्कालीन धार्मिक-जगत् में सोमनाथ अधिक प्रसिद्ध थे। समाज में शिव नाम की ही व्यापकता है कि कवि का स्व नाम सोमेश्वर भी शिव का ही पर्याय है। इसी प्रकार सोमनाथ तथा सोमेश्वर नाम शिव की लोक प्रियता के प्रतीक है।

शक्तिपूजा

तत्कालीन समाज में दुर्गा पुजा का विशेष महत्व था। महामात्य वस्तुपाल स्वयं विजय के उपलक्ष में देवी एकल्लवीरा के दर्शन करने गये और वहाँ देवी की शुद्ध मूर्ति की मधुपर्क अर्थात् दुग्ध, दही, मधु, घृत, शर्करा, एवं जल पुष्प, कर्पूर, कृष्णागुरु तथा चन्दन से अर्चना की। वस्तुपाल ने देवी के कमलवत् मुख में स्थिति दन्त पंक्तियों में कर्पूर समर्पित किया। अत: वह साक्षात् हास के समान प्रतीत हो रही थी और उनके इस रूप से महामात्य केहृदय में अत्यधिक हर्ष प्रवाहित हो रहा था :—

चकारदेवी वदनारविन्दे, स दन्तपङ्क्तिं घनसारखण्डैः ।
हर्षं वहन्ती हृदि सप्रकर्षं, साक्षात् सहासेव बभौ यया सा ॥
(कीर्तिकौमुदी, ६/३८)

दुर्गा के माहात्म्य से कवि सोमेश्वर देव अत्यधिक प्रभावित हुये हैं। कवि रचित सुरथोत्सव महाकाव्य इसी प्रभाव का प्रतिफल है। सुरथोत्सव के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण पन्द्रह सर्गों में कवि की दुर्गा के प्रति अटूट निष्ठा पद-पद में आभासित होती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज़ में दुर्गा-पूजा कितनी व्यापक थी। कवि ने सुरथोत्सव के मंगलाचरण में दुर्गा के प्रति कतिपय श्लोक रचे हैं, जिनमें अधोलिखित छन्द कवि का हृदयोद्‌गार प्रतीत होता है :–

स वः शिवायाश्चरणः श्रियेऽस्तु रक्ताक्षरक्तोक्षितमाहवेयम्।
प्रक्षालयन्ति स्म समं नमन्तः प्रमोदवाष्पाम्बुभिरेव देवाः ॥

(सुरथोत्सव,१/२)

अर्थात् भगवती दुर्गा का वह चरण कल्याणप्रद बने, जो युद्ध के अन्दर रक्ताक्ष असुरों के रक्त से सिक्त होते ही देवताओं के प्रमोदाश्रुओं के द्वारा प्रक्षालित कर दिया गया। इस प्रकार असुर-नाशिनी दुर्गा के प्रति कवि की यह श्रद्धा सम्पूर्ण महाकाव्य में निरन्तर व्यक्त होती है।

रामोपासना

सोमेश्वरदेव के समय गुर्जर प्रदेश में राम की उपासना प्रचलित थी, यही कारण है कि कवि ने राम की स्तुति में **रामशतक** स्त्रोत्र तथा राम के मर्यादित चरित को उल्लाघराघव नामक नाटक में प्रस्तुत किया है। रामशतकम् में कवि राम के जीवन-चरित की प्रशंसा करते हुये स्तुति करता है। कवि का कथन है कि विभिन्न व्यक्ति अपनी दृष्टि से राम का दर्शन करते हैं—पिता ने पूर्व पुण्य के फल के रूप में, कौसल्या ने अन्तरात्मा के रूप में, तीनो माताओं ने साक्षात् अक्षय प्रेमनिधि के रूप में, अमात्यों ने नीति मूर्ति के रूप में और ज्ञानियों ने परमपुरुष के रूप में जिन्हें पहचाना ऐसे युवावस्था प्राप्त कर रहे राघव आप सबकी श्री दृढ़ करे।

पुण्यानां प्राक्तनानां फलमिति जनकेनान्तरात्मेतिमात्रा,
साक्षादक्षीयमाणः प्रणयनिधिरितिमातृभिश्चत्रिभिर्यः।
नीतिमूर्त्तेत्यमात्यैःपरपुरुष इति ज्ञानिभिर्ज्ञायमानः,
प्राप प्रौढिं क्रमेण द्रढयतु निरघां राघवः स श्रियं वः ॥

(रामशतकम्, ६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार स्तोत्र के प्रत्येक छन्द में लोक मंगल की कामना स्पष्टतः प्रतिभाषित होती है। समाज के लिए कवि की यही महत्वपूर्ण देन है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज की भक्तिभाव पूर्ण नाटकीय परम्पराओं से प्रभावित होकर कवि ने **उल्लाघराघव** नामक नाटक की रचना की है। कवि सोमेश्वर-देव नाटक के प्रथम अंक में ही कहते हैं कि रघुराज के प्रमुख रामचन्द्र की जय हो जिनकी कीर्ति तीनों लोकों में सैकड़ों बार सुनने के अनन्तर भी नवीन ही रहती है तथा उन आदि कवि वाल्मीकि की जय हो, जिनकी रामायण के रूप में उक्ति चित्त को प्रसन्न करती है :—

स जयति रघुराजग्रामणी रामचन्द्रः,
स च जयति कवित्वोत्पत्तिमूलं मुनीन्द्रः।
त्रिजगति शतधाऽपि श्रूयमाणा नवेव,
प्रसदयति यदीया कीर्तिरुक्तिश्च चेतः॥

(उल्लाघराघव, १/५)

उस समय राम के चरित का गुणगान विविध रूपों में सामाजिकों के सम्मुख हुआ करता था। नाटक भी एक महत्वपूर्ण माध्यम था। सूत्रधार कहता है कि श्रीकुमार के पुत्र सोमेश्वर देव रचित स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त कृति उल्लाघराघव नाटक में विष्णु के राम रूप का उदार चरित चित्रित है। पूर्वकृत पुण्यों के कारण यह सज्जन समाज उपस्थित हुआ है, अतः हम लोग इस नाटक का अभिनय करें (उल्लाघराघव १/६)। सूत्रधार के इस कथन से सिद्ध होता है कि राम चरित के प्रति जन-जन में श्रद्धा थी।

कृष्णोपासना

गुर्जर प्रदेश में तेरहवीं शताब्दी में कृष्णभक्ति का भी प्रचार था। राम के समान ही सोमेश्वर देव ने कृष्ण के प्रति भी अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। यह भी कहा जा सकता है कि सोमेश्वर देव की दृष्टि में राम और कृष्ण समान ही थे, क्योंकि राम चरित वर्णन परक उल्लाघराघव के नमस्कारात्मक मंगलाचरण में कृष्ण की ही वन्दना की गयी है। उल्लाघराघव का ही एक अन्य श्लोक द्रष्टव्य है :—

कालिन्दीतट गह्वरे विहरतो गोपीजनस्येच्छया,
राधावक्षसि विक्षिपन्नुरसिजस्पर्शाभिलाषात् करम्।
दृष्टस्तत्र विशाखया कुपितया काऽप्यस्य लक्ष्मीरहो!,
हारस्येति मिषान्निजाशयमुपह्नोता हरिः पातु वः॥ (१/३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोपियों की इच्छा के अनुसार यमुना के तट पर कन्दराओं में विहार करते हुए, स्तन स्पर्श की अभिलाषा से राधा के वक्षस्थल पर हाथ रखते हुए वे श्री कृष्ण जो क्रुद्ध गोपी विशाखा के द्वारा देखे जाने पर 'इस हार में कितनी कान्ति है' यह कहते हुये अपने कृत्य को जिन्होंने छिपाया, वे कृष्ण आप लोगों का कल्याण करें।

उल्लाघराघव के अतिरिक्त कर्णामृतप्रपा में भी कवि ने कतिपय छन्दों में कृष्ण की भक्ति पूर्वक वन्दना की है। कवि कहता है कि इस अपार भव सागर में मैं डूब रहा हूँ, हे कृष्ण! मेरा उद्धार कीजिए। कवि आगे कहता है कि हे देव! तुम्ही माता हो, तुम्ही जनक हो, तुम्ही स्वामी हो तथा तुम्ही परमार्थ गति हो। हे गदाधर! तुम्हारा पुत्र दुस्तर समुद्र में डूब रहा है, उसका उद्धार कीजिये :—

देव! त्वमेव जनको जननी त्वमेव
स्वामी त्वमेव परमार्थगतिस्त्वमेव ।
तद्दुस्तरे दुरितवारिधिवारि पूरे
मज्जन्तमुद्धर गदाधर पुत्रकं वा ।। २१५ ।।

अन्त में कवि सांसारिक बाधाओं से मुक्ति पाने के लिए श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना करता है :—

त्वमपि न तथा तात! ध्यातः प्रमादितया मया
फलमभिमतं निःशङ्कस्त्वत्वां यथाऽहमिहार्थये ।
तदपि करुणात्मानं मत्वा भवन्तमुपाश्रित-
स्तदवतु जवान्मामेतस्माद् भवाभिभवाद् भवान् ।। २१६ ।।

वास्तव में सोमेश्वर देव ने कृष्ण के सम्बन्ध में कतिपय श्लोक ही रचे है जबकि राम की स्तुति में रामशतक तथा उल्लाघराघव नामक स्वतन्त्र रचनायें रची हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने कृष्ण की अपेक्षा राम का गुणगान अधिक श्लोकों में किया है।

गङ्गा-वर्णन

कवि ने कर्णामृतप्रपा में गंगा की पवित्रता एवं माहात्म्य के प्रति कतिपय श्लोकों में अपने सरस भावों को प्रस्तुत किया है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

''वह पाप जो कि संसार-ज्वर के कारण घोर निद्रा में डूबो डालता है, वही यदि तेरे हृदय के जला रह है तो शिव नयनाग्नि पर पकाये गये अतएव रोग हर गङ्गा जल को पी डालो यह तथ्य कह रहा हूँ' (१९२)। कवि पुनः कहता है कि हे भगवति भागीरथि! वह पुण्यात्मा व्यक्ति जो कि संसार रूपी दावाग्नि से जलते हुए उस परमानन्द परब्रह्म में गोता मारता है, निर्मल जल से भरे हुए तेरे तीर में वह पुण्यात्मा ही वास करता है (१९५)।

जैनधर्म

सनातन धर्म के अतिरिक्त इस काल में जैन धर्म का भी व्यापक प्रचार हुआ। यही कारण है कि सोमेश्वर देव स्वयं वैष्णव होते हुये भी उन्होने आबू-प्रशस्ति तथा गिरनार के शिला लेखों की रचना की है। कवि की ये रचनाएँ जैन मन्दिरों से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त कवि के मित्र महामात्य वस्तुपाल तथा तेजपाल जैन मतावलम्बी थे। **कीर्तिकौमुदी** के नवें सर्ग में वस्तुपाल द्वारा की गयी जैन तीर्थ स्थानों की यात्रा का मनोरम वर्णन प्राप्त होता है। इस संघ यात्रा में जिन्हें वाहन की आवश्यकता थी, उन्हें वाहन दिया गया, जिन्हें धन की आवश्यकता थी, उन्हें धन दिया गया। जिन्हे वस्त्र की आवश्यकता थी, उन्हें वस्त्र दिया गया (९/११)। वस्तुपाल संघ-व्रत का पालन कर रहे थे। सभी यात्रियों के भोजन कर लेने पर भोजन करते थे। सभी यात्रियों के सोने पर सोते थे तथा सबसे पहले जागते थे। मार्ग में यात्री अनेक प्रकार की वस्तुओं की वस्तुपाल से याचना करते थे। प्रभूत वस्तुओं को देते हुए वस्तुपाल न अहंकार करते थे और न क्रोधित होते थे :—

अभ्यर्थ्यमानः पथिकैरनेकैर्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छन्, नाहङ्करोतिस्म न कुप्यति स्म॥

(कीर्तिकौमुदी, ९/१५)

कीर्तिकौमुदी का नवम सर्ग संघ-यात्रा के वर्णन से विशेष रूप से प्रभावित है। कवि ने यात्रा की एक-एक क्रिया को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कवि आगे कहता है कि हर्ष से रोमाञ्चित सामाजिक-जन मार्ग में वस्तुपाल का यश वर्णन करने के लिए उचित जैन मतावलम्बी गीतों का गान कर रहे थे। आश्रितों के कष्ट को हरने वाले वस्तुपाल ने मार्ग में जिनेश्वरों की जितनी मूर्तियाँ थी और श्वेताम्बरों के जितने सम्प्रदाय थे, उनकी पूजा करने के अनन्तर आगे प्रस्थान किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थ यात्रा के समय उन्होंने मार्ग में मन्दिरों का जीर्णोद्धार व विस्तार कराया तथा कूपों को खुदवाया। कीर्तिकौमुदी से यह ज्ञात होता है कि वस्तुपाल यात्रा करते हुए सर्व प्रथम शत्रुञ्जय तीर्थ-स्थान पर पहुंचे (९/२१) वहां पर उन्होने आदि नाथ तथा पार्श्वनाथ के दर्शन किए। शत्रुञ्जय से बढ़कर मन्त्री रैवतक पहाड़ी पर गये, जहाँ पर नेमिनाथ की पूजा की। रैवतक पर कई दिन रुक कर शिव की उपसाना के लिए वस्तुपाल प्रभासपट्टण गये जो कालान्तर में सोमनाथ के नाम से पुकारा जाने लगा। वहां पर वस्तुपाल ने शिव की भी अर्चना की।

वस्तुपाल की इस संघ-यात्रा से तत्कालीन जैनधर्म के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञान होता है। जहाँ एक ओर कवि के काव्य जैन धर्म से प्रभावित हैं, वहीं कवि ने राम, कृष्ण, शिव, गणेश, नृसिंह, सरस्वती तथा अन्य वैष्णव देवी देवताओं की वन्दना अनेक बार प्रस्तुत की है। निष्कर्ष यह है कि धर्म के प्रति कवि की विशेष निष्ठा है। इसीलिए कीर्तिकौमुदी में उन्होंने बतलाया है कि शरीरधारियों की एक मात्र गति धर्म है :—

State Museum Library 17623

बिधौ विध्यति सक्रोधे, वर्म धर्मः शरीरिणाम्।
स एव केवलं तस्मादस्माकं जायतां गतिः ॥
(की० कौ० ८/५६)

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि रचित कर्णामृतप्रपा में लक्ष्मी, काम, लोभ, कलिस्वरूप, मनस्वी, विधि, निर्वेद, शम तथा उपदेश आदि वर्णन कवि की उपर्युक्त भावना के अनुरूप ही रचे गये हैं, जिन्हें पढ़कर ज्ञात होता है कि कवि धार्मिक भावना से ओतप्रोत्र है। यही कारण है कि कवि के महाकाव्य, नाटक, स्तोत्र, सुभाषित, प्रशस्ति आदि सभी रचनाएं तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियों से पूर्णतः प्रभावित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ-सूची

1. Dr. V. S. Agrawal, quoted by prof Gode, Journal of the Oriental Studies, Vol. I, Page 16.

2. Handiqui, K., Yashastilaka And Indian Culture, Shalapur, 1949, Page 123.

३. राजशेखर, प्रबन्धकोश –सम्पादक जिनविजय मुनि, अहमदाबाद, १९३५ ई०, पृष्ठ १२१ तथा जिन हर्ष-वस्तुपाल चरित, सम्पादक मुनि कीर्तिविजय, अहमदाबाद, १९४१ ई०, सर्ग ७ पृष्ठ ३७७-८४।

४. मेरुतुंग–प्रबन्ध चिन्तामणि, सम्पादक मुनि जिन विजय, अहमदाबाद तथा कलकत्ता, १९३३ ई० पृष्ठ १०४।
तथा रत्नमन्दिरगणि, उपदेश तरंगणी, बनारस, वीरसंवत् २४३७, पृष्ठ ७६।

५. लेख पद्धति–सम्पादक सी० डी० दलाल तथा जी० के० गोन्देकर, बड़ोदा १९२५ ई० पृष्ठ ३५, ३६ तथा ३७।

६. प्रबन्धकोश पृष्ठ ११६ तथा रत्नमंदिरगणि, उपदेश तरंगिणी पृष्ठ ७४।

७. पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ ७४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाकवि सोमेश्वरदेव का वंशवृक्ष

सोल शर्मा
|
लल्ल शर्मा
|
मुञ्ज
|
सोम
|
आम शर्मा
|
कुमार
|
सर्वदेव
|
आमिग

- आमिग के पुत्र: सर्वदेव | कुमार | मुञ्ज | आहड
  - कुमार के पुत्र: महादेव | सोमेश्वरदेव | विजय
    - सोमेश्वरदेव
      |
      लल्ल शर्मा
      |
      हरसिद्ध भाई दिवेटिया*
      |
      सुनयना दिवेटिया

---

* गुजरात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति स्वर्गीय श्री हरसिद्ध भाई दिवेटिया महाकवि के वंशज थे। उनकी पुत्री सुनयना दिवेटिया वर्तमान समय में बड़ौदा विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में रीडर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुशीलित ग्रन्थ-सूची

(अ) महाकवि सोमेश्वर देव की कृतियाँ

१. सुरथोत्सव महाकाव्य—सम्पादक पं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, काव्य-माला सीरीज, ग्रन्थांक ७३, बम्बई १९०२ ई० ।

२. कीर्तिकौमुदी महाकाव्य—सम्पादक श्री पुण्य विजय सूरि, भारतीय विद्या-भवन, बम्बई, १९६१ ई० ।

३ उल्लाघराघव नाटक—सं० श्री पुण्य विजय सूरि तथा डा० बी० जे० सांडे-सरा, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६१ ई० ।

४. रामशतक स्तोत्र—सं० श्री पुण्य विजय सूरि तथा डा० बी० जे० सांडेसरा गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६५ ई० ।

५. कर्णामृतप्रपा-सुभाषित संग्रह-सं० पद्म श्री जिन विजय मुनि, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६३ ई० ।

६. आबू प्रशस्ति—सं० जिन विजय, जो प्राचीन जैन लेख संग्रह नं० ६५, जैन धर्म प्रचारक सभा, भावनगर, १९२१ ई० ।

७. गिरनार शिलालेख-सं० जिन विजय जी, प्राचीन जैन लेख संग्रह नं० ३८-१, तथा ४०-३ ।
भवदत्तशास्त्री तथा के० पी० परब-प्राचीन लेखमाला, नं० १६८ तथा १७०, बम्बई, १९०३ ई० ।

८. वैद्यनाथ प्रशस्ति–Burgess, Jas., Epigraphia Indica Vol. I, Calcutta, 1892, Page 20.
Acharya, G.V., Historical Inscriptions of Gujarat. Vol. I, No. 215 Bombay 1933.

९. वीरनारायण प्रासाद प्रशस्ति—देखिये पृष्ठ ७३ ।

१०. प्रकीर्ण श्लोक—देखिये पृष्ठ ७३ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ब) सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत तथा हिन्दी

१. ऋग्वेद–वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९४१ ई० ।

२. दुर्गासप्तशती–सं० पं० हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर संवत् २०२७ ।

३, पाणिनीय शिक्षा–सं० मनमोहन घोष, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३८ ई० ।

४. मार्कण्डेय पुराण–कलकत्ता, १९०४ ई० ।

महाकाव्य तथा काव्य

५. उपदेशतरंगिणी–रत्नमंदिरगणि, बनारस, वीर संवत्, २४३७ ।

६. कुमारपालचरित–जयसिंहसूरि, सम्पादक शान्ति विजय गणि, बम्बई, १९२६ ई० ।

७. किरातार्जुनीय–भारवि, सम्पादक पं० गौरीनाथ पाठक, शारदा भवन, काशी । १९३१ ई० ।

८. द्व्याश्रयमहाकाव्य–हेमचन्द्र, सं० ए० बी० काथवटे, वाल्यूम प्रथम तथा द्वितीय बम्बई १९१५ व २१ ई० ।

९. धर्माभ्युदय–उदयप्रभसूरि, सं० मुनि पुण्य विजय, बम्बई १९४९ ई० ।

१०, नलचम्पू–त्रिविक्रम भट्ट, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६७ ई० ।

११. नैषधीयचरित–श्री हर्ष, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९५२ ई० ।

१२. प्रबन्ध चिन्तामणि–मेरुतुंग, सं० मुनि जिन विजय अहमदाबाद तथा कलकत्ता १९३३ ई० ।

१३. प्रबन्ध कोश अथवा चतुर्विशति प्रबन्ध–राजशेखरसूरि, सम्पादक जिन विजय मुनि, अहमदाबाद, १९३५ ई० ।

१४. पुरातन प्रबन्ध सग्रह–सं० जिन विजय मुनि अहमदाबाद तथा कलकत्ता, १९३६ ई० ।

१५. रघुवंश–कालिदास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६१ ई० ।

१६. लेखपद्धति–सं० सी० डी० दलाल तथा जी० के० श्री गोन्देकर बड़ौदा १९२५ ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१७. **वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति**–वीर सूरि के शिष्य जयसिंह सूरि, हम्मीर मदमर्दन नाटक के परिशिष्ट में प्रकाशित, बड़ौदा, १९२० ई० ।

१८. **बसन्त विलास**–बाल चन्द्र सूरि, सं० सी० डी० दलाल, बड़ौदा, १९१७ ई० ।

१९. **वस्तुपाल चरित**–जिनहर्ष, सं० मुनि कीर्ति विजय, अहमदाबाद, १९४१ ई० ।

२०. **शिशुपालबध**–माघ, सं० हरिगोबिन्द शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९६१ ई० ।

काव्य शास्त्र

२१. **अभिनव भारती**–अभिनव गुप्त, यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, १९६० ई० ।

२२. **अलंकारसर्वस्व**–रुय्यक, काव्यमाला ३५, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, द्वितीय संस्करण, १९३९ ई० ।

२३. **काव्यालंकार**–भामह, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२८ ई० ।

२४. **काव्यालंकार**–रुद्रट, काव्यमाला-२, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय संस्करण, १९०९ ई० ।

२५. **काव्य मीमांसा**—राजशेखर, सम्पादक सी० डी० दलाल तथा आर० ए० शास्त्री, तृतीय संस्करण, बड़ौदा, १९३४ ई० ।

२६. **काव्यानुशासन**—हेमचन्द्र, सँ० आर० सी० पारिख, बम्बई, १९३८ ई० ।

२७. **काव्यादर्श**–दण्डी, व्याख्याकार आचार्य राम चन्द्र मिश्र, चौखम्भा, विद्याभवन वाराणसी, १९५८ ई० ।

२८. **चन्द्रालोक**–जयदेव, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी १९६६ ई० ।

२९. **ध्वन्यालोक**–आनन्द वर्धन, सम्पादक जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ई० ।

३०. **भक्ति रसायन**–मधु सूदन सरस्वती, कलकत्ता, संवत् १९६९ ।

३१. **रसगंगाधर**–पण्डितराज जगन्नाथ, सं० पं० बदरीनाथ झा तथा पं० मदनमोहन झा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९६४ ई० ।

३२. **सरस्वती कण्ठाभरण**–भोजदेव, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, द्वितीय संस्करण, १९३४ ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३३. साहित्य दर्पण–कविराज विश्वनाथ, सं० श्री शालग्राम शास्त्री, मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, १९६७ ई० ।

३४. हिन्दी काव्य प्रकाश–डा० सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६० ई० ।

३५. हिन्दी दश रूपक–धनञ्जय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६७ ई० ।

३६. हरिभक्ति रसामृत सिन्धु—रूपगोस्वामी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, १९६२ ई० ।

छन्दःशास्त्र

३७. छन्द शास्त्र–पिंगलाचार्य, सं० पं० केदारनाथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३८ ई० ।

३८. छन्दो मञ्जरी–सं० रामधन भट्टाचार्य, कलकत्ता, संस्कृत सीरीज, १९३५ ई०

३९. सुवृत्त तिलक–क्षेमेन्द्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६८ ई० ।

४०. श्रुतबोध–कालिदास, सं० पं० रामेश्वर भट्ट, श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, १९११ ई० ।

नाटक

४१. अनर्घराघव–मुरारि, सं० आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६० ई० ।

४२. अभिज्ञान शाकुन्तल-कालिदास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणी, १९६४ ई० ।

४३. ऊरुभंग–भास, भासनाटक चक्र, पूना ओरियन्टल सीरीज, पूना, १९६२ ई० ।

४४. उत्तररामचरित–भवभूति, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६९ ई० ।

४५. करुणावज्रायुध–बालचन्द्र, सं० मुनिचतुरविजय, भावनगर, १९१६ ई० ।

४६. प्रसन्न राघव–जयदेव, व्याख्याकार शेषराज शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५६ ई० ।

४७. बाल रामायण–राजशेखर, सं० गोविन्द देव शास्त्री, वाराणसी, १८९६ ई० ।

४८. हम्मीरमदमर्दन–वीरसूरि के शिष्य, जयसिंह, स० सी० डी० दलाल बड़ौदा । १९२० ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तोत्र तथा सुभाषित

४९. कृष्णकर्णामृतम्–लीलाशुक, सं० सुशील कुमार डे, ढाका विश्वविद्यालय, १९३८ ई० ।

५०. चर्पटपञ्जरिका–शंकराचार्य, स्तोत्र रत्नावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१२ ।

५१. मधुसूदन सरस्वती विरचित आनन्द-मन्दाकिनी–अध्ययन और अनुवाद डा० देवदत्त शुक्ल, १९६३ ई० (अप्रकाशित)

५२. सूर्यशतक–मयूरभट्ट, सं० दुर्गाप्रसाद, तृतीय संस्करण, बम्बई, १९२७ ई० ।

५३. शिवमहिम्नस्तोत्र-पुष्पदन्ताचार्य, काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२४ई० ।

५४. शिवापराधक्षमापनस्तोत्र-शंकराचार्य, स्तोत्र रत्नावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१२ ई० ।

५५. सूक्तिमुक्तावली–जल्हण, सं० अम्बर कृष्णमाचार्य, बड़ौदा, १९३८ ई० ।

५६. शतकत्रयम्-भर्तृहरि, सं० अनन्तराम शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९७० ई० ।

इतिहास–ग्रन्थ

५७. संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय, वाराणसी १९५३ ई० तथा अष्टम संस्करण १९६८ ई० ।

५८. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा–चन्द्रशेखर पाण्डेय, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६० ई० ।

गुजराती

१. सोलंकी युगनो श्री अने संस्कृति, नर्मदसुवर्ण चन्द्रकना स्वीकारप्रसंगे–डा० भोगीलाल सांडेसरा नु वक्तव्य, नर्मद साहित्यसभा, सन् १९६४ ई० ।

२. गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास–वाल्यूम् द्वितीय, डी० के० शास्त्री, अहमदाबाद, १९३९ ई० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ENGLISH-SECTION

1. Altekar, A. S., **A history of Important Towns And Cities in Gujarat And Kathiawad**, Bombay 1928.
2. Bhandarkar, R.G., Report IV, **A Report on search of Sanskrit Manuscripts in Bombay Province**, 1883-84, Bombay 1887.
3. Burgess Jas., **Indian Antiquary**, Vols. V, VI, IX, X XI Bombay, 1876, 1877, 1880, 1881 and 1882.
4. Temple, R. C., **Indian Antiquary**, Vols XVIII & XXXI, Bombay 1889 & 1902.
5. Bombay Gazetteer, Vol I Pt I,(History of Gujarat) Bombay 1896.
6. Dassgupta, S. N. & De. S. K., **History of Sanskrit Literature**, Vol. I, Calcutta, 1947.
7. Forbes, A. K., **Rasmala**, oxford, 1924.
8. Handiqui, Krishna Kant, **Yashastilaka And Indian Culture**, Shalapur, 1949.
9. **Journal of Oriental Research**, Madras, Vol XI, year 1937.
10. Keith, A. B., **History of Sanskrit Literature**, oxford 1928.
11. Krishnamchariar, M., **History of Sanskrit Literature** Madras, 1937.
12. Munshi, K.M, **Gujarat Aad Its Literature**, Bombay 1935. **The Glory that was Gurjardesh** Pt III.
13. Macdonell, A. A., **A History of Sanskrit Literature**, Newyork and London, 1929.
14. Sandesara, B. J., **Literary circle of Mahamatya Vastupal And Its contribution to Sanskrit Literature** Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay 1953.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library
7623
Lucknow

लेखक-परिचय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

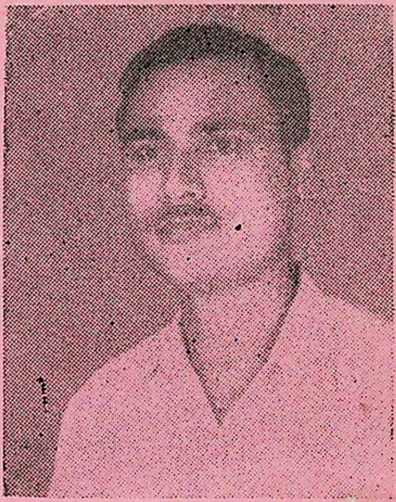

डा० देवदत्त शुक्ल

डा० देवदत्त शुक्ल, एम० ए० (संस्कृत) पी-एच० डी०, साहित्याचार्य, श्री जय नारायण डिग्री कालेज (लखनऊ विश्वविद्यालय) के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक है। लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए एम० ए० परीक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त करने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय द्वारा कु० विमलापुरी तथा सर हरकोर्ट बटलर नामक दो स्वर्ण पदक प्रदान किए गये। उनके लेख अनेक उत्कृष्ट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। समय-समय पर आकाशवाणी से संस्कृत विषय पर उनकी वार्ताएँ भी प्रसारित होती रहती हैं। डा० शुक्ल के आगाभी प्रकाशन इस प्रकार हैं:— आनन्द-मन्दाकिनी-एक अध्ययन; महामात्य वस्तुपाल : व्यक्तित्व एव कृतित्व; गुर्जर प्रदेश का संस्कृत साहित्य को योगदान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मतियाँ

(1) ... . Dr. Shukla's competent study will, I am sure, help foster mutual understanding between provinces having different yet homogeneous cultures

—**Dr. A. N. Jani**

Director, Oriental Institute, Baroda (Gujarat)

(२) ... .यह कार्य सर्वप्रथम किया गया है और इसमें सन्देह नहीं कि मध्यकालीन संस्कृत-साहित्य के लिए यह महत्वपूर्ण देन है।

—आचार्य बदरी नाथ शुक्ल

भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

(३) ... .संस्कृत वाङ्मय के साहित्य विषय में इस ग्रन्थ को अच्छा स्थान प्राप्त होगा, यह मेरा विश्वास है।

—प्रोफेसर को० आ० सुब्रह्मण्य अय्यर

भूतपूर्व कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०)

(४) ... . लेखक का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

—आचार्य आनन्द झा

सम्मानित प्राध्यापक, का०द० संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा (विहार)

(५) ... ... साहित्य और काव्य में रुचि रखने वाले हरेक व्यक्ति के लिए इस ग्रन्थ का अध्ययन अत्यावश्यक है।

—डा० सुरति नारायण मणि त्रिपाठी

डी० लिट०, आई० ए० एस०

भूतपूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

(6) ... ... It is a good piece of research, which evinces the writer's critical approach, scholarly analysis and felicity of expression.

—**Dr. G. M. Bhattacharya**

Ex-Head Dept. of Sanskrit, Kurukshetra University (Hariyana)

(7) ... Dr. Shukla's fresh approach, critical acumen, industrious preparation and full grasp of the subject are admirable.

—**Dr S P. Chaturvedi**

Ex-Head Dept. of Sanskrit, Allahabad University (U.P.)